हमारे जानवर

सुरेशसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४७

प्रिय आनंद

को

सस्नेह

भूमिका

जीव के जन्म और विकास की बड़ी अद्भुत और रोचक कहानी है, पर उसकी रोचकता के बारे में कुछ भी जानने के लिए हमें सौ दो सौ नहीं, लाख दो लाख भी नहीं बल्कि करोड़ों, अरबों वर्ष पहले की कल्पना करनी होगी।

इस विशाल अंतरिक्ष में अविराम गति से घूमते हुए, एक ज्वलित नीहार ने, घनीभूत होकर, जब हमारी पृथ्वी का स्वरूप ग्रहण किया होगा, तब उस समय उसकी दशा एक जलती हुई अँगीठी की सी रही होगी; उसकी सतह पर ज्वालामुखी के लावे की तरह गला हुआ पदार्थ बहता रहा होगा जो, धीरे धीरे ठंढा होकर कड़ा पड़ गया होगा। पृथ्वी की प्रचंड गरमी के कारण तब पानी, केवल भाप के बादलों के रूप में रहा होगा और चट्टान भी पृथ्वी के गर्भ में गले हुए लावे की शकल में रहे होंगे। कैसा दृश्य रहा होगा वह! सारी पृथ्वी एक गंधक के लोक की तरह, धुएँ और भाप की विकराल लपटें छोड़ती हुई, सुलगती रही होगी।

करोड़ों वर्ष बीत जाने पर, आग और भाप का वह रंगमंच, धीरे धीरे ठंढा होकर हमारी पृथ्वी के रूप में जड़ीभूत हो सका और तब आकाश में छाये हुए भाप के सघन बादल, पानी की पहली बौछार होकर बरसे। जले हुए लावा जैसे पदार्थ ने जमकर चट्टानों का आकार ग्रहण किया और पृथ्वी पर गरम पानी की धाराएँ बहकर, नदियों और सागरों में इकट्ठा होने लगीं। सूरज और चाँद एक-दूसरे से और भी दूर चले गए और चाँद छोटा होने के कारण जल्द ठंढा पड़ने लगा।

कैसी रोचक सारी की सारी कल्पना है! इसके उपरान्त कहीं जाकर वह अवस्था आई, जब हमारी पृथ्वी अपने इस वर्तमान शकल-सूरत से

मिलती-जुलती बन सकी। उस समय यदि किसी मनुष्य का होना सम्भव होता, तो वह अपने को विशाल तप्त चट्टानों और लावा के शिलाओं के बीच खड़ा पाता। मिट्टी का कहीं उसे चिह्न भी न मिलता। हाँ, भयंकर अग्निवृष्टि के बीच, चारों ओर गँदले गरम पानी के नाले, उसे समुद्र की ओर भागते हुए ज़रूर दीख पड़ते और प्रचंड भूकम्प रह-रहकर उसके पैरों के नीचे की चट्टानों को कँपाता रहता। कैसा भयानक समय रहा होगा वह !

इस कल्पनातीत काल में पृथ्वी धीरे धीरे पुरानी होने लगी। लाखों के बाद करोड़ों वर्ष बीत गए। सूरज दूर होकर मंद पड़ गया। चाँद की चाल में भी शिथिलता आ गई; आँधी-पानी और तूफ़ानों की तेज़ी में कमी होने लगी; पानी बह-बहकर सागरों में जमा होने लगा। सागर महासागर बन गए और हमारी पृथ्वी की रूप-रेखा धीरे धीरे स्पष्ट होने लगी। लेकिन जीवन का अब भी कोई चिह्न नहीं था—उसके जन्म में अभी बहुत देर थी।

पृथ्वी इस अवस्था में भी करोड़ों वर्ष रही। उसके बाद कहीं जाकर एक समय ऐसा आ ही गया, जब एक ख़ास तापमान में जीवपंक या प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm) नामक पदार्थ से, हमारी पृथ्वी के छिछले समुद्रों में, एक बहुत निम्नतर जीव का जन्म हुआ। और तब से आज तक उसका इतना विकास और विस्तार हुआ है कि आज हमारी पृथ्वी असंख्य जीवधारियों से भर-सी गई है। यह प्रोटोप्लाज़्म या जीवपंक उस ख़ास तापमान में हमारी पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुआ या दूसरे ग्रहों से यहाँ आया, यह अभी विवाद में पड़ा है, पर इतना तो प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि हम सब जीवधारियों का प्रारम्भ इसी जीवन-पंक से हुआ।

जीवन अभिनय की यवनिका उठने के बाद, जलवायु के अनुकूल होने पर, जीवों में भिन्न भिन्न प्रकार का विकास होने लगा और परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर, कभी कभी ऐसी अवस्था भी आ गई कि

कुछ प्रधान जीवधारी सदा के लिए लोप हो गए। इस प्रकार के प्रलय-काल को विद्वानों ने अलग अलग युगों में विभक्त कर दिया है। जिनकी अवस्था करोड़ों वर्ष की मानी गई है।

पहले के ऐसे कुछ युगों को हम छोड़ भी दें, तो इस वर्तमान स्तन-प्राणियों के युग के पहले के सरीसृपों के युग का, संक्षेप में वर्णन कर देना अनुचित न होगा। इस युग में—जिसे हम नवजीवन-युग कहते हैं और जिसका समय हम लगभग ८० करोड़ वर्ष का लगाते हैं—सरीसृपों का राज्य था। ये जीव आकार में इतने बड़े थे कि पृथ्वी पर इतने बड़े और भीमकाय जन्तु पहले कभी नहीं हुए। कुछ की लम्बाई तो अस्सी से सौ फ़ुट तक पहुँच गई। डाइनासोर (Dinosour) की आकृति तो भयंकरता की सीमा को भी पार कर गई। उसके बाद वर्षों के बाद वर्षों और शताब्दियों के बाद शताब्दियों के बीत जाने पर, धीरे धीरे विकास और ह्रास के साथ साथ, प्राकृतिक परिस्थितियाँ और भी उग्र और कठोर हो गईं। पृथ्वी के धरातल में बड़े बड़े बदलाव और समुद्रों तथा पहाड़ों के विभाजन में भी, नये नये परिवर्तन उपस्थित हो गए। जिसके कारण हमारी पृथ्वी के जीवधारियों में भी बहुत बड़े परिवर्तन और नई नई जातियों का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद करोड़ों वर्ष का हाल फिर नहीं मिलता। जीवन के इतिहास की बाहरी रूप-रेखा फिर अस्पष्ट हो जाती है, पर कुछ समय बीतने पर इस नवीन-युग का परदा उठता है और स्तनप्राणियों का यह वर्तमान युग प्रारम्भ होता है, जिसका क्रम अभी चला ही जा रहा है।

प्रारम्भिक स्तनप्राणियों को भी, प्रारम्भिक पक्षियों की तरह, जीवन संघर्ष से विवश होकर, पृथ्वी के ठण्डे हिस्सों में रहने पर मजबूर होना पड़ा और विवश होकर उन्हें अपना ऐसा विकास करना पड़ा, जिससे सर्दी से उनकी रक्षा हो सके। पक्षियों के परों की तरह उनके शरीर पर के शल्क या सेहर (Scale) उन्हें ठण्ढक से बचाने के लिए बालों में बदल गए। इसके अलावा जो बड़ा परिवर्तन उनमें हुआ वह उनके

संतानोत्पत्ति के सम्बन्ध का था। ख़ुश्की पर आने पर उनकी ज़िन्दगी ख़ानाबदोशों की तरह हो गई। वे स्वयं ही जब दुश्मनों के डर से इधर-उधर मारे मारे फिरते थे फिर अंडों के सेने की फ़ुरसत उन्हें कहाँ थी। चिड़ियों की तरह, वे पेड़ पर भी घोंसला बनाकर अंडे नहीं दे सकते थे, इसलिए उन्हें मजबूर होकर अपने भीतर ही अंडे रखने के योग्य, अपने शरीर को बनाना पड़ा और कुछ समय वे अंडों के बजाय जीते-जागते बच्चे पैदा करने लगे। बच्चों को दूध पिलाने के लिए उनके सीने पर स्तन निकल आये और उनका नाम स्तनप्राणी पड़ गया। इस प्रकार हमारी पृथ्वी के असंख्य जीवधारियों में स्तनप्राणियों की एक शाखा, अपने स्तन से दूध पिलाने के गुण के कारण और जीवधारियों से अलग कर दी गई। यहाँ एक बात न भूल जानी चाहिए कि स्तनप्राणियों में आस्ट्रेलिया-निवासी डक-मोल (Duck Mole) और चींटीख़ोर (Ant Eater) दो ऐसे प्राणी भी हैं, जो इस गुण से परे हैं। ये अब भी अंडे देते हैं और उनके स्तन नहीं होते।

कुछ लोगों का ऐसा ख़्याल है कि विकास का क्रम सीढ़ीनुमा है और संसार से प्रारम्भिक प्राणी से विकास होकर यह क्रम मनुष्य तक पहुँचा है लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। विकास के क्रम को यदि हम सीढ़ीनुमा न मानकर, उसकी एक वृक्ष की तरह कल्पना करें, तो हमें उसके समझने में आसानी हो जावेगी। इस विकास-वृक्ष में एक ही तना होने पर भी अलग अलग अनेकों शाखाओं की कल्पना करनी होगी, जिसमें कुछ शाखाएँ कम बढ़ीं, कुछ का बहुत विस्तार हुआ और कुछ की बाढ़ क़तई रुक गई। ये भिन्न भिन्न शाखाएँ-प्रशाखाएँ हमारे जीव-जगत् की जातियाँ और उपजातियाँ हैं। इनमें फैली हुई वे हैं जिनका आज पृथ्वी पर राज्य है और बाढ़ रुक जानेवाली वे हैं, जो अपने को पृथ्वी के परिवर्तनों के अनुकूल बनाने में समर्थ न हो सकने के कारण, सदा के लिए लोप हो गईं।

इस प्रकार हमारा विकास-वृक्ष उसी आदिमूल जीवपंक से प्रारम्भ

होगा, जिसमें पहले एक-कोष-प्राणी (One Celled Animals) थे और जिनकी बनावट बहुत सीधी-सादी थी। आगे चलकर एक ओर एक शाखा निकली जिसमें विकास करके तारा मछली (Star Fish) आदि जीव हुए। दूसरी शाखा के प्राणियों ने अपना विकास कड़े और खोखले शरीर की ओर किया। इनमें से आगे चलकर केकड़े आदि हुए। कुछ आगे फिर एक नई शाखा फूटी जिसमें के जीवधारियों ने बाहरी परिवर्तनों के साथ ही अपने में एक बड़ा परिवर्तन किया, रीढ़ की हड्डी का। इन्हें हम मछलियों के पूर्वज कह सकते हैं। ये अपना कुछ समय पानी से बाहर निकलकर ख़ुश्की पर भी बिताने लगे और इस प्रकार एक और शाखा निकली जिसमें आगे चलकर हमारे मेढक आदि उभचर (Amphibians) हुए।

रीढ़वाले प्राणियों के विकास से विकास-क्रम में एक नया काल उपस्थित होता है, क्योंकि इस नवीन परिवर्तन से जीवों की भीतरी बनावट ही एक प्रकार से बदल गई। केकड़े आदि जीवों से—जो कड़ी खोल में जकड़े रहकर अपना फैलाव ही नहीं कर सकते थे—ये रीढ़वाले जीव कहीं उन्नत थे। रीढ़ से इन्हें यह लाभ हुआ कि इनकी हड्डियाँ रीढ़ से जुटी रहकर इनके ऊपरी मांस के लिए एक मज़बूत ढाँचा बन गईं, जिनसे इनके फैलाव में आसानी हो गई। इस महान् परिवर्तन के आधार पर ही आज हमारा प्राणिजगत् रीढ़वाले अथवा मेरुदण्डी (Back Boned) और बिना रीढ़वाले अथवा अमेरुदण्डी (Back Bone Less) इन दो मुख्य भागों में बाँट दिया गया है।

आगे चलकर एक शाखा सरीसृपों की निकली जिन्होंने जल और स्थल दोनों में रहने के लिए अपने को तैयार किया। इसमें हमारे मगर, घड़ियाल, साँप, गोह और छिपकलियाँ आदि शामिल हैं।

विकास का यह क्रम यहीं तक नहीं रुक गया बल्कि आगे चलकर इसकी एक और शाखा निकली, जिसने अपने को हवा में उड़ने के योग्य बना लिया और इस प्रकार चिड़ियों की एक अलग ही श्रेणी बन गई।

इधर तो चिड़ियाँ हवा में अपना प्रभुत्व क़ायम करने के लिए अपने विकास में लगी रहीं और उधर विकास-वृक्ष में एक नवीन शाखा और फूटी। यह शाखा स्तनप्राणियों की थी। इसमें के जीवधारियों ने अपनी इतनी उन्नति और इतना विकास कर लिया कि आजतक पृथ्वी पर से इनके आधिपत्य को कोई नहीं हटा सका। इनमें और बातों के अलावा जो विशेषता, इन्हें जलवायु के मामूली परिवर्तनों से बचाने में समर्थ हुई, वह इनके शरीर पर के बाल थे।

स्तनप्राणियों में भी कई उपशाखाएँ फूटीं, जिनमें किसी में गाय, बैल और हिरन आदि हुए तो किसी में बिल्ली, कुत्ते और शेर वग़ैरह। एक में गोरिला, शिम्पैन्जी आदि हुए तो दूसरी में एप (Ape) फिर उसी के निकटवाली तीसरी शाखा मनुष्यों की है, जो पशु होकर भी अपने उन्नत मस्तिष्क के कारण आज सभी प्राणियों पर राज्य कर रहा है। इस प्रकार यह ख़्याल करना सरासर भूल है कि मनुष्यों के पुरखे बन्दर थे, या मनुष्यों का विकास बन्दरों से हुआ है। सत्य तो केवल इतना ही है कि हमारे और एप (Ape) के पूर्वज एक ही थे और इसमें शरमाने की तो कोई बात नहीं जान पड़ती।

(२)

जीव और जड़ में बड़ा भेद है। जीव में दो विशेष गुण होते हैं, जो जड़ पदार्थों में नहीं होते। एक तो वे बाहर से दूसरी वस्तुओं को ग्रहण करके अपने में मिला सकते हैं और दूसरे वे उत्पादन करके अपने को बढ़ा सकते हैं अर्थात् वे खाते और संतानोत्पत्ति करते हैं। वे अपनी तरह के दूसरे प्राणियों को पैदा कर सकते हैं। एक कोष्ठवाले निम्नश्रेणी के प्राणी अमीबा (Amoeba) तक को, जिसे हम संसार का सबसे सरल बनावट का प्राणी कह सकते हैं, प्रकृति ने सन्तान-वृद्धि के साधन से वञ्चित नहीं किया है। यह आधे मिलीमीटर का इतनी सरल बनावट का प्राणी है कि प्रकृति को उसके जीवन-पदार्थ या प्रोटोप्लाज़्म को उसमें रोक रखने के लिए एक झिल्ली देनी पड़ी है। अमीबा के नर मादा नहीं होते

लेकिन जब उसे अपना वंश बढ़ाना होता है, तब वह खुद ही बढ़कर बीच से दो भागों में विभक्त हो जाता है।

एक बात सब जीवधारियों के लिए और भी आवश्यक है, जिसके बारे में हमें कुछ जान लेना ज़रूरी है। जब किसी जाति के जीवों के आस-पास की परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, तब उन जीवों को भी अपने में उसी के अनुसार परिवर्तन कर लेना पड़ता है। यह परिवर्तन जल्द नहीं हो जाता बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। इसे हम प्राकृतिक-चयन (Natural Selection) कहते हैं। जिन जातियों ने इस प्रकार के बाह्य परिवर्तनों के साथ अपने को परिवर्तित नहीं किया, उनका इस पृथ्वी से समूल नाश हो गया और आज हम उनका पता केवल उन चट्टानों की तहों से लगा पाते हैं, जिनके बीच वे सदा के लिए सोकर अपना एक अस्पष्ट चिह्न-मात्र छोड़ गये हैं। इन पथराये चिह्नों को, जो हड्डीवाले प्राणियों के दबने से पड़ गए हैं, हम फ़ासिल (Fossiles) कहते हैं और पृथ्वी के प्रारम्भिक जीवन का बहुत कुछ इतिहास हमें इन्हीं "चट्टानों के खाते" से मिला है।

यहाँ हम जीवधारियों की अन्य शाखाओं को छोड़कर केवल स्तन-प्राणियों को ही ले रहे हैं, जिसकी सबसे निचली अवस्था में तो डकमोल (Duck mole) और सबसे ऊपर के स्तर पर मनुष्य हैं। इनके बीच में हज़ारों प्राणी ऐसे हैं, जिनमें से कुछ हमशकल होकर भी दूसरी दूसरी जाति के हैं और कुछ अपने निकट-सम्बन्धियों से शकल-सूरत में इतने जुदा हो गए हैं कि जल्दी में कोई उनको एक परिवार का प्राणी नहीं कह सकता। यही नहीं, कुछ जानवर ऐसे भी हैं जिन्हें देखकर यहाँ तक धोखा हो जाता है कि ये वास्तव में पशु हैं या पक्षी। हमें चमगादड़ के रहते हुए उदाहरण के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। बहुत से लोग आज भी इसे स्तनपायी पशु न समझकर पक्षी समझते हैं। दूसरा उदाहरण हमें ह्वेल से मिलता है। इसके बारे में भी प्रायः लोग यही जानते हैं कि ह्वेल मछली है लेकिन वास्तव में ह्वेल हमारे पशु-समाज

के उन डरपोक प्राणियों में से एक है, जो ख़ुश्की पर आने के बाद, यहाँ के जीवन-संघर्ष से ऊबकर फिर पानी में लौट गये। पानी में लौटने के बाद ह्वेल (तिमि) को अपने में वे परिवर्तन करने पड़े, जो जलचरों के लिए आवश्यक थे। पर इतना होने पर भी उसकी कुछ बातें जलचरों से भिन्न ही रह गईं। एक तो उसकी दुम का सिरा मछलियों की तरह खड़ा खड़ा न होकर आड़ा आड़ा रह गया, क्योंकि मछलियों की तरह, पानी में गलफड़ों से साँस लेने में असमर्थ होने के कारण, उसे थोड़ी थोड़ी देर बाद पानी की सतह पर साँस लेने के लिए आना पड़ता है। और इस प्रकार नीचे आने-जाने में दुम का आड़ा सिरा ही, उसके लिए ज़्यादा उपयोगी हो सकता है। हमारी नदियों में तो ह्वेल नहीं होती लेकिन गंगा आदि कुछ बड़ी नदियों में, उसी जाति का एक छोटा प्राणी 'सूस' ज़रूर होता है, जिसे हम थोड़ी थोड़ी देर पर हवा में साँस लेने के लिए, पानी की सतह पर आते देख सकते हैं।

इन्हीं सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए, प्राणिविद्या विशारदों ने, हमारे जीवजगत् का बड़े सुन्दर ढंग से विभाजन किया है, जो इस प्रकार है।

यह तो ऊपर बता ही आया हूँ कि हमारा सारा जन्तुजगत् दो मुख्य विभागों (Phyla) में विभक्त है। मेरुदंडी जीव (Back Boned animals) और अमेरुदंडी जीव (Back Boneless animals)। उसके बाद प्रत्येक विभाग श्रेणियों (classes) में बाँटे गए हैं—जैसे सरीसृप श्रेणी, पक्षी श्रेणी और स्तनप्राणी श्रेणी। ये श्रेणियाँ फिर वर्गों (Orders) में बाँटी गई हैं जैसे मांसभक्षी-वर्ग (Order Cornivora) आदि। प्रत्येक वर्ग (Order) फिर परिवारों (Family) में विभाजित किये गये हैं जैसे बिल्ली-परिवार (Family Falidae) आदि। इसके बाद ये परिवार वंशों (Genera) में बाँटे गए हैं जैसे बिल्ली-वंश (Genera Felis) और फिर अन्त में ये वंश भी जाति (Species) में तक़सीम किये गए हैं, जो

उस जाति की खासियत बताते हैं जैसे घरेलू बिल्ली (Felis domesticus)।

इस वर्गीकरण की सहायता से हम किसी भी जीव के बारे में उसका लैटिन नाम (क्योंकि इस प्रकार के विभाजन के बाद, जीवों के वैज्ञानिक नाम लैटिन भाषा में ही रखे गए हैं) देखकर ही यह जान सकते हैं कि वह किस वंश और किस जाति का प्राणी है।

इसी संबंध में एक बात और जान लेना आवश्यक है। कुछ दिन पहले तक लोग यह विश्वास करते थे कि कुछ जानवर ठंढे खून (Cold Blooded) वाले हैं और कुछ गरम खून (Hot Blooded) वाले। इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने इन जीवों को दो हिस्सों में बाँटा था। जिसमें स्तनप्राणी और चिड़ियाँ तो गरम खूनवाले माने गए और मछलियाँ और सरीसृप ठंढे खूनवाले। लेकिन अब इस सिद्धान्त का अंत हो गया है, भले ही इनके लिए ये नाम अब भी इस्तेमाल किये जाते हों। इस सिद्धान्त का जन्म शायद इस कारण हुआ कि ठंढे खूनवाले कहे जानेवाले प्राणियों के शरीर का तापमान जलवायु के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है और ये गरम खूनवाले प्राणियों से काहिल और कम फुर्तीले होते हैं। उनके शरीर में कम गरमी रहती है जिससे वे देखने से ही ठंढे जान पड़ते हैं। लेकिन दूसरी ओर गरम खूनवाले प्राणियों के शरीर का तापमान एक जैसा रहता है और बालों और परों की सहायता से ये अपने शरीर में गरमी सुरक्षित रख सकते हैं। इसी से इनको गरम खूनवाले जीव कहा जाता है।

(३)

जानवरों के रंग-रूप और स्वभाव के बारे में कुछ जानने से पहले, हमें उनकी शरीर-रचना के बारे में थोड़ा-बहुत जान लेना ज़रूरी है।

यह बात पहले भी बताई जा चुकी है कि चिड़ियों के परों की तरह स्तनप्राणियों ने अपने शरीर में बालों का विकास किया, जो इनके शरीर में गरमी कायम रखने में बहुत सहायक हुए। इस प्रकार शरीर पर के ये

बाल स्तनप्राणियों की अपनी एक विशेषता हैं जो दूसरे जीवों को प्राप्त नहीं हैं। कुछ स्तनप्राणी ऐसे ज़रूर हैं, जिनके शरीर पर बाल नहीं होते जैसे तिमि (ह्वेल) और सूस आदि लेकिन उनके मुख पर दो-चार बाल ज़रूर होते हैं, जो उन्हें स्तनप्राणियों की श्रेणी का जीव साबित करने के लिए काफ़ी हैं।

तिमि के अलावा साही आदि कुछ जानवर ऐसे भी हैं जिनकी पीठ पर बाल की जगह मोटे और नोकीले काँटे होते हैं और साल की तरह कुछ ऐसे प्राणी भी हैं जिनका शरीर एक प्रकार के कड़े शल्क या सेहरों से ढका रहता है। लेकिन वास्तव में ये शल्क या काँटे उसी पदार्थ के बने होते हैं, जिसके दूसरे स्तनप्राणियों के बाल हैं।

स्तनपायी जीवों को चौपाये भी कहा जाता है। लेकिन उनका यह नाम सार्थक नहीं कहा जा सकता क्योंकि जहाँ चमगादड़ आदि उड़नेवाले जीव चार पैर से नहीं चलते, वहीं तिमि आदि जल में रहनेवाले स्तनप्राणी अपनी पिछली टाँगें एक प्रकार से खो चुके हैं क्योंकि पानी में रहने के कारण इनकी टाँगें बेकार ही थीं। इनकी अगली टाँगें या हाथ ज़रूर बदलकर इनकी पखनियाँ (Fins) बन गई हैं लेकिन पिछली टाँगों के तो केवल चिह्न भर मिलते हैं।

टाँगों के साथ साथ जानवरों की उँगलियों की चर्चा न करना ठीक न होगा। इनके हाथ-पैर के अन्तिम सिरे अलग अलग शक्ल के होते हैं। किसी के वहाँ नख होते हैं तो किसी के खुर। मांसाहारी जीवों को दूसरों को मारकर अपना जीवन-निर्वाह करना पड़ता है, इसलिए प्रकृति ने उनको नाख़ून दिये हैं लेकिन घास-पात खानेवाले हरिण आदि शाकाहारी जीवों के लिए तो पंजे किसी काम के न होते, इसी से उन्हें तेज़ भागने के लिए खुर मिले हैं।

नख और खुरों में भी कई भेद हैं। शेर, बिल्ली आदि जीवों के नख बहुत तेज़ तो होते ही हैं, साथ ही साथ ये पंजों के भीतर घुसे रहते हैं। जब ये जानवर किसी शिकार पर पंजा मारते हैं, तो ये तेज़ नख

दबाव पड़ने से बाहर निकल पड़ते हैं। लेकिन बिज्जू आदि कुछ जन्तुओं के नख मज़बूत होते हुए भी भोथरे होते हैं क्योंकि उनको इनसे ज़मीन खोदनी पड़ती है। यही दशा खुरों की है। खुर भी कई तरह के होते हैं। घोड़े के खुर या सुम बीच में फटे न होकर, समूचे रहते हैं लेकिन गाय, बैल या हिरन आदि प्राणियों के खुर बीच से फटे होते हैं। इसके अलावा हाथी, गैंडा आदि कुछ ऐसे जीव भी हैं, जिनके खुर या कड़े खुर की शकल के नखों की संख्या दो से अधिक होती है।

बन्दरों को न नखों की ही ज्यादा ज़रूरत रहती है और न खुरों की ही। उनको पेड़ पर चढ़ने के लिए काफ़ी लम्बी उँगलियाँ चाहिए, वही उन्हें मिली भी हैं। इसी प्रकार चमगादड़—जिनको अपनी उँगलियों में मढ़ी हुई झिल्ली से उड़ने का काम लेना पड़ता है—की उँगलियों का इतना विस्तार हुआ है कि वे उसके शरीर से भी ज़्यादा लम्बी हो गई हैं।

जानवरों के दाँत उनके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग समझे जाते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं।

१—कृन्तकदन्त (Incisors)
२—कुकुरदन्त (Canines)
३—दूध की दाढ़ें (Premolars) और
४—दाढ़ें (Molars)

कृन्तक दाँत जबड़े के आगेवाले दाँतों को कहते हैं। जिनसे जानवर किसी चीज़ को काटते हैं। ये प्रायः संख्या में ६ होते हैं और ऊपर नीचे के जबड़ों में, गिनती में बराबर होते हैं। इनका सिरा बहुत तेज़ होता है। कुकुरदंत, कृन्तक दाँतों की पंक्ति के दोनों ओर के उन नोकीले दाँतों को कहते हैं, जो किसी चीज़ को छेदकर भीतर घुस जाते हैं। ये कृन्तक दाँतों के दोनों ओर एक एक होते हैं, जो किसी में छोटे और किसी में बड़े रहते हैं।

कुकुरदंत, मांसभक्षी जीवों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं, क्योंकि इसी से वे अपने शिकार को पकड़ लेते हैं। शाकाहारी जन्तुओं के या तो कुकुरदंत होते ही नहीं और यदि हुए भी, तो छोटे छोटे रहते हैं क्योंकि उनको इनकी ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती।

दूध की डाढ़ों को वास्तव में क़ैंची—डाढ़ कहना चाहिए क्योंकि जबड़ों के चलाये जाने पर ये डाढ़ें ऊपर-नीचे क़ैंची की तरह चलती हैं जिससे मांस के छोटे छोटे क़तरे हो जाते हैं। ये कुकुरदंत के बाद दोनों ओर होती हैं। इनको दूध की डाढ़ इसलिए कहा जाता है कि ये असली डाढ़ों की तरह एक बार निकलकर हमेशा के लिए स्थायी नहीं रहतीं बल्कि कृन्तक तथा कुकुरदंत की तरह एक बार गिरकर फिर से निकलती हैं। डाढ़ें जबड़ों में दोनों ओर सबसे पीछेवाले दाँतों को

कहते हैं, जिससे जानवर अपनी ख़ूराक चबाता है। इनकी संख्या प्रत्येक ओर, तीन से ज़्यादा कभी नहीं होती और इनकी नाप भी जानवरों के स्वभाव के कारण छोटी-बड़ी होती है।

शाकाहारी जन्तुओं को अपने भोजन को पीसने की ज़्यादा ज़रूरत पड़ती है अतः उनकी ये डाढ़ें या चर्वणदंत संख्या में तो ज़्यादा होते ही हैं, साथ ही साथ आकार में भी चौड़े होते हैं। लेकिन मांसभक्षी जीवों को इनकी ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती, इससे उनकी डाढ़ें न तो उतनी चौड़ी ही होती हैं और न वे संख्या में ही ज़्यादा रहती हैं।

सींग, जानवरों के अस्त्र हैं, जिनसे वे आक्रमण नहीं बल्कि अपना बचाव करते हैं। प्रकृति ने उन्हीं शाकाहारियों को सींगें दी हैं, जिनको मांसभक्षी जीवों से बहुत डर रहता था और अपने बचाव के लिए जिनके पास और कोई अस्त्र नहीं थे। हाथी यह काम अपनी सूँड़ से लेता है और गैंड़ा अपने खाग या थूथन के ऊपर के सींग से लेकिन हिरन और बारहसिंघे, जब हिंसक जीवों से भागकर अपनी जान नहीं बचा पाते, तब उन्हें अपनी अन्तिम बचाव की लड़ाई, इन्हीं सींगों के द्वारा लड़ने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता है। सींगें दो प्रकार की होती हैं एक स्थायी, जो एक बार निकलकर जीवन-पर्यन्त तक क़ायम रहती हैं और दूसरी गिरनेवाली सींगें, जो हर साल या दूसरे-तीसरे साल गिरकर फिर से नई निकलती हैं।

स्थायी सींगें दुहरी होती हैं यानी उनमें भीतर की बनावट हड्डी की होती है, जिस पर सींग की एक खोल-सी चढ़ी रहती है—जैसे गाय-बैल की सींगें। दूसरे तरह की सींगें, गिरनेवाली और बिना खोल की होती हैं, ये पहले मुलायम और नरम रहती हैं और इनमें रक्त-संचार के लिए शिराएँ फैली रहती हैं लेकिन ज्यों ज्यों ये पुरानी होती जाती हैं ये बेजान और हड्डी की तरह कड़ी होती जाती हैं। बारहसिंघों की जाति के प्राणियों को इसी प्रकार की सींगें मिली हैं।

जानवरों की ग्रन्थियों के बारे में भी कुछ लिखना ज़रूरी हो जाता

है। ये ग्रन्थियाँ जानवरों के भिन्न भिन्न भागों में होती हैं और किसी से एक प्रकार का गाढ़ा बूदार पदार्थ निकलता है तो किसी में से मोम जैसी चीज़। जोड़ा बाँधने के समय नर हाथी की कनपटी के पास से एक प्रकार का गाढ़ा मद बहने लगता है। इसी प्रकार ऊँट की गरदन के पास से ऐसा ही पदार्थ निकलता है। कस्तूरी मृग की यह ग्रन्थि, नाभि के पास होती है, जिससे हमारी कस्तूरी निकलती है। बिज्जू चितराला आदि कुछ छोटे छोटे जंगली जानवर भी अपनी गंध-ग्रन्थि के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी ग्रन्थियाँ इनकी दुम के नीचे रहती हैं। लेकिन छछूँदर का हाल सबसे निराला है। इनकी गंध-ग्रन्थियों से इतनी तेज़ बू निकलती है कि उसकी वजह से इसे दूसरे जानवर बहुधा नहीं खाते और इस प्रकार यह उसकी रक्षा का एक साधन बन गया है।

अब इन स्तनप्राणियों की इन्द्रियों के बारे में भी थोड़ा-बहुत जान लेना अनुचित न होगा। ज़बान तो प्रायः सभी स्तनप्राणियों के होती है लेकिन उनकी बनावट और आकार में बहुत भेद रहता है। शेर के निकट-सम्बन्धी जानवरों की ज़बान बहुत ही खुरदुरी होती है, जो उन्हें हड्डी पर से मांस छुड़ाने में बहुत सहायक होती है। चींटीख़ोर और उसके भाई साल की ज़बान काफ़ी दूर तक बाहर निकल आती है, जिसको वह दीमकों की बिल में डालकर बड़ी आसानी से दीमकों को उसी में चिपका लेता है।

जानवरों की सुनने की शक्ति भी काफ़ी तेज़ होती है क्योंकि उनके कान उनके बहुत काम के होते हैं। हिरण और बारहसिंघे आदि प्राणियों के कान काफ़ी लंबे होते हैं और उन्हें ये इधर-उधर घुमा सकते हैं। चूँकि इन्हें सदैव चौकन्ना रहना पड़ता है, इससे जिस ओर से भी ज़रा सी आहट मिली नहीं कि इनके कान उसी ओर घूम जाते हैं और इन्हें बहुत पहले ही से ख़तरे की सूचना मिल जाती है। कुछ ऐसे भी जानवर हैं जिनके कान के छेद तो होते हैं लेकिन उनका ऊपरी हिस्सा बिलकुल छोटा या नहीं के बराबर रहता है।

आँखों के बारे में भी जानवरों में कम भेद नहीं है। बिल्ली-परिवार के जीव, जिन्हें रात में ज़्यादा घूमना पड़ता है अपनी तेज़ दृष्टि के लिए प्रसिद्ध हैं। ये घोर अंधकार में देख सकते हों, यह बात तो नहीं है लेकिन इनकी आँखों की बनावट ऐसी होती है, जिससे ये थोड़ी सी थोड़ी रोशनी में भी देख सकते हैं। इनकी आँख की पुतलियाँ घट बढ़ सकती हैं, जो कम और ज़्यादा रोशनी में घट-बढ़ जाती हैं। चमगादड़ और छछूँदर आदि कुछ ऐसे जीव भी हैं, जिनकी आँखें बहुत छोटी होती हैं। ये सूरज की तेज़ रोशनी में खुल नहीं पातीं और इन्हें अपने इस काम में बहुत कुछ सहायता अपनी स्पर्शेन्द्रियों से लेनी पड़ती है।

स्पर्शेन्द्रियाँ जानवरों के बहुत काम की हैं। जिनका स्थान पशुओं की सहूलियत के अनुसार प्रकृति ने अलग अलग दिया है। मांसभक्षी जीवों को इतनी बड़ी बड़ी मूँछें मिली हैं कि अँधेरे में उनको फैलाकर चलने में उन्हें सहज ही में इसका अंदाज़ा लग जाता है कि आगे का रास्ता उनके लिए तंग तो नहीं है। उनकी फैली हुई मूँछों समेत उनका सर, बिना किसी चीज़ से टकराए जहाँ समा जाता है, वहाँ उनके बाक़ी शरीर के जाने में कोई दिक़्क़त नहीं होती। घोड़ों की स्पर्शेन्द्रिय उनके होंठ हैं और हाथी की उनकी सूँड़—लेकिन इन सबसे अधिक स्पर्श-ज्ञान चमगादड़ों की झिल्ली में होता है, जिसके सहारे वे अंधे हो जाने पर भी उसी ख़ूबी से उड़ सकते हैं। एक बार एक सज्जन ने कुछ चमगादड़ों की आँखें फोड़कर, उन्हें एक ऐसे कमरे में छोड़ा, जिसमें आर पार तागे बाँध दिए गए थे। ये चमगादड़ उस कमरे में अपनी झिल्ली के स्पर्श-ज्ञान से बराबर उड़ते रहे और एक भी, तने हुए तागे से नहीं टकराया।

जानवरों की सूँघने की शक्ति के बारे में भी दो एक बातें जान लेना चाहिए। सभी स्तनपायी जीवों की घ्राणेन्द्रिय काफ़ी तेज़ होती है। जहाँ निर्बल जीव अपने शत्रुओं का पता बहुत कुछ सूँघकर लगाते हैं, हिंस्र जीवों को भी अपने शिकार के खोजने में उनकी घ्राणेन्द्रिय बहुत सहायक होती है। ऊँट की सूँघने की विचित्र शक्ति तो बहुत प्रसिद्ध ही है। रेगि-

स्तान में मीलों दूर से सूँघकर पानी का पता लगाकर, ये अपनी ही नहीं बल्कि मनुष्यों की भी जान बचाने में समर्थ हो जाता है।

शरीर-रचना का वर्णन बिना मस्तिष्क के संक्षिप्त वर्णन के अधूरा ही रह जावेगा—क्योंकि जानवरों के मस्तिष्क के बारे में लोगों की तरह तरह की धारणाएँ हैं।

इससे पहले कि हम जानवरों के मस्तिष्क के बारे में कुछ जानें। हमें एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जानवरों में थोड़ी बहुत बुद्धि भले ही हो लेकिन उनमें सोचने की शक्ति नहीं होती। वे किसी समस्या पर सोच-विचार नहीं कर सकते क्योंकि विचार करना तभी संभव हो सकता है जब भाषा का जन्म हो गया हो। भाषा के बन जाने पर ही हम हँस-बोल या विचार-विनिमय कर सकते हैं लेकिन इसके बिना ये सब बातें संभव नहीं हो सकतीं—तोते और मैना को निरर्थक रटा देना तो दूसरी बात है।

सोचने की शक्ति न रहने पर भी जानवरों का काम नहीं रुकता। उनको अपना काम चलाने के लिए प्रकृति ने उन्हें एक प्रकार की नैसर्गिक बुद्धि दी है, जिसे पशु-बुद्धि या सहज-बुद्धि भी कहा जाता है। किसी ख़तरे के आने पर, यही पशु-बुद्धि उन्हें सतर्क कर देती है और इसी पर उनके जीवन का सारा व्यापार निर्भर रहता है।

चींटियों और मधुमाखियों को देखकर कभी कभी हमें उनकी बुद्धि पर आश्चर्य होता है और हम यह सन्देह भी करने लगते हैं कि उनमें सोचने-समझने की शक्ति ज़रूर है—लेकिन वास्तव में बात ऐसी है नहीं। चींटियाँ और मधुमाखियाँ, दूसरे कीड़ों के मुक़ाबले अक़्लमन्द ज़रूर कही जावेंगी लेकिन उन्हें पशुओं और मनुष्यों से ज़्यादा अक़्लमन्द कहना भूल होगी। वे तो दरअसल एक मशीन की तरह हैं, जिन्हें उनकी पशु-बुद्धि चलाती रहती है। यही नहीं वे जिस काम के लिए पैदा की गई हैं उसे छोड़कर दूसरा काम इस जीवन में नहीं कर सकतीं। शहद की मक्खी सारी ज़िन्दगी सिवा शहद जमा करने के दूसरा काम जान ही नहीं

सकती—यही हाल सब कीड़े-मकोड़ों का है। उनमें सोचने की शक्ति का एकदम अभाव रहता है। बर्र या भिड़ को अगर कमर से काट दिया जावे, तो भी वह अपने खाने में उतनी ही मुस्तैद रहेगी, भले ही उसकी मौत हो जावे। इसका कारण यही है कि उसके मस्तिष्क का इतना विकास नहीं हुआ है कि वह किसी नए काम को सोच सके, जब कि वह दर्द का भी अनुभव नहीं कर पाती। दर्द का अनुभव तो तभी होता है, जब हमें स्नायुओं से उसकी सूचना मस्तिष्क तक पहुँचती है।

लेकिन जानवरों के ज्ञान न होने पर भी, बुद्धि तो होती ही है। वे तर्क-वितर्क भले ही न कर पावें लेकिन अपनी पशु-बुद्धि की सहायता से अपना थोड़ा बहुत काम चला ही लेते हैं।

बुद्धि के विभाजन का कोई ख़ास नियम नहीं दिखाई पड़ता लेकिन मोटे तौर पर इतना तो हम कह ही सकते हैं कि जिस जानवर के जितना मग्ज़ है, उसकी अक्ल भी उतनी ही होती है। लेकिन मग्ज़ या भेजे को हमें उनके बदन की तुलना में देखना चाहिए क्योंकि वैसे तो आदमी का मग्ज़ हाथी क्या शिम्पैन्ज़ी के भी मग्ज़ से तौल में कम होगा लेकिन आदमी का भेजा, जहाँ उसके बदन का $\frac{१}{६०}$वाँ हिस्सा होता है, वहीं हाथी का भेजा, उसके बदन का $\frac{१}{६००}$वाँ हिस्सा होता है। इसी नियम से बिल्ली शेर से ज़्यादा और कुत्ता घोड़े से अधिक बुद्धिमान् ठहरता है। लेकिन इसमें कुछ बातें और भी हैं जो कम महत्त्व नहीं रखतीं। अक्ल केवल भेजे की बड़ाई पर निर्भर नहीं रहती बल्कि उसके आकार, घनत्व और नाप का भी इसमें काफ़ी हाथ रहता है।

निम्न श्रेणी के जीवों का भेजा चिकना और बिना शिकन का होता है लेकिन उच्च श्रेणी के जीवों के भेजे में ज़्यादा शिकन होती है। नतीजा इसका यह होता है कि ज़्यादा शिकनवाले भेजे का रक़बा बढ़ जाने से उनमें अक़्ल भी ज़्यादा होती है।

मस्तिष्क का यह वर्णन, मस्तिष्क को थका देनेवाला ही नहीं बल्कि हमें धोखे में डाल देनेवाला भी है। पशु-बुद्धि या नैसर्गिक-बुद्धि जिसका

ज़िक्र ऊपर कर आया हूँ, साधारण बुद्धि से बिलकुल भिन्न है—और उससे भी भिन्न है ज्ञान, जिसका आधार है हमारी विचार-शक्ति या सोचने की ताक़त। पशुओं में सहज-बुद्धि तो बहुत प्रबल होती है, कम-बेश बुद्धि भी होती है पर उनमें विचार-शक्ति या ज्ञान नहीं होता लेकिन बन्दर जिस आसानी से नल खोल लेते हैं और चूहे जिस चालाकी से घी की शीशी में दुम डालकर घी चट कर जाते हैं, उसको देखकर हम कभी कभी यह शक करने लगते हैं कि जानवरों में ज्ञान भी है क्या ? लेकिन वास्तव में इन सबका संचालन ज्ञान से न होकर, उसी सहज-बुद्धि के द्वारा होता है, जिसमें थोड़ी-बहुत अक़्ल का भी नियन्त्रण रहता है। उनके बहुत से काम नक़ल से और बहुत से काम असफल होने पर निरन्तर उद्योग के कारण ठीक हो जाते हैं, जो हमें कभी कभी इस प्रकार के शक में डाल देते हैं।

किसी भी जीवधारी को देखने पर, सबसे पहले हमारी दृष्टि उसके रङ्ग की ओर जाती है। यही कारण है कि छोटी छोटी रङ्गीन चिड़ियाँ और सुन्दर तितलियाँ सहज ही में हमारा ध्यान अपनी ओर खींच लेती हैं और उन्हें देखकर हमारे मन में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि इनके इस रङ्गीन पोशाक का कारण क्या है ?

चिड़ियों के मुक़ाबले जानवरों के मामले में, प्रकृति ने रङ्ग के इस्तेमाल में कंजूसी ज़रूर की है लेकिन रङ्ग का जो उपयोग चिड़ियों तथा अन्य जीवधारियों में है, जानवर उससे बाहर नहीं हैं। चिड़ियों की तरह जानवरों का रङ्ग जहाँ मादा को रिझाने के लिए उपयोगी है, वहीं वह उन्हें छिपने में भी कम मदद नहीं देता। उनकी पीठ का रङ्ग पेट के रङ्ग से इसी लिए गाढ़ा होता है कि जिससे जानवरों को छिपने के लिए आसानी हो जावे। अगर उनके पेट का रङ्ग भी पीठ की तरह होता, तो पीठ पर धूप पड़ने से पीठ, पेट से हलके रङ्ग की जान पड़ती और जानवरों को उनके दुश्मन बड़ी आसानी से देख लेते। लेकिन चूँकि उनके पेट का रङ्ग पीठ से हलका

होता है, इससे जब पीठ पर धूप पड़ती है, तो वह भी हलके रङ्ग की होकर क़रीब क़रीब पेट के रङ्ग की हो जाती है। इस प्रकार जानवर जल्दी में अपने दुश्मनों की निगाह तले नहीं पड़ते। यही कारण है कि कुछ जानवरों की पीठ पर का रङ्ग चित्तीदार होता है, जिससे वे पेड़ के नीचे की धूप-छाँह में, इस तरह छिप जाते हैं कि जल्दी में उन्हें देखा ही नहीं जा सकता। लेकिन प्रकृति ने जहाँ चीतल आदि शाकाहारी जीवों को अपने दुश्मनों से छिपने के लिए चित्तीदार खाल दी है, वहीं चीते को भी उसी तरह की चित्तीदार पोशाक दी है जिससे उसे चीतल भी जल्द न देख सके। इस प्रकार शिकार और शिकारी दोनों को अपने जीवन-रक्षा के लिए, उनके शरीर का रङ्ग बहुत कुछ सहायक होता है। जिस प्रकार जानवरों को अपने रङ्ग का विकास करना पड़ा, उसी प्रकार उन्हें अपने को पास-पड़ोस के वातावरण के अनुरूप बनाने में अपनी शरीर-रचना में भी काफ़ी तब्दीली करनी पड़ी। पहाड़ के निवासी होने के कारण, भेड़ और बकरियों के पैर छोटे और पतले बन गए हैं, जिससे वे सँकरे पहाड़ी रास्तों पर आसानी से दौड़ सकें। जिराफ़ ने अपनी गरदन इतनी लम्बी इसी लिए बढ़ा ली है कि उसे पेड़ की फुनगी तक साफ़ करने में दिक़्क़त न पड़े। ऊँट ने रेगिस्तान की हालत देखकर अपने पेट में सैकड़ों पानी की थैलियाँ बना ली हैं, जिसमें वह हफ़्तों के लिए पानी जमा कर लेता है। हाथी अपना विशाल उदर भरने के लिए लम्बी सूँड़ का विकास न किये होता, तो वह कब का भूखों मर गया होता और साही ने यदि काँटों का कवच न पहन रखा होता तो सियार और भेड़िये उसे क्या कभी ज़िन्दा छोड़ते ?

लेकिन इस प्रकार के विकास की सबसे सुन्दर मिसाल, हमें अपने घोड़ों में मिलती है। क्या कभी इसका स्वप्न में भी गुमान किया जा सकता है कि हमारे इन अरबी और वेलर घोड़ों के पुरखे खरगोश के बराबर के चार अँगूठेवाले छोटे जानवर थे ? लेकिन बात दरअसल है ऐसी ही। उन्होंने किस प्रकार अपने अँगूठेदार पैरों का विकास करके

उन्हें मौजूदा सुमों में परिवर्तित कर लिया, इसको हम घोड़े के वर्णन के साथ दिए गए चित्र से भली भाँति समझ सकेंगे।

जानवरों में जोड़ा बाँधने का समय, चिड़ियों तथा अन्य जीवधारियों की तरह साल में बँटा-सा है लेकिन मनुष्यों के निकट-सम्बन्धी बनमानुष—जैसे इस नियम को नहीं मानते। जोड़ा बाँधने का समय आने पर नर जानवर मादा को रिझाकर उससे जोड़ा बाँध लेता है और फिर वे एक साथ रहने लगते हैं। उन्हें रिझाने में कभी अपना सुन्दर स्वरूप दिखाकर सफलता मिलती है, तो कभी अपना पराक्रम दिखाकर। यही कारण है कि नर हमेशा मादा से बलवान् और सुन्दर होते हैं।

रूप और पराक्रम के अलावा, मादा को रिझाने के लिए कुछ जानवरों को प्रकृति ने एक प्रकार की गंधग्रन्थियाँ दी हैं। कस्तूरीमृग के बारे में हम सब लोग जानते ही हैं। हाथी के मद बहने के बारे में भी तुमने सुना होगा। जोड़ा बाँधने के समय, नर हाथी की आँख के ऊपर की गंधग्रन्थि से, एक प्रकार का मद या गाढ़ा पदार्थ कनपटी पर होकर बहता है। इसी प्रकार का गाढ़ा द्रव पदार्थ, नर ऊँट के भी सर के पीछे की ग्रन्थि से निकलता है।

पशु-समाज में मादाओं की संख्या के बारे में, कोई निश्चित नियम नहीं है। कुछ पशु, सारस की तरह, एक मादा से जोड़ा बाँधकर उसी के साथ अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं, तो कुछ ऐसे भी हैं जो मोर की तरह अपनी मादाओं का रनिवास अपने साथ रखते हैं।

जोड़ा बँध जाने पर, वैसे तो प्रत्येक प्राणी सुरक्षित घर की इच्छा रखता है लेकिन इसके लिए एक साधारण नियम यह देखा जाता है कि घर बनाने का झुकाव, हमें निम्नश्रेणी के जीवों में अधिक मिलता है। चींटी, दीमक और मधुमाखी इसकी ज़िन्दा मिसाल हैं। लेकिन ज्यों ज्यों जीव अधिक बुद्धिमान् होते जाते हैं, उनमें घर का भाव जैसे कम होता जाता है।

पशुओं का भी यही हाल है। गिलहरी आदि कुछ जीव ऐसे ज़रूर हैं, जो सुन्दर घोंसले बनाते हैं और छछूँदर आदि कुछ बिल खोदने में उस्ताद

प्राणी भी हैं लेकिन ये पशु-जगत् के निम्नश्रेणी के जीव ही कहे जावेंगे। मांसभक्षी जीव जहाँ घने गढ़ों पर अकसर सन्तोष कर लेते हैं, वहीं पशुओं में सबसे विकसित प्राणी बनमानुष, अकसर पेड़ के नीचे ही अपनी गुज़र कर लेता है। लेकिन यहाँ एक बात न भूल जाना चाहिए कि जानवरों को छोटे छोटे कीड़ों-मकोड़ों और चिड़ियों की तरह, उतनी आसानी नहीं रहती और उन्हें अपने को दुश्मनों से बचाने के अलावा, अपना निवासस्थान, भोजन और पानी के बदलाव के साथ ही साथ बदलना पड़ता है। यदि वे एक जगह स्थायी घर बनाकर बस जावें, तो उन्हें दुश्मन तो साफ़ ही कर दें लेकिन अगर उनसे बच भी जावें तो उन्हें भूखों मर जाना पड़े।

जानवर घर बनाने के मामले में भले ही बे-परवाह हों लेकिन बच्चों के पालन-पोषण में वे बहुत दक्ष होते हैं क्योंकि यह बहुत कुछ बुद्धि पर निर्भर रहता है। इसी लिए बन्दर आदि जो घर बनाने में एकदम लापरवाह रहते हैं, अपने बच्चों के पालने में और उनकी शिक्षा-दीक्षा में किसी प्रकार की कमी नहीं करते। बँदरिया अपने बच्चे को केवल पेट से चिपकाए ही नहीं रहती बल्कि उसकी इतनी हिफ़ाज़त भी करती है, जितनी कोई नर्स क्या करेगी। वह अपने बच्चे को खाना देने से पहले उसे चख लेती है। यही नहीं वह बच्चे की शिक्षा में भी किसी प्रकार की कोताही नहीं करती। एक ओर जहाँ वह उसे अपनी दुम का सहारा देकर पेड़ पर चढ़ना सिखाती है, वहीं ज़रूरत पड़ने पर वह उसे मारती भी है।

इसी तरह चमगादड़ भी अपने बच्चों की देख-रेख करते हैं और यही हाल बहुत से मांसभक्षी और तीक्ष्णदन्त पशुओं का है। सिंघनी अपनी दुम हिलाकर अपने बच्चों को शिकार करना सिखाती है और पहाड़ी भेड़ के बच्चे अपनी माँ के पैर के इशारे से, दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर चलने की तालीम पाते हैं। इस प्रकार की शिक्षा वैसे तो बच्चे प्रायः अपनी माँ से ही पाते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी जानवर हैं जिनके नर के ऊपर ही बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का भार पड़ता है।

बच्चों के पालन-पोषण की तरह बच्चों की मुहब्बत का भी सम्बन्ध बहुत कुछ जानवरों की अक़्ल से है। इसी लिए हम कीड़ों से ज़्यादा चिड़ियों में और चिड़ियों से ज़्यादा स्तनपायियों में, मुहब्बत और प्रेम का जज़्बा पाते हैं।

पशुओं का प्रेम उन्हीं की जाति या वंश तक सीमित रहता हो, सो बात नहीं है। जानवर अपने जाति के प्राणियों के अलावा, दूसरे जीवों और पालतू हो जाने पर, मनुष्यों तक को प्यार करने लगते हैं। कुत्तों का प्रेम प्रसिद्ध ही है। हाथी और घोड़े भी अपने मालिक को कम प्यार नहीं करते। इसी तरह दूसरे पशुओं के प्रेम की अनेकों कथाएँ सुनने में आती हैं। कुत्ते तो अकसर मालिक के मरने पर रो रोकर मरते देखे गये हैं और प्रायः यह भी देखा गया है कि जोड़े के मर जाने पर कुछ जानवरों ने खाना छोड़ दिया और मर गये।

मुहब्बत के साथ ही साथ जानवरों में द्वेष का माद्दा भी कम नहीं होता लेकिन इन दोनों के होते हुए भी इनमें सोचने की शक्ति होती हो, इसका कोई सबूत हमें नहीं मिलता। इन दोनों प्रेरणाओं को वही उनकी सहजबुद्धि चलाती है।

कौन जानवर कितने दिनों तक जीता है, इसके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है क्योंकि जिन जानवरों के जीवन-काल का निरीक्षण किया गया है; वे प्रायः मनुष्यों की क़ैद में थे, जहाँ उन्हें न तो दुश्मनों का डर था और न भूखों मरने का। तो भी हमको इस विषय के जमा किये हुए आँकड़ों से कुछ न कुछ तो अंदाज़ लग ही जावेगा।

सबसे पहली बात जो हम इन आँकड़ों से जानते हैं, वह यह है कि जानवरों की उम्र उनके क़द पर बहुत कुछ निर्भर करती है। भारी भरकम शरीरवाले जीवों की उम्र छोटे क़दवाले जीवों से प्रायः ज़्यादा देखी गई है। दूसरी बात जो जानवरों की उम्र पर असर डालती है, वह उनका भोजन है। शाकाहारी या शाकपात के साथ थोड़ा मांसाहार करनेवाले जानवर, मांसभक्षी जानवरों से ज़्यादा जीते हैं। भले ही उन्हें मांसभक्षियों

की तरह थोड़े भोजन की जगह काफ़ी मिक़दार में भोजन की तलाश में इधर-उधर क्यों न भटकना पड़ता हो। एक बात इसी के साथ और भी जान लेना चाहिए कि जो जानवर जितनी जल्द जवान हो जाते हैं, वे उतने ही कम जीते भी हैं।

जानवरों की चाल की रफ़्तार के बारे में कुछ जानने से पहले, हमको उनके चलने के ढंग के बारे में कुछ जान लेना अप्रासंगिक न होगा। जानवरों की चाल अमूमन दो तरह की होती है—एक कुत्ते की चाल और दूसरी घोड़े की चाल। कुत्ते की चाल में जानवरों का पैर चक्राकार घूमता है। यानी जो जानवर कुत्ते की चालवाले हैं, वे जब अपने पिछले बायें पैर से चलना शुरू करते हैं, तो पहले उनका पिछला बायाँ पैर उठता है। उसके बाद उनका दाहिना पिछला पैर उठकर ज़मीन पर पड़ता है। इसके बाद दाहिना अगला पैर और फिर बायाँ अगला पैर उठकर ज़मीन पर क्रम से पड़ते हैं। इस प्रकार कुत्ते की चालवाले जानवर के पैर, एक गोलाई में चलते हैं और एक बार चक्कर पूरा होने पर एक बार ऐसा हो जाता है कि उसके चारों पैर एक साथ ज़मीन से उठ जाते हैं।

लेकिन दूसरे क़िस्म के जानवरों का—जिन्हें घोड़े की चालवाले जानवर कहते हैं—चलने का तरीक़ा दूसरा ही है। इनका पिछला बायाँ पैर अगर पहले उठता है, तो उसके बाद ही इनका पिछला दाहिना पैर चलता है लेकिन उसके बाद इनका अगला दाहिना पैर न चलकर अगला बायाँ पैर चलता है। उसके बाद कहीं अगले दाहिने पैर की पारी आती है।

कुत्ते, भेड़िये, लोमड़ी और हिरन की जातिवाले पशु कुत्ते की चालवाले कहे जाते हैं और घोड़े, गाय, बैल, भैंस, बकरे आदि घोड़े की चालवाले। इनके अलावा ऊँट और भालू दो जानवर ऐसे भी हैं जिनकी चाल सबसे अनोखी कही जा सकती है। ये चलते समय अपने एक ओर के दोनों पैर एक साथ उठाकर रखते हैं फिर दूसरी ओर के दोनों पैर। इस प्रकार इनकी चाल देखने में अजीब सी जान पड़ती है।

ये तो हुए जानवरों के चलने के कई तरीक़े, अब हम उनकी रफ़्तार की ओर आते हैं। जानवरों में सबसे तेज़ भागनेवाला, हमारा चीता है। यह हिरन से भी तेज़ दौड़ लेता है। इसकी रफ़्तार ६० मील प्रतिघंटा है। ग्रे हाउन्ड कुत्ता और जंगली भैंसा घंटे में ३५ मील, घोड़ा और हिरन ४० मील और खरगोश ४५ मील की रफ़्तार से भागते हैं। हाथी और गैंडा उत्तेजित होकर कुछ दूर तक भले ही बहुत तेज़ दौड़ लें लेकिन वैसे वे २५ मील प्रतिघंटा से ज़्यादा नहीं दौड़ सकते। लेकिन चमगादड़ों की तेज़ उड़ान देखकर सचमुच ताज्जुब होता है। तेज़ उड़ने में ये कुछ चिड़ियों से चाहे भले ही पिछड़ जावें, वैसे ये क़रीब क़रीब सब चिड़ियों से तेज़ ही उड़ते हैं।

जानवरों की ख़ूराक के बारे में कुछ लिखना बहुत कठिन है क्योंकि इनके भोजन की इतनी क़िस्में हैं कि उनका गिनाना संभव नहीं। लेकिन मोटी तौर पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इनके भोजन की सूची में, घास-पात, जड़ें, कीड़े-मकोड़े तथा हर तरह के मांस शामिल हैं।

जानवरों के वर्गीकरण में, उनके भोजन को काफ़ी महत्त्व दिया गया है और इसी कारण मांसभक्षी-वर्ग में वे ही जानवर रखे गए हैं जो या तो पूर्णरूप से मांसाहारी जीव हैं या अपने मुख्य आहार मांस के साथ-साथ कुछ फल वग़ैरह भी खा लेते हैं। जानवरों के दूसरे बड़े शफ-वर्ग में इसी तरह शाकाहारियों को एकत्र किया गया है, जिनका मुख्य भोजन शाकपात है।

यही हाल और वर्गों का है। कर-पक्ष-वर्ग, जिसमें हर तरह के चमगादड़ हैं, इसी प्रकार दो हिस्सों में बँटा है। इसमें कुछ कीटभोजी चमगादड़ हैं तो कुछ फलाहारी। तिमिवर्ग के जीव मछलियों पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, तो वानर-वर्ग के कुछ वनमानुष और कुछ बन्दर ऐसे भी हैं, जिन्हें फल, फूल, दाना, रोटी, गोश्त किसी से भी परहेज़ नहीं है।

खाने की तरह, सभी जीवधारियों के लिए सोना भी जीवन का एक आवश्यक अंग है, लेकिन सबके सोने का समय और ढंग अलग अलग है। जानवर प्रायः दिन को सोते हैं और चिड़ियाँ रात को लेकिन सब जानवरों पर यह बात लागू नहीं होती और उन जानवरों में तो दिन में सोने की आदत को ही जैसे भुला दिया है, जिन्हें आदमियों ने पालतू कर रखा है।

सोना जीवधारियों के लिए इसलिए भी ज़रूरी है कि सोते समय शरीर की मांस पेशियों की थकान तो निकल ही जाती है, साथ ही साथ शिथिल स्नायुयों को नवीन शक्ति भी मिल जाती है। और ऐसे समय जब ख़ूराक़ की कमी रहती है, शरीर को क़ायम रखने के लिए, सोना एक ज़रूरी ही नहीं लाज़मी सा हो जाता है। यही वजह है कि उत्तरी ध्रुव के आस-पास के जानवर, जाड़ों में बर्फ़ जम जाने के कारण महीनों अर्धसुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। उस समय उनका रक्तसंचार धीमा पड़ जाता है और उनके शरीर के सारे अवयव, काम करना बन्द करके सुस्त पड़ जाते हैं। तब उनके शरीर में एकत्रित चर्बी से ही उनके शरीर की मशीन चलती रहती है।

जाड़े की इस लम्बी निद्रा को अँगरेज़ी में 'हाइबरनेट' करना कहते हैं और इस प्रकार के शीतशायी-प्राणियों को 'हाइबरनेशन' कहा जाता है। उत्तरी ध्रुव का भालू इसकी सुन्दर मिसाल है। शीतकाल में बर्फ़ीले प्रान्तों में जब खाने की सुविधा नहीं रह जाती, यह शीतशायी-जानवर अपने को बर्फ़ के नीचे गाड़ लेता है और फिर गर्मी आने पर इसकी कुम्भकर्णी निद्रा कहीं जाकर टूटती है। इस निद्राकाल में उसका मस्तिष्क सुप्तावस्था में रहता है और उसके हृदय की गति बहुत धीरे धीरे चलती रहती है।

पशुओं में समाज-संगठन का ज्ञान होता है या नहीं, इसके बारे में कुछ जानने के पहले, हमें यह जान लेना चाहिए कि समाज की परिभाषा क्या है? पशुओं के झुण्ड या समूह को, समाज नहीं कहा जा सकता बल्कि समाज तो परिवारों के उस समूह से बनता है, जो आपस

में मेल-जोल रखकर, एक दूसरे की मदद करते हैं और एक दूसरे की उन्नति में सहायक होते हैं। उनमें स्थायित्व तो होता ही है, साथ ही साथ, उसके संचालन में बुद्धि की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। इसी लिए यदि हम समाज का कुछ स्वरूप पशु-जगत् में देखते हैं, तो उन्हीं पशुओं में, जो औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् हैं। हमें कीड़े-मकोड़ों से ज़्यादा चिड़ियों में और चिड़ियों से ज़्यादा पशुओं में, समाज-संगठन का आभास मिलता है। लेकिन इसको भी हम समाज का सच्चा स्वरूप नहीं कह सकते।

जानवरों में बन्दर सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं। उनमें एक दूसरे की मदद, आपस का मेल-जोल और गोलबन्दी की भावना और दूसरे जानवरों से कहीं ज़्यादा है। लेकिन उनका संगठन भी, समाज नहीं कहा जा सकता, भले ही उसमें हम समाज की कुछ बुनियादी छाया पाते हों।

कुछ जानवर ऐसे हैं, जो अपने में से एक को सरदार चुन लेते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो पशुओं के हमले के समय आक्रमणकारी पर संगठित होकर हमले का मुक़ाबला या प्रत्याक्रमण करते हैं लेकिन इसको भी, बुद्धि द्वारा संगठित समाज नहीं कहा जा सकता। यह तो उसी सहज बुद्धि का परिणाम है जो उनमें स्वभावतया रहती है।

अन्त में हमें यह देखना है कि जानवर हमारे मित्र हैं या शत्रु? उनसे हमको लाभ होता है या हानि? इसकी खोज के लिए, जब हम सारे पशु-जगत् पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें मालूम होता है कि जानवर हमारे लिए, अन्य जीवों से कहीं अधिक फ़ायदेमन्द हैं। वे हमें सीप की तरह मोती जैसी मूल्यवान् वस्तु भले ही न देते हों लेकिन उनमें से बहुतों ने, अपना जंगल छोड़कर, सदा के लिए हमारे साथ रहना पसन्द किया है। गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा, हाथी आदि बहुत से ऐसे जानवर तो हैं ही, जिनका मनुष्य की उन्नति में बहुत बड़ा हाथ रहा है लेकिन उन्हीं के साथ साथ हम भेड़-बकरी की तरह के, उन निरीह पशुओं को भी नहीं भूल सकते, जिन्होंने न जाने कितने समय से हमारी उदरपूर्ति का

साधन बनकर मनुष्य-जाति को जीवित रखा है। आज भी हम उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकते और आज भी हमारे जीवन में, उनका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इतना ही क्यों, उनमें से कितने ही इस समय भी हमारी सवारी और यातायात के साधन ब े हुए हैं। उनकी एक बड़ी संख्या इस समय भी अपने मांस से केवल रा पेट ही नहीं भरती बल्कि अपने ऊन और चमड़े से हमारा बदन भी ढकती है। हम उनकी कुछ सहायता भले ही न करें लेकिन क्या हम उनके एहसान से कभी इनकार कर सकते हैं?

यह तो हुआ जानवरों का संक्षिप्त परिचय लेकिन उनके बारे में विशेष रूप से जानने के लिए, हमें अपना समय निकाल कर, उनका सूक्ष्म निरीक्षण करना पड़ेगा। उनके रङ्ग-रूप, उनकी शकल-सूरत और उनके मामूली परिचय के लिए पुस्तकें, चिड़ियाख़ाना और अजायबघर हमारे सहायक भले ही हों लेकिन उनकी रहन-सहन, उनकी आदत और उनके स्वभाव के बारे में हम तभी भली भाँति जान सकते हैं, जब हम काफ़ी परिश्रम करके उनका सूक्ष्म निरीक्षण करें। इस छोटी सी पुस्तक में तो केवल अपने देश के १०० जानवरों का वर्णन दिया गया है। उसमें भी सबसे सभ्य लेकिन वर्तमान साम्प्रदायिक दंगों को देखते हुए सबसे अ ाभ्य पशु 'मनुष्य' को छोड़ ही दिया गया है।

कालाकाँकर
२०-१०-४६ ई०

—सुरेशसिंह

परिचय

वास्तव में यदि देखा जावे तो हम सभी जीवधारियों को जानवर कह सकते हैं, लेकिन हमारे यहाँ यह शब्द स्तनप्राणियों के लिए इतना ज़्यादा इस्तेमाल हो चुका है कि अब जानवरों से केवल स्तन-प्राणियों का ही बोध होता है। इस पुस्तक में भी अपने देश के उन १०० स्तनप्राणियों का वर्णन दिया जा रहा है जो काफ़ी प्रसिद्ध हैं और जिनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी रखना हमारे लिए ज़रूरी है।

स्तनप्राणी—जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, वे जीवधारी हैं जो अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाते हैं। ये तीन मुख्य भागों में बाँट दिये गए हैं।

(१) पहले हिस्से में वे स्तनप्राणी आते हैं जो अंडे देते हैं। जैसे डक बिल (Duck Bill)। यह हमारे देश का निवासी नहीं है।

(२) दूसरे भाग में वे स्तनप्राणी जीव हैं जो बच्चे जनते हैं लेकिन उन्हें अपने पेट की बाहरी थैली में रखते हैं, जैसे कंगारू यह भी हमारे यहाँ नहीं पाया जाता।

(३) तीसरे हिस्से में बाकी और सब स्तनप्राणी हैं, जिनकी संख्या बहुत ज़्यादा है। इनकी शरीर-रचना आदत और अन्य गुणों के अनुसार इनका फिर इस प्रकार विभाजन किया गया है।

हमारे यहाँ पाए जानेवाले जानवर, जिन ६ वर्गों में बाँटे गए हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१—**वानर-वर्ग (Order Primates)**—इस वर्ग में वे जानवर हैं जो वानर या उनके निकट-सम्बन्धी हैं। ये सब पेड़ पर चढ़ने में उस्ताद होते हैं।

२—**करपक्ष-वर्ग** (Order Chiroptera)—इस वर्ग में चमगादड़ और उनसे मिलते हुए कुछ जानवर हैं, जिनके हाथ की उँगलियाँ उनके शरीर से भी लम्बी हो गई हैं और जो आपस में एक झिल्ली से जुटी रहने के कारण, उनको चिड़ियों से भी तेज़ उड़ने के योग्य बना देती हैं।

३—**कीटभक्षी-वर्ग** (Order Insectivora)—इस वर्ग में छछूँदर आदि जीव रखे गए हैं, जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं और जिनको ज़मीन में आनन फानन बिल खोदने की शक्ति प्राप्त है।

४—**मांसभक्षी-वर्ग** (Order Carnivora)—यह बड़ा वर्ग अपने में सिंह को लेकर लोमड़ी तक को लपेटे हुए है। तेज़ दाँत और नोकीले पंजे इस वर्ग के प्राणियों की विशेषता है और मांस है इनका मुख्य आहार, जिसके लिए ये प्रसिद्ध हैं।

५—**तिमि-वर्ग** (Order Cetacea)—इस वर्ग में जानवरों की संख्या तो थोड़ी ही है लेकिन एक दूसरे के आकार में इतना अधिक भेद रहता है कि ये एक वर्ग के प्राणी जान ही नहीं पड़ते। समुद्र की ह्वेल (तिमि) और गंगा की सूस के क़द में ज़मीन-आसमान का अन्तर रहता है लेकिन हैं दोनों इसी वर्ग के जीव। ये पानी में रहनेवाले मांसाहारी प्राणी हैं।

६—**समुद्रधेनु-वर्ग** (Order Sirenia)—यह वर्ग तिमि वर्ग से भी छोटा है। हमारे यहाँ इस वर्ग का केवल एक ही प्राणी 'समुद्रधेनु' पाया जाता है, जो समुद्र का निवासी है। यह शाकाहारी जीव है।

७—**तीक्ष्णदंत-वर्ग** (Order Rodentia)—इस वर्ग के जानवरों का अस्त्र उनके तेज़ दाँत हैं, जिनसे ये चीज़ों को तुरन्त कुतर डालते हैं। चूहे से लेकर खरगोश और साही तक इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। ये बिलों में रहनेवाले जीव हैं।

८—**शफ-वर्ग** (Order Ungulata)—यह वर्ग, मांस-भक्षी वर्ग से भी बड़ा है। इसमें हाथी-घोड़े से लेकर भेड़, बकरी और हिरन

की सभी जातियाँ सम्मिलित हैं। अपने खुर (सुम) के कारण ये अन्य जानवरों से अलग कर दिये गए हैं।

९—अदंत-वर्ग (Order Edentata)—इस अन्तिम वर्ग का केवल एक ही जानवर 'साल' हमारे देश में पाया जाता है जिसके दाँत नहीं होते। इस वर्ग का नाम इसी से अदंत वर्ग पड़ा है। साल अकेला होने पर भी इतना अद्भुत जानवर है कि उसके लिए एक अलग वर्ग बनाना ज़रूरी हो गया। यह पुराने भीटों और खड़हरों में रहता है और बहुत ही कम दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार ६ वर्गों में हमारा पशु-जगत् विभक्त है। इस पुस्तक में भी सुविधा के लिए हमने ६ हिस्से करके, प्रत्येक वर्ग का अलग अलग वर्णन दिया है और प्रत्येक भाग के प्रारम्भ में उस वर्ग के जानवरों के बारे में कुछ संक्षिप्त वर्णन भी दे दिया है, जिससे पाठकों को उनके रहन-सहन, आदतों और उनकी शरीर रचना के बारे में कुछ जानकारी हो जावे।

विषय-सूची

हमारे जानवर

हमारे जानवर

१

वानरवर्ग

Order Primate

वानर-वर्ग में केवल बंदर ही हों सो बात नहीं है। इसमें बंदरों के अलावा बनमानुष, लंगूर और लजीले बंदर भी शामिल हैं।

यह वर्ग दो उपवर्गों में बाँट दिया गया है जिसमें पहले वर्ग में लंगूर, बंदर और बनमानुष हैं, जिनका चेहरा मनुष्यों का सा होता है और दूसरे उपवर्ग में लजीले-बंदर हैं, जिनका मुख बंदरों की तरह गोल न होकर लोमड़ियों की तरह पतला और नुकीला होता है। इस वर्ग के जानवरों की शकल-सूरत और क़द में कुछ भेद ज़रूर रहता है और कुछ आदतें भी एक दूसरे से भिन्न होती हैं, लेकिन इनकी शरीर-रचना में एक प्रकार की समता रहती है और इन सबकी पेड़ पर चढ़ने की आदत तो जैसे आज भी इसकी गवाह है कि ये सब एक ही वर्ग के प्राणी हैं। एक डाली से दूसरी डाली पर और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने में तो ये सब उस्ताद होते हैं और इसमें शायद ही किसी ने इनको गिरते देखा हो।

हमारे देश में बड़े बनमानुष नहीं पाये जाते। सिर्फ गिबन जाति के छोटे बनमानुष जिन्हें उलक या हुक्कू कहते हैं, देश की पूर्वी सीमा के जंगलों में मिलते हैं। इन बनमानुषों के हाथ ओरांग Orang जाति के बनमानुषों के हाथ की तरह लम्बे होते हैं और इनका माथा शिम्पैन्ज़ी Chimpanzi बनमानुषों के माथे की तरह पीछे की ओर दबा दबा सा रहता है। बंदरों की तरह न तो इनके दुम ही होती है और न गाल की थैलियाँ ही। लेकिन पेड़ों पर चढ़ने में ये उनसे कम नहीं होते। ये आदमियों की तरह ज़मीन पर दो टाँगों से भी चल लेते हैं और इनमें एक ख़ास बात यह होती है कि इनके कुकुरदंत Canine teeth होते हैं— जो और बंदरों के नहीं होते।

बंदरों की कई जातियाँ हमारे यहाँ हैं जो सारे देश में फैली हुई हैं। इनसे हम सभी परिचित हैं। इनके अलावा लंगूर भी हमारे देश के ज्यादा हिस्सों में पाये जाते हैं। ये हनुमान् भी कहलाते हैं। अपने बड़े क़द, काले चेहरे और लम्बी दुम के कारण ये भले ही बंदरों से अलग रहें, पर इन दोनों की आदतों में ज्यादा भेद नहीं होता। ये दोनों अपना ज्यादा समय पेड़ों पर बिताते हैं लेकिन जहाँ इन्हें बस्तियों का चस्का लग गया है, वहाँ इनके झुंड के झुंड हमको रोज़ ही दिखाई पड़ते हैं। इन्हें गरम स्थानों में रहना ज्यादा पसन्द है।

दूसरे उपवर्ग के लजीले-बंदर को कहीं कहीं शरमीली बिल्ली भी कहते हैं। इसकी बिल्ली की सी शकल और दिन भर छिपे रहकर रात में निकलने की आदत के कारण इसको यह नाम मिला है। यह बिल्ली से भी छोटा जानवर है, जिसे घने जंगलों में रहना ज्यादा अच्छा लगता है। यह हमारे देश में धुर दक्षिण और पूर्वी बंगाल के जंगलों में ही पाया जाता है।

१—ऊलक बनमानुष

White-browed Gibbon-Hylobates hoolock

बनमानुषों के परिवार में गोरिला, शिम्पैन्ज़ी, ओरांग उटांग, आदि कुछ बड़े और प्रसिद्ध बनमानुष हैं, जिनका नाम हम लोगों

ऊलक डंका इटम

ने ज़रूर सुना होगा लेकिन ये हमारे देश के निवासी नहीं हैं। गोरिला और शिम्पैन्ज़ी का निवास-स्थान अफ़्रीका है; और ओरांग

उटांग सुमात्रा और बोर्नियो के द्वीपसमूह का निवासी है। हमारे यहाँ तो 'गिबन' जाति के दो बनमानुष पाये जाते हैं, जो छोटे क़द के बनमानुष हैं। बंदरों की तरह, ये हमारे यहाँ सारे देश में नहीं फैले हैं बल्कि इनका निवास आसाम और मलाया के जंगलों तक ही सीमित है।

बनमानुषों के बारे में कुछ जानने से पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि इनकी शकल-सूरत बहुत कुछ मनुष्यों से मिलती-जुलती होने पर भी, ये कई बातों से हम लोगों से बिलकुल जुदा हैं। इनमें और हममें सबसे बड़ा भेद तो यह होता है कि जहाँ हम लोगों के हाथ और पैर की बनावट में फ़र्क़ होता है, बनमानुषों के हाथ पैर बहुत कुछ एक जैसे ही होते हैं। और ये अपने पैरों से भी हाथों की तरह काम ले सकते हैं।

हमारे यहाँ के दोनों बनमानुषों की शकल-सूरत और क़द में वैसे तो ज्यादा भेद नहीं होता लेकिन उनके रंग में कुछ फ़र्क़ तो रहता ही है। यहाँ जिस बनमानुष का सचित्र वर्णन दिया जा रहा है वह आसाम का निवासी है और जिसका केवल चित्र दिया जा रहा है वह मलाया के जंगलों में पाया जानेवाला दूसरा बनमानुष है। आसाम के बनमानुष की भौं सफ़ेद रंग की होती है और मलायावाले के हाथ सफ़ेद होते हैं। बाक़ी और बातों में ये दोनों एक दूसरे से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

आसाम के बनमानुष को उलक या हुक्कू कहते हैं। यह हमारे देश में आसाम के दक्षिणी प्रान्त से लेकर अराकान के जंगलों तक पाया जाता है। इसे पहाड़ के घने जंगलों में रहना ज्यादा पसन्द है। जहाँ इसे एक डाली से झूलकर दूसरी डाली पर जाते हुए देखना कुछ मुश्किल नहीं।

उलक जैसा ऊपर बता आये हैं, छोटे जाति का बनमानुष है, जिसके शरीर की लम्बाई लगभग दो फ़ुट होती है। नर बनमानुष

धुर काले रंग का होता है और उसकी भौहों पर एक एक आड़ी सफ़ेद धारी पड़ी रहती है। मादा धुर काले रंग की न होकर कलछौंह भूरी होती है। उस भूरेपन में कभी कभी कुछ सफ़ेदी भी मिली रहती है। नर और मादा दोनों के पेट का रंग गाढ़ा होता है लेकिन पीठ की ओर का और हाथ पैर का बाहरी हिस्सा उससे कुछ हलका ही रहता है।

ऊलक वैसे तो गरोह में रहनेवाला जानवर है लेकिन कभी कभी कोई पुराना नर ऊलक अकेला भी दिखाई पड़ता है। एक एक झुंड में ८० से १०० तक ऊलक रहते हैं। ये सुबह शाम इतना शोर मचाते हैं कि इनके रहने की जगह का पता दूर ही से चल जाता है। ये वैसे तो अपना ज्यादा समय पेड़ों पर ही बिताते हैं लेकिन खाने-पीने के लिए जब जमीन पर उतरते हैं, तो बंदरों की तरह चारों पैरों से कूद कूद कर भागने के बजाय ये हमलोगों की तरह दो पैरों से ही चलते हैं। जमीन पर चलते समय, ये बहुत तेज़ ज़रूर नहीं भाग पाते और इनको आदमी बड़ी आसानी से दौड़कर पकड़ सकता है लेकिन अपने चौड़े पंजे की उँगलियों को फैला कर ये अपने शरीर को, एक हिसाब से, बहुत खूबी से साध लेते हैं।

ऊलक बहुत जल्द पालतू हो जानेवाला जीव है, जो बड़ी उम्र में भी पकड़े जाने पर आसानी से पल जाता है। लेकिन इसकी बोली इतना भद्दी और जी उबा देनेवाली होती है कि इनको लोग ज्यादा पालना पसन्द नहीं करते। ये सबेरा होते ही बोलना शुरू कर देते हैं और ९-१० बजे तक जैसे इन्हें बोलने के सिवा और कोई दूसरा काम ही नहीं रहता। उसके बाद ये खाने-पीने की फ़िक्र में लग जाते हैं और खा पीकर शाम तक आराम करते हैं। शाम को फिर इनकी कर्कश बोली से एक बार सारा जंगल गूँज उठता है।

ऊलक बंदरों की तरह शाकाहारी नहीं होते बल्कि ये अपनी

२—बन्दर

The Bengal monkey—Macacus rhesus

हमारे यहाँ ऐसा कौन है जो बन्दरों से परिचित न हो। इनके और हमारे पूर्वज निकट-संबंधी रहे हों या नहीं लेकिन ये तो
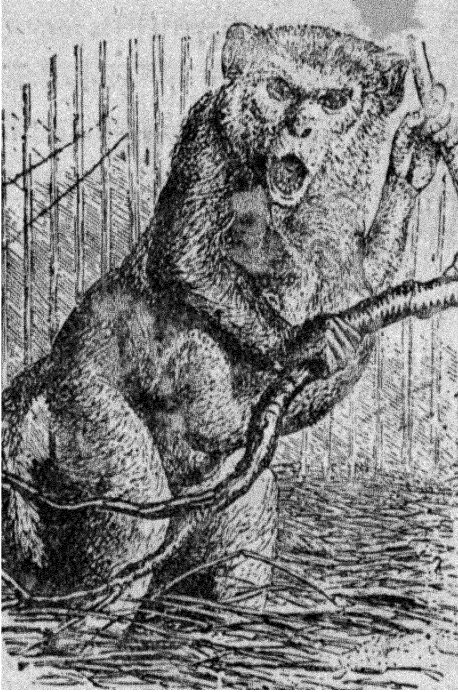
बन्दर

हमारे इतने निकट रहने-वाले प्राणी हैं कि अगर इनमें इतना ऊधम न होता तो शायद लोग इन्हें घर में चूहे और बिल्लियों की तरह आज़ादी से घूमने-फिरने देते। पर ये इतने शरारती होते हैं कि जिस गाँव या शहर में इनकी संख्या बढ़ी नहीं कि वहाँ के लोग इनके ऊधम से परेशान हो जाते हैं। हमारे यहाँ धार्मिक विचारों के कारण इनका मारना सम्भव नहीं होता इससे इनसे बचने के लिए आदमियों को अपने दालान और खुली सहन में जँगले लगाकर ख़ुद ही पिंजड़े में बन्द हो जाना पड़ता है।

वैसे तो बन्दरों की ८-१० जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं, लेकिन इनमें से दो मुख्य हैं। एक 'मद्रास का बन्दर' Madras Monkey—Macacus radiatus जो दक्षिण भारत का निवासी है और दूसरा 'बंगाल का बन्दर' Bengal Monkey—

यह उससे कहीं आगे है। आदमियों से तो यह इतना ढीठ हो गया है कि जैसे इसे उनसे किसी प्रकार का डर ही नहीं रह गया है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो दाना और फल वग़ैरह है लेकिन बस्तियों के पास के बन्दर रोटी, मिठाई और हर क़िस्म का पका हुआ खाना बड़े मज़े में खाते हैं। इतना ही नहीं ये कीड़े-पतिंगे और अंडे बड़े चाव से खाते हैं।

इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है। बच्चा जब तक बड़ा नहीं हो जाता तब तक अपनी मा के पेट पर इस मज़बूती से चिपका रहता है कि मा के एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते समय वह कभी गिरता नहीं।

मद्रास के बन्दर उत्तरी भारत के बन्दरों से क़द में कुछ छोटे ज़रूर होते हैं लेकिन उनकी दुम इनसे कुछ ज्यादा लम्बी होती है। उनके सर पर के बाल भी उत्तरी बन्दरों से ज्यादा बड़े होते हैं। उनका रङ्ग भी जैतूनीपन लिये भूरा होता है जो नीचे जाकर हलका तो हो ही जाता है साथ ही साथ उसमें कुछ सफ़ेदीपन भी आ जाता है। उन बन्दरों के हाथ-पैर का बाहरी हिस्सा राखी और दुम स्याहीपन लिये भूरा रहता है। दुम के नीचे का हिस्सा सफ़ेदी मायल रहता है। मद्रास के बन्दरों की आदत, स्वभाव और बाक़ी और सब बातें बंगाल के बन्दरों से मिलती जुलती होती हैं।

३—नील-वानर

The Lion tailed Monkey—Macacus silenus

नील-वानर दक्षिण-भारत का निवासी है। यह नल-नील के खानदान का है या नहीं, यह तो कोई भी नहीं कह सकता लेकिन इतना तो निश्चय है कि यह हमारे देश के अलावा और कहीं नहीं पाया जाता।

Macacus rhesus जो दक्षिण भारत को छोड़कर सारे भारत में फैला हुआ है। यहाँ इसी का वर्णन किया जा रहा है।

ये बन्दर उत्तरी भारत में काफ़ी संख्या में फैले हुए हैं, जहाँ के बड़े-बड़े तीर्थस्थानों में इनका लाखों का गोल दिखाई पड़ता है। हिमालय की तराई से लेकर गोदावरी तक के प्रान्त को इनका निवास कहा जा सकता है। वैसे ये हिमालय में भी लगभग ५००० फ़ुट तक पाये जाते हैं। काश्मीर या शिमला के आस-पास तो ये इससे भी कुछ ज्यादा ऊँचाई पर देखे जाते हैं लेकिन शीतकाल के प्रारम्भ होते ही ये नीचे की ओर लौट आते हैं। पश्चिम की ओर ये बम्बई के पास-पड़ोस तक मिलते हैं लेकिन दक्षिण की ओर इनका गोल मध्यप्रान्त के आगे नहीं जाता।

इन बन्दरों का क़द ज्यादा से ज्यादा २० इञ्च का होता है जिसमें इनकी १०-११ इञ्च लम्बी दुम शामिल नहीं है। मादाएँ नर से कुछ छोटी होती हैं।

बन्दर के बदन का ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का होता है, जिसमें कुछ हलके खैरेपन की मिलावट और राखीपन की झलक रहती है। नीचे का हिस्सा ऊपर के हिस्से से कुछ हलके रंग का होता है। इनके चेहरे पर और नीचे बैठक की जगह बाल नहीं रहते। बैठक का हिस्सा लाल रंग का होता है जो बन्दरों की उम्र के साथ ही साथ और भी चटक होता जाता है। बुड्ढे होने पर इसी तरह की सुर्खी बन्दरों के चेहरों पर भी फैल जाती है।

बन्दरों के बारे में हम लोग ख़ुद ही इतनी ज्यादा जानकारी रखते हैं कि उसको यहाँ फिर से दोहराने की ज़रूरत नहीं है। ये कितनी जल्द पालतू हो जाते हैं और इनको सिखा पढ़ाकर किस तरह मदारी लोग तरह तरह के खेल दिखाते हैं यह हम सबने देखा ही होगा।

बन्दर, लंगूर से क़द में छोटा ज़रूर होता है लेकिन शरारत में

नील-वानर को कहीं कहीं स्याहबन्दर भी कहते हैं। यह हमारे यहाँ केवल दक्षिण-भारत में और वहाँ भी सिर्फ़ पश्चिमी घाट के पहाड़ी जंगलों में अपना निवास बनाये हुए है। यह वहाँ और स्थानों की अपेक्षा कोचीन और ट्रावनकोर की रियासतों में ज़्यादा तादाद में मिलता है।
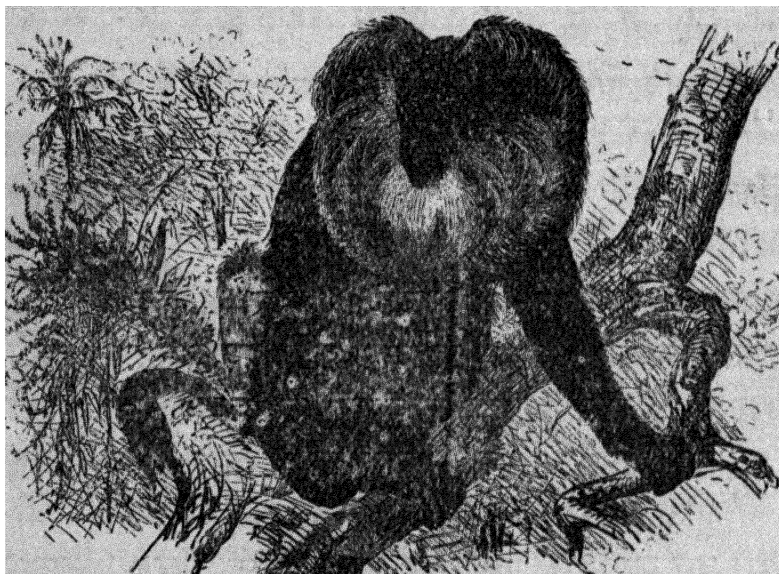
नील-वानर

नील-वानर दो फ़ुट से कुछ छोटे ही क़द का बन्दर है जिसकी दुम १०-१२ इञ्च से कम नहीं होती। इसकी मादा नर से कुछ छोटी होती है।

नील-वानर की शकल देखकर जल्दी में बब्बर शेर का धोखा हो जाता है क्योंकि इसके चेहरे के चारों ओर उसी तरह लम्बे और घने बाल रहते हैं जैसे सिंह के। इसके ये लम्बे बाल जिन्हें अयाल कहते हैं इसकी गुद्दी पर से बढ़कर इसके चेहरे के चारों ओर फैल जाते हैं। इससे इसे आराम मिलता है या तकलीफ़ यह तो ठीक से नहीं कहा जा सकता लेकिन इतना तो प्रत्यक्ष है कि

इससे इसकी शकल ज़रूर भयानक हो जाती है। इसकी दुम भी बन्दरों की तरह मादी नहीं होती बल्कि उसके सिरे पर सिंह की दुम की तरह बालों का एक गुच्छा रहता है।

नील-वानर काले रंग का बन्दर है जिसके चेहरे के चारों ओर के बड़े और लंबे बाल सिलेटी रंग के होते हैं। सीने पर का रंग हलका रहता है जो बचपन में भूरा रहता है। सिर पर बालों का एक गुच्छा सा होता है जिसका रंग सफ़ेदी मायल रहता है।

स्याहबन्दर बहुत घने और ऊँचे जंगलों का रहनेवाला जीव है जो ऊलक की तरह गोल बनाकर रहता है। इसके गरोह में १५ से २० तक बन्दर रहते हैं। वैसे देखने में यह तेज़ और जंगली ज़रूर जान पड़ता है लेकिन वास्तव में यह बहुत ही शरमीला और सतर्क जीव है, जो भरसक अपने को छिपाने की ही कोशिश करता है। पकड़े जाने पर यह ज़रूर बहुत गुस्सा दिखाता है और तब इसके पास जाने में भी डर लगता है। यही वजह है कि इसको पालतू करके मदारी लोग नहीं नचा पाते।

इसके नर की बोली आदमियों की बोली से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है जो अकसर जंगलों में दूर से ही सुनाई पड़ती है।

भोजन के मामले में नील-वानर और दूसरे बन्दरों से जुदा नहीं होते। इनका भी भोजन वही फल-फूल, गल्ला और कीड़े-मकोड़े हैं।

४—लंगूर

The Langur or Hanuman monkey
Semnopithecus entellus

बंदरों की तरह लंगूर भी हमारे परिचित जानवरों में से एक है। बंदरों की तरह ये हमारे गाँवों और बागों में उतनी अधिक संख्या में नहीं रहते और इससे इन्हे देखने का हमें कम मौक़ा ज़रूर मिलता

है लेकिन एक बार इन्हें देख लेने पर फिर इनको भूल जाना आसान नहीं। इनका क़द बंदरों से कुछ ही बड़ा होता है लेकिन इनकी दुम बंदरों की दुम से काफ़ी लंबी होती है। इसी लंबी दुम के कारण जहाँ उन्हें हनुमान् का सुन्दर नाम मिला है वहीं इनके काले मुख के कारण गाँवों में लोग इन्हें 'करमुखहा' बानर कह कर पुकारते हैं।
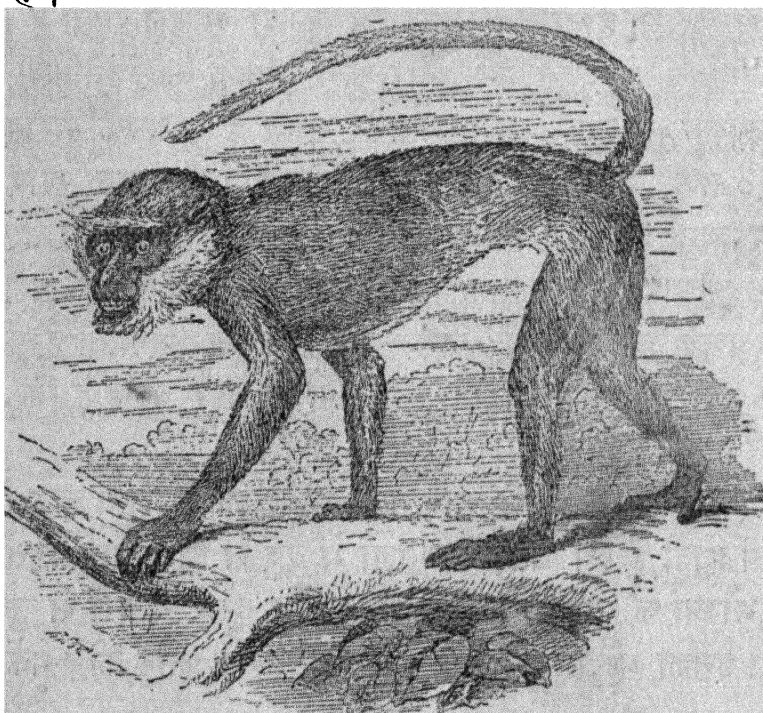
लंगूर

लंगूर वास्तव में मध्यभारत का निवासी है। यह पूरब की ओर बंगाल की पश्चिमी सीमा तक और उत्तर की ओर हिमालय की तराई तक पाया जाता है। दक्षिण की ओर इसकी सीमा मध्यप्रान्त तक है और पश्चिम की ओर यह वैसे तो काठियावाड़ और गुजरात तक फैला हुआ है लेकिन सिन्ध पंजाब में यह नहीं पाया जाता।

नर लंगूर का क़द लगभग दो फ़ुट होता है जिसमें उसकी

४०-४२ इञ्च लम्बी दुम शामिल नहीं है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। लंगूर का सर, हाथ-पैर, दुम और सारा बदन पिलछौंह मटमैला या सिलेटीपन लिये भूरा होता है। इसकी पीठ पर का रंग पेट के रंग से गाढ़ा रहता है और इसका चेहरा, कान और तलुवे धुर काले होते हैं। हाथ और पैर का ऊपरी हिस्सा भी काला ही रहता है लेकिन कभी कभी सर का रंग हलका भी हो जाता है। बच्चों का चेहरा शुरू में काला नहीं रहता लेकिन ज्यों ज्यों उनकी उम्र बढ़ती जाती है उनके चेहरे की स्याही भी बढ़ती जाती है।

लंगूर हनुमान का खिताब पाकर भी बंदरों से कुछ ज्यादा पाक नहीं माने जाते। वैसे हिन्दू लोग इनको भी नहीं मारते और बंदरों की तरह इनके भी उत्पात को सहन करते हैं। एक काम जो इनसे और भी लिया जाता है वह यह है कि जहाँ बंदरों का ऊधम ज्यादा बढ़ा रहता है वहाँ अकसर दो एक लंगूर इसलिए लाकर छोड़ दिये जाते हैं कि वे बंदरों को वहाँ से भगा दें। कभी कभी यह तरकीब काम दे जाती है और इनके डर से सचमुच बंदर उस स्थान को छोड़ देते हैं; लेकिन जहाँ बंदरों की संख्या बहुत ज्यादा होती है वहाँ दो-एक लंगूर कर ही क्या सकते हैं।

लंगूर की बोली से जंगल में शिकारियों को भी काफी मदद मिलती है। अकसर यह देखा गया है कि जंगल में यदि शेर को किसी ओर जाते हुए लंगूरों ने देख लिया तो वे उसी के आस-पास के पेड़ों पर रहकर काफी शोर मचाते रहते हैं।

लंगूर जंगलों में काफी बड़े बड़े गरोह बनाकर रहते हैं, लेकिन इनके गरोह हमें गाँव-बस्तियों या उनके आस-पास के बाग़-बगीचों में नहीं मिलेंगे। ये बंदरों की तरह आबादी के निकट रहने से घने जंगलों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। वैसे तीर्थ-स्थानों की तो बात ही दूसरी है, जहाँ मनुष्यों ने ख़ुद ही इन्हें, अपने धार्मिक विचारों के कारण, पाल सा रखा है।

लंगूर, बंदरों की तरह ऊधमी नहीं होते। इस मामले में तो उनको एक तरह से दब्बू ही कहा जावेगा। जंगल में ये अकसर पानी के निकट अपना अड्डा जमाये रखते हैं और अकसर इनकी बोली सुन कर शिकारी लोग पानी के स्थान का पता चला लेते हैं।

लंगूर का मुख्य भोजन वैसे तो बंदरों की तरह फल-फूल और हर क़िस्म का ग़ल्ला है, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े और अंडे भी खाते हैं। बस्ती के निकट रहनेवाले लंगूर बंदरों की तरह पका हुआ खाना, मिठाई और तरह तरह की चीजें खाने में भी ज़रा नहीं हिचकते।

मादा एक बार में एक बच्चा देती है जो बंदर के बच्चे की तरह मा के पेट में कुछ समय तक चिपका रहता है। लंगूर के बच्चे अकसर मिल तो जाते हैं लेकिन उनको पालना कुछ आसान नहीं होता।

५—लजीला-वानर

The Slow Loris-Nycticebus tardigradus

लजीला-वानर सच पूछा जावे तो बंदरों का बहुत निकट संबंधी है, लेकिन शकल-सूरत और स्वभाव में फ़र्क़ होने के कारण कुछ लोग इसे दूसरे वर्ग का प्राणी समझते हैं। इसके नाम भी कई हैं। इसकी रात में निकलने की आदत के कारण, जहाँ लोग इसे लजीला-वानर कहकर पुकारते हैं, वहीं कुछ लोग, इसकी बड़ी बड़ी बिल्लियों जैसी आँखों के कारण, इसको 'शरमीली-बिल्ली' कहते हैं। लेकिन बिल्ली में और इसमें तो ज़मीन आसमान का अन्तर है।

लजीले-वानर की दो जातियाँ हमारे यहाँ पाई जाती हैं। एक तो वह जिसका वर्णन यहाँ दिया जा रहा है और दूसरी वह जिसका केवल चित्र ही दिया जा रहा है। लजीले-वानर की यह दूसरी जाति

केवल दक्षिण-भारत में पाई जाती है जहाँ उसको 'तवंगु' कहते हैं।
यहाँ जो चित्र दिया गया है उसमें बड़ी आकृति तो लजीला वानर की है और साथ की दूसरी छोटी आकृति तवंगु की है। इन दोनों की आदतें, रहन-सहन और अन्य बातें एक जैसी होने के कारण केवल लजीला-वानर का वर्णन दिया गया है।
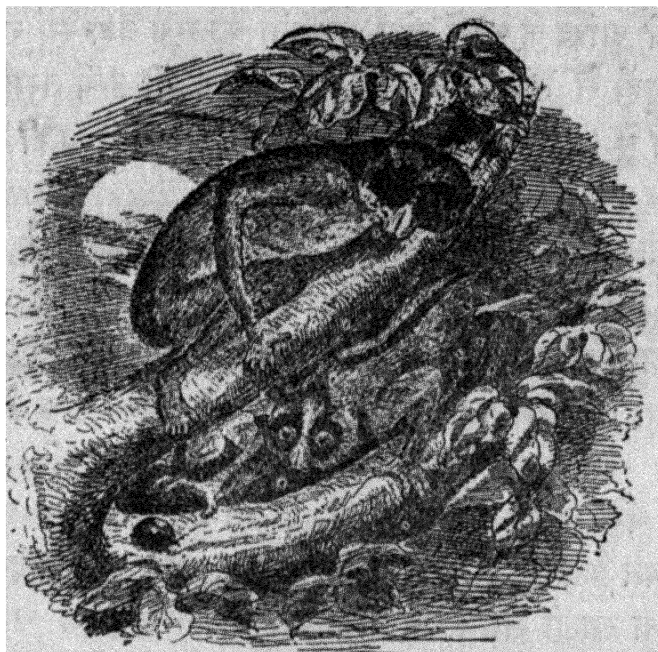
लजीला-वानर

लजीला-वानर हमारे देश के पूर्वी सरहद का निवासी है, जो बंगाल के पूर्वी हिस्से से लेकर आसाम तक पाया जाता है। यह न तो बंगाल के पश्चिमी भाग में मिलता है और न हिमालय के किसी हिस्से में। यही नहीं, देश के और किसी प्रान्त में अभी तक इसका कोई पता नहीं चला है।

यह बिल्ली से कुछ छोटा जानवर है, जिसका थूथन लोमड़ी जैसा लम्बा और आँखें बिल्ली जैसी बड़ी होती हैं। इसके कान बहुत छोटे

होते हैं और दुम तो इतनी छोटी होती है कि वह बालों में ही छिपी रहती है।

इनके रंग के बारे में कुछ कहना ज़रा मुश्किल है क्योंकि ये बहुधा अलग अलग रंग के होते हैं। वैसे तो ये सिलेटी रंग के होते हैं लेकिन कुछ के इस सिलेटीपन में थोड़ी या बहुत ललाई मिली रहती है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है। लजीला-वानर की आँख के चारों ओर भूरे रंग का एक घेरा सा रहता है और इसकी गुद्दी से लेकर पीठ तक का हिस्सा भी इसी तरह के भूरे रंग का होता है। इसकी आँखों के बीच में एक खड़ी धारी सी रहती है जो सफ़ेद रंग की होती है।

लजीला-वानर घने जंगलों में रहनेवाला प्राणी है, जो हमेशा पेड़ों पर ही रहता है। इसे ज़मीन पर उतरना पसन्द नहीं है और पसन्द आने की बात ही क्या, जब वह ज़मीन पर ठीक से चल ही नहीं पाता। ज़मीन पर चलते समय उसके पैर ठीक से नहीं पड़ते और वह एक तरह से लहराता हुआ चलता है।

यह वैसे तो सुस्त जानवर है लेकिन पेड़ पर चढ़ते समय इसकी फुर्ती देखने क़ाबिल होती है। सफ़ाई तो इसे इस क़दर पसन्द है कि अपना ख़ाली समय यह बिल्लियों की तरह बदन चाट चाटकर साफ़ करने में ही सर्फ़ कर डालता है। यह किसी पेड़ की डाल को पकड़ कर और भीतर की ओर अपना सर घुसेड़ कर गेंद की तरह गोल हो जाता है और सारा दिन सोने में गुज़ार देता है। सूर्यास्त के बाद जाकर कहीं इसकी निद्रा टूटती है, जब यह शिकार के लिए इधर-उधर निकलता है। सर्वभक्षी होने के कारण वैसे तो यह फल-फूल, कीड़े-मकोड़े, और छोटे-मोटे जानवर और चिड़ियों को भी खा लेता है लेकिन इसे आम-केला आदि फल बहुत पसन्द हैं।

इसकी मादा भी बंदरों की तरह एक बार में एक ही बच्चा देती है।

———

२

करपत्त-वर्ग

Order Chiroptera

इस वर्ग के प्राणियों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आकाश में पत्तियों की तरह उड़ लेते हैं। उन्होंने अपनी उँगलियों का ऐसा विकास किया है कि वे बढ़कर इनके शरीर से भी बड़ी हो गई हैं। ये उँगलियाँ छाते की तीली की शकल की दीख पड़ती हैं जिन पर कपड़े की जगह एक मजबूत झिल्ली चढ़ी रहती है। इन्हें ये छाते की तरह खोल और बन्द कर सकते हैं और इन्हीं के सहारे आज हम इन्हें आकाश में उड़ते देखकर कभी कभी इन्हें पत्ती समझने की भूल कर बैठते हैं।

इस वर्ग में सब जाति के चमगादड़ शामिल हैं। इनकी शकल-सूरत और क़द में भले ही भेद हो, लेकिन अपने उड़ने के गुण और शरीर-रचना के दृष्टिकोण से, ये सब एक ही प्रकार के प्राणी हैं। इनके वर्गीकरण में प्राणि-शास्त्र के विद्वानों को बहुत कठिनाई हुई क्योंकि शुरू में ये अपने स्तनों के कारण वानर-वर्ग में रखे गये, फिर इनको मांसभक्षी-वर्ग में स्थान दिया गया, उसके बाद वहाँ से हटा कर कीटभोजी-वर्ग में किये गये लेकिन अन्त में जीव-विज्ञान-शास्त्रियों को इनका एक अलग वर्ग बनाना पड़ा, जो करपत्त-वर्ग कहलाता है।

वानर-वर्ग की तरह यह वर्ग भी दो उपवर्गों में बाँट दिया गया है। गादुर उपवर्ग और चमगादड़ उपवर्ग। पहले वर्ग में तो फलाहारी जीव हैं और दूसरे में मांसभक्षी जीव।

गादुर उपवर्ग में फलाहारी जीव हैं। जिनका मुँह लोमड़ी की तरह लंबा होता है। इनके वैसे तो दुम नहीं होती और होती भी है तो बहुत छोटी। इनके कान भी छोटे ही छोटे होते हैं। इस उपवर्ग में तो थोड़े ही प्राणी हैं लेकिन दूसरा उपवर्ग काफ़ी बड़ा है।

चमगादड़ उपवर्ग कई भागों में बाँट दिया गया है, लेकिन इसमें के प्राय: सभी जीव मांसभक्षी हैं। इनका मुँह छोटा ज़रूर होता है लेकिन क़द के लिहाज़ से इसमें सभी तरह के प्राणी शामिल हैं। कुछ लंबी दुमवाले होते हैं तो कुछ लंबे कानवाले लेकिन और आदतें एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं। ये प्राय: कीड़े-मकोड़े खाते हैं और कुछ दूसरे जानवरों का ख़ून चूसने में उस्ताद होते हैं।

चमगादड़ और गादुर वास्तव में स्तनपायी जीव हैं, जिनके हाथ की चारों उँगलियाँ बढ़कर इनके शरीर से भी लंबी हो गई हैं। इन लंबी उँगलियों पर बग़ल की खाल बढ़कर इस तरह चढ़ गई है, जैसे छाते की तीलियों पर कपड़ा चढ़ा रहता है। इनके अँगूठे छोटे ही रहते हैं और उन पर यह झिल्ली नहीं चढ़ती। यह झिल्ली दोनों ओर बढ़ कर दोनों टाँगों से जा जुटती है लेकिन पैर की उँगलियाँ इससे बची रहती हैं। आगे चलकर दोनों ओर की झिल्लियाँ दुम के पास एक में मिल जाती हैं और इस प्रकार चमगादड़ के दोनों ओर झिल्ली का डैना सा बन जाता है। यह चिड़ियों के डैने से कहीं ज़्यादा मज़बूत और उपयोगी होता है।

अपने इस झिल्ली के डैनों से चमगादड़ भले ही चिड़ियों से ज़्यादा उड़ लेते हों, लेकिन ज़मीन पर उनको चलना नहीं आता। वे बड़ी मुश्किल से घसिट घसिट कर ज़मीन पर चल पाते हैं जिसे वास्तव में चलना नहीं कह सकते। अपने बड़े डैनों के कारण एक बार ज़मीन पर उतर पड़ने पर वे जल्दी उड़ भी नहीं सकते। इसी से

या तो वे किसी पेड़ पर लटके रहते हैं और या किसी ऊँची जगह पर घुसे रहते हैं जहाँ से कूदकर वे आसानी से उड़ सकें।

चमगादड़ रात्रिचारी जीव हैं, जो रात होने पर अपने भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं। इनकी आँखें बहुत छोटी होती हैं जिनसे वे शायद काम भी कम लेते हैं क्योंकि इनका ज्यादा काम इनके डैनों से चलता है। इनके डैनों को इनकी स्पर्शेन्द्रिय कहें तो बेजा न होगा, क्योंकि इसी से उड़ते समय इन्हें आस-पास की चीज़ों का पता लग जाता है। ये अंधे हो जाने पर भी बिना किसी चीज़ से टकराये हुए उड़ते रहते हैं।

इनकी सुनने और सूँघने की शक्ति भी कम नहीं होती। एशिया के उत्तरी भागों में इनकी कुछ जातियाँ जाड़ों भर सोती रहती हैं। इनकी मादा प्रतिबार एक बच्चा देती है जो काफ़ी समय तक अपनी पिछली टाँगों से मा के पेट की खाल पकड़ कर लटका रहता है।

१—गादुर

The Indian Fruit Bat or Flying Fox

Pteropus medius

गादुर की जातियाँ तो अनेक हैं लेकिन इनके नाम दो ही एक हैं—कहीं इन्हें गादुर कहते हैं तो कहीं बादुर—इनके और भी कुछ नाम हैं लेकिन इनका अँगरेज़ी नाम 'उड़नेवाली लोमड़ी' Flying Fox सबसे सुन्दर है क्योंकि इनको देखने से ऐसा ही जान पड़ता है कि जैसे किसी छोटी लोमड़ी के अगले पैरों में झिल्ली मढ़ दी गई हो।

गादुर

गादुरों या चमगादड़ों के बारे में कुछ कहने से पहले हमको यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए

कि हवा में चिड़ियों की तरह उड़ लेने पर भी ये पक्षी नहीं, बल्कि स्तनपायी पशु हैं। उस प्रसिद्ध कहानी के काल्पनिक युग में जब पशु और पक्षियों का युद्ध हो रहा था, इन्होंने भले ही अपने उड़ने के गुण के कारण चिड़ियों को—और अपने स्तनों के कारण पशुओं को धोखा दे दिया हो, लेकिन अब आदमियों को धोखा देना इनके सामर्थ्य की बात नहीं है। अब तो इन्हें हमेशा जानवरों के ही साथ रखा जाता है।

दिन में सोने और रात में उड़ने के कारण, चमगादड़ों के बारे में कुछ जानना उतना आसान नहीं है। फिर भी इनका निरीक्षण उन छोटे चमगादड़ों से तो आसान ही है, जो दिन को पुराने मकानों की अँधेरी कोठरियों और दीवाल के सूराखों में घुसे रहते हैं। गादुर तो जिस पेड़ पर बसेरा लेते हैं, वह पास-पड़ोस में मशहूर सा हो जाता है क्योंकि उसमें एक दो नहीं, बल्कि हज़ारों गादुर इस तरह लटके रहते हैं कि सारा पेड़ काला हो जाता है।

गादुर हमारे देश में प्रायः सभी हिस्सों में फैले हुए हैं। लेकिन राजपूताने में इनकी बहुत कम संख्या दिखाई पड़ती है। हिमालय की ओर, ये ऐसे ही भूले-भटके भले ही चले जाते हों, लेकिन वैसे इनकी पहुँच तराइयों तक ही सीमित रहती है। पञ्जाब ज़रूर एक ऐसा प्रान्त है जहाँ ये शायद ही कभी दिखाई पड़ते हों।

गादुरों का रंग एक दूसरे से मिलता-जुलता न होकर मुख्तलिफ़ होता है। वैसे आमतौर पर इनके सर और गुद्दी का रंग ललछौंह भूरा रहता है और इनके नथुने गाढ़ रंग के होते हैं, जो कभी कभी काले से दिखते हैं। इनकी गरदन का ऊपरी हिस्सा और कंधा सुनहलापन लिये पीले रंग का होता है, पीठ गाढ़ खैरी या कलछौंह रहती है और गला ठुड्ढी और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह भूरे रंग का होता है। हाथ के बाजुओं में मढ़ी हुई उड़नेवाली झिल्ली भूरापन लिये काले रंग की रहती है।

गादुर की लंबाई वैसे तो एक फ़ुट से ज्यादा नहीं होती लेकिन उसके डैनों की लंबाई कभी-कभी चार फ़ुट तक पहुँच जाती है।

गादुरों की दिनचर्या एक प्रकार से सीधी-सादी ही कही जावेगी। दिन भर उलटा टँगे रहने की कठिन तपस्या करने के बाद, शाम को गादुर अपने पेड़ से एक एक दो दो करके उड़ना शुरू कर देते हैं और धीरे धीरे सारा पेड़ ख़ाली हो जाता है। अगर पास-पड़ोस में कहीं फलों के बाग़ हुए तो कोई बात ही नहीं, नहीं तो फलों की तलाश में ये काफ़ी लम्बा सफ़र कर डालते हैं। कभी-कभी तो इनकी उड़ान सौ-सौ मील तक की हो जाती है और फिर जिस बाग़ पर इनका सफल हमला हो जाता है उसे साफ़ ही समझना चाहिए।

बाग़ के फलों के अलावा ये गूलर, पीपल, पाकर आदि जंगली फलों को भी बड़े चाव से खाते हैं। यही नहीं कभी कभी ये खजूर और ताड़ में लटकते हुए घड़ों से ताड़ी भी पी लेते हैं। नशा ज्यादा हो जाने पर, ये अकसर अपने बसेरे के पेड़ के नीचे पड़े पाये जाते हैं।

इनके फलाहार के क़िस्सों के बाद इनके भोजन के बारे में कुछ और कहने की जरूरत नहीं रह जाती, तो भी यह बताना ज़रूरी सा है कि कौन कौन से फलों को इनका मुख्य भोजन कहा जा सकता है। फलों में नारंगी और नीबू की जाति के फलों को छोड़कर शायद ही कोई फल इनसे बचते हों, लेकिन केला, अमरूद आदि मीठे और गूदेदार फलों को ये और फलों की अपेक्षा अधिक चाव से खाते हैं।

रात को बाग़वाले इनको फँसाने के लिए काफ़ी उँचाई पर बड़े-बड़े फन्दोंवाला जाल टाँगते हैं और दो-एक आदमी रात भर इनके लिए पहरा देते रहते हैं, लेकिन इनके हमले का डर तिस पर भी बना ही रहता है। कुछ लोग गादुरों का गोश्त खाते हैं और उनकी राय में इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

हैं और डैने की झिल्ली का रङ्ग धुमैला भूरा रहता है। मादा का रङ्ग नर से कुछ हलका होता है।
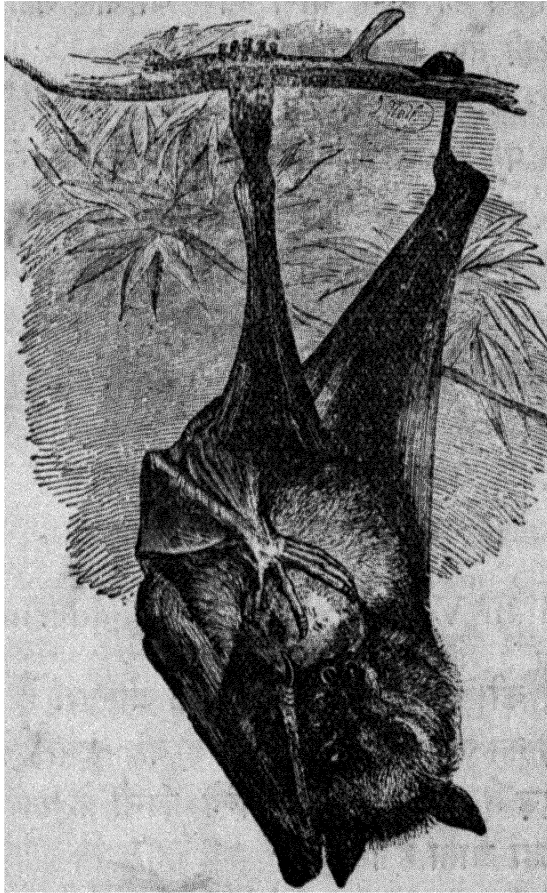
गेदुरी

गेदुरी फलाहारी होती हैं। इनका मुख्य आहार फल है। बड़े बादुरों की तरह ये भी किसी पेड़ पर उलटी लटक कर सारा दिन काट लेती हैं। सोते समय ये अकेली भी रहती हैं और गरोह में

भी। इनका गरोह अक्सर केले, खजूर, ताड़ तथा अन्य वृक्षों की डालियों पर लटकता रहता है। कभी कभी ये पेड़ के खोथों और पहाड़ की गुफाओं में भी अपना दिन का समय बिताती हैं। इनकी उड़ान बड़े बादुरों की तरह भारी और बोझिल नहीं होती बल्कि उड़ने में ये काफ़ी तेज़ और फुर्तीली होती हैं।

बड़े गादुरों की तरह गेदुरिओं के भी हमलों से फलों के बाग़ों को काफ़ी नुकसान पहुँचता है और इनको भी मजबूरन बाग़वाले जाल में फँसाते हैं। इनके फँसाने का जाल दो बहुत ऊँचे बाँसों में बाँध दिया जाता है, जिसमें ये हमेशा तो नहीं, लेकिन अक्सर फँस ही जाती हैं।

इनकी और बाक़ी आदतें बड़े बादुरों से मिलती-जुलती होती हैं।

३—चमगादड़

The Indian Vampire Bat—Megaderma lyra

चमगादड़ों की, गादुरों से भी अधिक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ जिस चमगादड़ का वर्णन दिया जा रहा है वह हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध चमगादड़ है। इसको अपने लम्बे कानों के कारण कहीं कहीं लम्बकर्ण भी कहा जाता है।

छोटे जाति का चमगादड़ होने पर, इस चमगादड़ ने अपने रहने का क्षेत्रफल भी छोटा चुना हो, सो बात नहीं है। यह हमारे देश के किसी एक प्रान्त में सीमित न रहकर सारे भारत में फैला हुआ है। पूर्व की ओर यह ज़रूर बंगाल से आगे नहीं जाता और उत्तर की ओर इसकी सीमा हिमालय की तराई ही है लेकिन इसके अलावा देश का कोई कोना ऐसा नहीं बचा है जहाँ हम इसे न देख पाते हों।

इस चमगादड़ का क़द तीन-चार इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और इसकी शकल-सूरत के बारे में कुछ कहना उतना आसान नहीं है, जितना हम समझते हैं। इसके लिए इसकी तसवीर या इसका स्वयं निरीक्षण हमें सहायता दे सकता है।
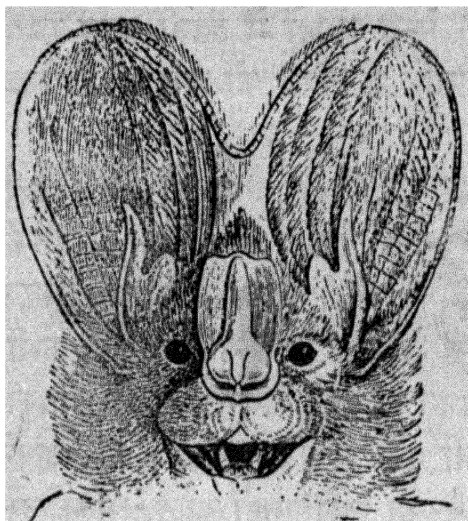
चमगादड़

जैसा ऊपर बता आया हूँ यह लंबे कानोंवाला चमगादड़ है, जो अपने छोटे क़द और लंबे कानों के कारण अजीब सा लगता है। इसके कान इतने लंबे होते हैं कि अगर उन्हें आगे की ओर मोड़ा जावे तो वे उसके नथुने से भी नीचे तक पहुँच जाते हैं। इसके कान का बाहरी हिस्सा गोलाई लिये रहता है और दोनों कान बीच में आधे से ज्यादा दूर तक जुटे रहते हैं। इसके कान की लौ बहुत बड़ी और दो हिस्सों में बँटी रहती है, जिसका अगला हिस्सा पिछले हिस्से से छोटा होता है। इसकी नाक पत्ती की शकल की होती है जो आगे चलकर गोली हो जाती है और इसकी उड़ने की झिल्ली इसके क़द को देखते हुए बड़ी ही कही जावेगी, जो कभी कभी १८ इञ्च तक पहुँच जाती है।

चमगादड़ के बदन पर के बाल मुलायम और लंबे होते हैं। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा, गाढ़ राखी या सिलेटी रङ्ग का रहता है। नीचे के हिस्से का रंग हलका होता है जिसमें कभी कभी कुछ सफ़ेदी मायल पीलापन भी मिला रहता है। उड़ने की झिल्ली गाढ़ भूरे रङ्ग की होती है।

इस चमगादड़ के रहने का मुख्य स्थान पुरानी इमारतों की अँधेरी कोठरियाँ और दीवालों के सूराख हैं। वहाँ ये हजारों की संख्या में दिन में छिपे रहते हैं। ऐसी जगहों में इतनी बदबू रहती है कि इनकी मौजूदगी का पता लगाने में किसी को ज़रा भी दिक्क़त नहीं पड़ती।

ये चमगादड़ गादुर की तरह फलाहारी जीव नहीं हैं। इन्हें फलों के रस से ज़्यादा ख़ून चूसना पसन्द है। ख़ून ही इनकी मुख्य ख़ूराक है। इसके अलावा ये छोटी छोटी चिड़ियाँ, मेढक और कीड़े-मकोड़ों को भी बड़े मज़े में खाते हैं। यही नहीं ये कभी-कभी छोटे छोटे जानवरों और अपने से छोटे चमगादड़ों को भी खा लेते हैं। इनके खाने का तरीक़ा भी कम दिलचस्प नहीं है। ये अपने शिकार को पकड़ने के बाद, कहीं बैठकर उसे नहीं खाते, बल्कि उसे ये अपने लंबे कानों के बीच में दबा लेते हैं और उड़ते ही उड़ते उनका ख़ून चूस कर, उन्हें छोड़ देते हैं।

एक ताज्जुब की बात इन चमगादड़ों में और देखी गई है। इनमें मादाओं की संख्या नर से कहीं ज़्यादा होती है। मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है जो बड़े होने तक मा के पेट से लटका रहता है।

४—चमगिदड़ी

The Noctule Bat—Vesperugo noctula

इस छोटे चमगादड़ को इसके छोटे क़द के कारण चमगिदड़ी कहा जाता है, जो एक तरह ठीक ही है। चमगिदड़ी की कई जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं, लेकिन सब की आदतें एक-दूसरे से मिलती-जुलती होने के कारण यहाँ केवल एक का ही वर्णन दिया जा रहा है।

यह चमगिदड़ी हमारे देश में या तो नैपाल और शिकम के आस-पास दिखाई पड़ती है या फिर इसका पता लंका में ही चलता है। बीच की कोई जगह जैसे इसे पसन्द ही नहीं आती।

चमगिदड़ी

यह प्राय: तीन इंच की, छोटी सी चमगिदड़ी है, जिसके दो इंच लंबी छोटी सी दुम भी होती है। इसका सर चौड़ा और चपटा होता है। कान छोटे, चौड़े और गोलाई लिये रहते हैं जो बहुत छोटे और मोटे होते हैं। कान की लौ ऊपर की ओर उभरी उभरी सी रहती है। इसके पैर मोटे और अँगूठे छोटे होते हैं। उड़नेवाली झिल्ली पैर का कुछ हिस्सा छोड़कर शुरू होती है।

चमगिदड़ी के शरीर के ऊपरी हिस्से का रंग हलका पीलापन लिए भूरा रहता है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है, जिसमें हलकी पीली झलक रहती है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो कीड़े-मकोड़े हैं, लेकिन गुबरीले जाति के कीड़े इसे सबसे ज़्यादा पसंद हैं।

चमगिदड़ी, दिन को अक्सर किसी पेड़ के खोंते में छिपी रहती है, लेकिन पुराने मकानों में भी इसे देखा जा सकता है। शाम होते ही यह अपने छिपने की जगह से बाहर निकल आती है और हवा में, काफ़ी उँचाई पर, तेज़ी से उड़ने लगती है। इसे बस्तियों से ज़्यादा जंगल पसंद है जहाँ रात भर यह भोजन की तलाश में इधर-उधर घूमती रहती है।

पतझड़ का मौसम शुरू होते ही ये चमगिदड़ियाँ शीतशायी

हो जाती हैं। फिर शीतकाल के अंत और वसंत के प्रारंभ होते ही इनकी लंबी निद्रा भंग होती है। इस चमगिदड़ी के बदन से एक प्रकार की तेज़ गंध निकलती रहती है, जिससे इसके रहने का स्थान छिपा नहीं रह सकता। इसकी भी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

५—पीला चमगादड़

The Common Yellow Bat—Nycticejus Kuhli

पीला चमगादड़ हमारे यहाँ के प्रसिद्ध चमगादड़ों में से एक है। यह हिमालय पर काफ़ी ऊँचाई तक नहीं जाता। सिंध के पश्चिमी हिस्से को छोड़कर इसे हम अपने देश में प्रायः सभी हिस्सों में बड़ी आसानी से देख सकते हैं।

पीला चमगादड़

यह हमारे देश का छोटा दुमदार चमगादड़ है, जिसकी लंबाई क़रीब तीन इंच होती है। इसके अलावा इसके दो इंच लंबी दुम भी रहती है। इसके शरीर के बाल छोटे और मुलायम होते हैं और इसके बदन का रंग मुख़्तलिफ़ रहता है। पीठ का रंग कभी कत्थई

होता है तो कभी भूरा—कभी पीलापन लिये भूरा तो कभी सिलेटी मायल भूरा—लेकिन पेट के रंग में इतनी क़िस्में नहीं होतीं। वह अकसर पीला या गंदा सफ़ेद ही रहता है।

पीले चमगादड़ के कान छोटे होते हैं जो आगे की ओर मुड़ने पर आँख से आगे नहीं पहुँचते। कान के आगे का हिस्सा ज़रूर गोलाई लिये रहता है, लेकिन पीछे का हिस्सा सीधा ही रहता है। इसका नथुना मोटा, सर चौड़ा और चेहरा चपटा होता है।

पीले चमगादड़ को जैसे जंगल पसंद नहीं आते क्योंकि इन्हें हम ज्यादातर बस्तियों के आस-पास ही उड़ते देखते हैं। इनके बारे में ज़्यादा जानकारी भी हमको इनकी इसी आदत के कारण होती है क्योंकि और चमगादड़ों से ज़्यादा हमें ये ही अकसर दिखाई पड़ते हैं।

ये दिन में तो अन्य चमगादड़ों की तरह पुरानी इमारतों में छिपे रहते हैं लेकिन शाम हुई नहीं कि ये सब चमगादड़ों से पहले बाहर निकलकर उड़ने लगते हैं। इनकी उड़ान तेज़ नहीं होती बल्कि उड़ते समय ये बहुत सुस्त और धीमी रफ़्तार से जाते हैं।

इनका मुख्य भोजन, वैसे तो कीड़े-मकोड़े हैं, लेकिन इन्हें और कीड़ों की बनिस्बत दीमक बहुत पसंद हैं। इनकी भी मादायें एक बार में एक ही बच्चा देती हैं।

———

३

कीटभक्षी-वर्ग

Order Insectivora

कीटभक्षी-वर्ग भी दो उपवर्गों में विभक्त है। पहले उपवर्ग में छछूँदर, काँटा-चूहा आदि अनेकों प्राणी हैं लेकिन दूसरे उपवर्ग में केवल एक जन्तु है, जिसका नाम कुबंग है। यह शकल-सूरत में औरों से इतना जुदा है कि उसके लिए एक अलग उपवर्ग ही बनाना पड़ा है। नीचे दोनों उपवर्गों के बारे में थोड़ा परिचय दिया जा रहा है।

छछूँदर उपवर्ग में के प्राणी ज़्यादातर रात्रिचारी जीव हैं, जिनका सर छोटा होता है। आँखें और कान भी छोटे होते हैं लेकिन थूथन लंबा और पतला होता है। वे अपने तेज़ नाखूनों से ज़मीन में बिल खोदकर रहते हैं। उनकी चाल अलसाई अलसाई सी होती है और स्वभाव में भी वे बहुत डरपोक जीव माने गये हैं। उनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। वे हमारा कोई नुक़सान नहीं करते बल्कि कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करने में हमारी बहुत सहायता ही करते हैं। उनमें से कुछ के शरीर में एक प्रकार की तेज़ बू निकलती रहती है जो उन्हें शत्रुओं के आक्रमण से रक्षा करने में इनकी सहायक होती है।

छछूँदर उपवर्ग में वैसे तो चार परिवार शामिल हैं लेकिन यहाँ केवल दो ही परिवारों से एक एक जीवों का वर्णन दिया जा रहा है। पहला परिवार है छछूँदर का और दूसरा है काँटा-चूहे का।

छछूँदर-परिवार के प्राणी वैसे देखने में तो चूहे से लगते हैं लेकिन उनका थूथन बहुत लंबा होता है। उनकी आँखें छोटी और उनकी दृष्टि इतनी कमजोर होती है कि सूर्य के प्रकाश में वे आँखें तक नहीं खोल पाते। उनका बदन मुलायम रोओं से ढका रहता है और दोनों बगल गंध-ग्रन्थियाँ रहती हैं, जिससे एक प्रकार की तेज़ बू निकला करती है। यह बू उनकी मौजूदगी की सूचना फ़ौरन ही दे देती है। उनके प्रत्येक पैर में पाँच पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें इतने मज़बूत नाख़ून होते हैं कि उन्हें मिट्टी खोदने में जैसे कुछ समय ही नहीं लगता। ये दिन में अपने बिलों में या किसी कूड़े-करकट के ढेर के नीचे छिपे रहते हैं और रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं।

काँटा-चूहा-परिवार के प्राणियों के बदन पर छछूँदर की तरह मुलायम बाल नहीं होते। बालों के स्थान पर उनके बदन पर छोटे छोटे काँटे होते हैं जिससे उन का नाम काँटा-चूहा पड़ा है। उनके थूथन छछूँदर की तरह लंबे नहीं होते और न उनके नाख़ून ही छछूँदरों की तरह ज़मीन खोदनेवाले बनाये गये ह, लेकिन उनकी निगाह ज़रूर छछूँदरों की तरह कमजोर होती है और वे उन्हीं की तरह आलसी भी होते हैं।

इस परिवार के प्राणियों की टाँगें और दुम छोटी होती हैं। उनकी सूँघने की शक्ति काफ़ी तेज़ होती है। वे वैसे तो काहिल से लगते हैं लेकिन चूहे पकड़ने में बिल्लियों से तेज़ होते हैं। यही नहीं, साँप तक को वे बड़ी आसानी से काट डालते हैं।

दूसरे परिवार में एक ही प्राणी है जिसका नाम है कुबंग। इसी से इस परिवार का नाम भी कुबंग-परिवार पड़ा है। इस परिवार के प्राणी, घरेलू बिल्ली से क़द में कुछ छोटे ही होते हैं। उनके पैर पतले और नाज़ुक होते हैं। उनका सर लमछौंह होता है और उनकी दुम पतली और लंबी रहती है।

उनके गले के दोनों बग़ल से दुम तक की खाल; बाहर की ओर काफ़ी बढ़ी रहती है, जिससे उनके चारों पैर और दुम तक का हिस्सा एक प्रकार की पतली खाल से घिरा रहता है। इसी झिल्ली या खाल को फैला कर कुबंग एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर बड़ी आसानी से हवा में तैरता हुआ चला जाता है। इस तरह की खाल 'सूरज भगत' और कुछ दूसरी उड़नेवाली गिलहरियों के भी बढ़ी रहती है लेकिन जैसा सुन्दर विकास कुबंग की खाल का हुआ है उतना इन उड़नेवाली गिलहरियों का नहीं।

इनके कान गोल और औसद क़द के होते हैं। पैरों के तलुवे चपटे और बिना बाल के होते हैं। पंजों के नाखून टेढ़े नुकीले और दोनों ओर से दबे रहते हैं। इस परिवार का केवल एक प्राणी कुबंग ही हमारे देश में पाया जाता है जिसका वर्णन यहाँ दिया गया है।

१—काँटा-चूहा

The Collared Hedgehog—Erinaceus Collaris

काँटा-चूहा, चूहे का निकट-संबंधी कौन कहे दूर का भी संबंधी नहीं है लेकिन चूहे की सी शकल-सूरत के कारण, इसको लोग चूहे की जाति का जीव समझने लगे और इसके बदन पर के कँटीले कवच के कारण इसको यह सुन्दर नाम पाने में देर न लगी। अँगरेजी में इसे 'हेजहाग' कहते हैं। इसका यह नाम भी हमारे यहाँ कम प्रसिद्ध नहीं है।

काँटा-चूहे योरोप में बहुत क़िस्म के होते हैं लेकिन हमारे देश में इनकी ५–७ जातियाँ पाई जाती हैं। एक जाति के काँटा-चूहे दूसरी जातिवालों से इतने मिलते-जुलते होते हैं कि उनमें कुछ भेद निकालना बहुत कठिन है। इनकी कोई ऐसी जाति नहीं है जो

सारे देश में फैली हो। कोई जाति उत्तर भारत में पाई जाती है तो कोई मध्य या दक्षिण भारत में, पर इन सबकी आदतें और शकल-सूरत प्रायः एक जैसी होती है। रंग और क़द में भले ही कुछ भेद होता हो तो होता हो।
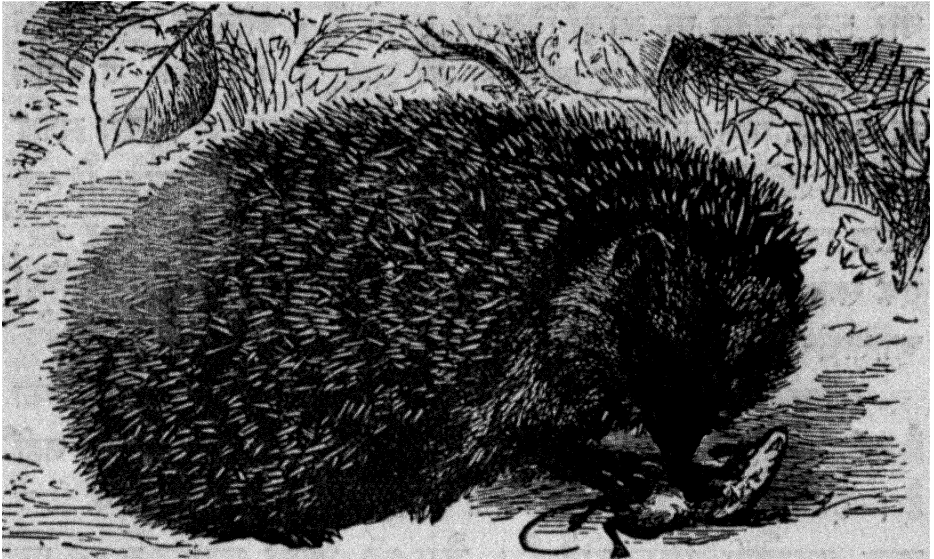
काँटा-चूहा

यहाँ जिस काँटा-चूहे का वर्णन दिया जा रहा है, वह रेतीले मैदान का निवासी है। यह हमारे देश के पहाड़ी हिस्सों में नहीं पाया जाता। हमारे देश में इसके निवास की पूर्वी सीमा कानपुर तक मानी गई है। इसके आगे ये नहीं पाये जाते। पश्चिम की ओर ये पंजाब, सिन्ध और पश्चिमोत्तर प्रान्त में अकसर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन बहुत कम संख्या में होने के कारण इन्हें हम अकसर नहीं देख पाते।

काँटा-चूहा क़रीब ६ इंच का छोटा सा जानवर है, जिसकी छोटी दुम एक इंच के लगभग होती है। इसके बदन की ऊपरी खाल काली या कलछौंह होती है, जो छोटे छोटे काँटों से भरी रहती

है। इसके पेट और पैर का रंग कलछौंह भूरा या कत्थइ रहता है मुँह पर का हिस्सा सिलेटी भूरा होता है। इसकी ठुड्डी सफ़ेदी मायल रहती है। ठुड्डी की यह सफ़ेदी कभी कभी गरदन तक फैल जाती है।

काँटा-चूहे, पैदा होने पर बिना काँटों के होते हैं, लेकिन धीरे धीरे इनके बदन पर काँटे निकलने लगते हैं। आठ-नौ महीने के बाद, इनका सारा शरीर काँटों से भर जाता है और तब ये अपने मा बाप के अनुरूप हो जाते हैं। इन काँटों का ज्यादा हिस्सा सफ़ेद होता है लेकिन उनके सिरे की ओर का आख़िरी तिहाई हिस्सा काला रहता है। काँटे के सिरे के पास, नोक से कुछ नीचे हट कर, एक सफ़ेद छल्ला रहता है लेकिन कुछ काँटे ऐसे भी होते हैं जिनका आख़िरी हिस्सा धुर काला रह जाता है।

काँटा-चूहे के बारे में यद्यपि अभी बहुत कम जाना जा सका है लेकिन उनके काँटों के उपयोग का रोचक हाल हमसे छिपा नहीं है। इनके बदन पर के साही जैसे तमाम काँटे इनकी रक्षा के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। जैसे ही किसी दुश्मन ने इन पर हमला किया, ये फ़ौरन अपना बदन लपेटकर इस तरह गेंद की तरह गोल हो जाते हैं कि इनके सर और पैर भीतर की ओर हो जाते हैं। इनके बदन के तमाम काँटे खड़े हो जाते हैं और ऐसी हालत में, उन पर हमला करने की कौन कहे, उनको उठाना तक मुश्किल हो जाता है। पर इसकी भी तरकीब आदमियों ने ही नहीं, जानवरों ने भी ढूँढ़ निकाली है। अगर इनके सर के पास पानी डाल दिया जावे तो ये अपना बदन लपेटे नहीं रह सकते। लोमड़ियों और सियारों ने भी इसकी इस कमज़ोरी को जान लिया है। वे जब इनको गेंदनुमा लिपटे हुए पाते हैं, तो इन्हें गेंद की तरह लुढ़का कर किसी नदी या ताल तक ले जाते हैं। वहाँ पानी में डाले जाने पर ये बेबस हो जाते हैं। फिर दुश्मनों को इन्हें चट कर जाने में देर नहीं लगती।

काँटा-चूहा कीड़े-मकोड़े खानेवाला प्राणी है, जो हर तरह के कीड़े-फतिंगे ही नहीं, साँप तक खा जाता है। अंडे भी इसे बहुत पसन्द हैं और ज़मीन पर अंडे देनेवाली चिड़ियों के अंडे अकसर इसके शिकार हो जाते हैं।

इसकी मादा एक बार में तीन चार बच्चे देती है।

२—छछूँदर

The Grey Musk Shrew—Crocidura Caerulea

छछूँदर को हमने भले ही न देखा हो लेकिन उसकी तेज़ बदबू हमारी नाक तक ज़रूर पहुँची होगी। इसी तेज़ बदबू के कारण 'छछूँदर के सर पर चमेली का तेल' वाली कहावत शायद प्रचलित हुई है। लेकिन इसकी तेज़ बदबू की वजह से हम इसकी
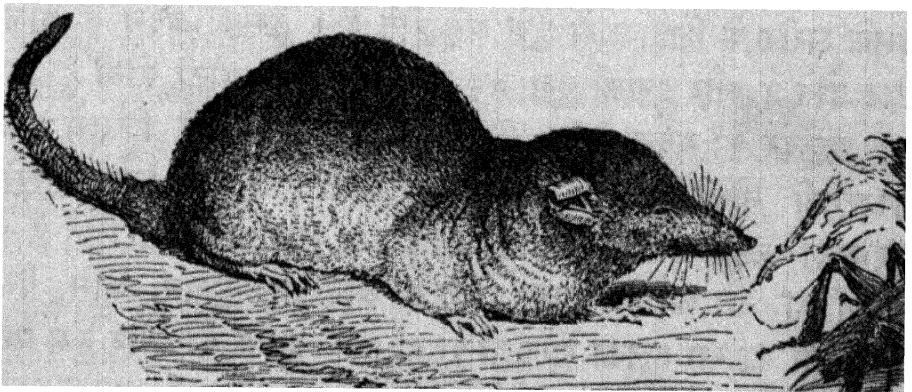
छछूँदर

उपयोगिता को नहीं भुला सकते। यह हमारे घरों की सफ़ाई में हमारी इतनी सहायता करती है कि उसे हम शायद सोच भी नहीं सकते। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं; अतः यदि यह हमारे घरों में रहना छोड़ दे, तो हमारे घरों में काफ़ी संख्या में कीड़े हो जावें

और हमारा घर गंदगी से भर जावे। इसलिए हमें इसकी बदबू को सह करके इसे अपने घर से कभी न निकालना चाहिए।

कुछ लोग इन पर कपड़े और काग़ज़ आदि काटने का झूठा इलज़ाम लगाते हैं। यह दोषारोपण ठीक नहीं है—चूहों का दोष इनके सर मढ़ना, बहुत ज्यादती होगी क्योंकि सच पूछा जावे तो इनके कुतरनेवाले तेज़ दाँत ही नहीं होते।

छछूँदर सारे भारत में फैली हुई है। हमारे यहाँ इसकी एक नहीं अनेकों जातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ जिस छछूँदर का वर्णन दिया जा रहा है उसे हम आमतौर पर जानते हैं।

छछूँदर के शरीर की लम्बाई ६-७ इंच से ज्यादा नहीं होती। इसमें इसकी ३-४ इंच की दुम शामिल नहीं है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। छछूँदर का सर लम्बा और थूथन नुकीला होता है। इसके नथुने के दोनों बग़ल का हिस्सा सूजा सूजा सा रहता है। इसकी आँख इसके जिस्म को देखते हुए छोटी होती है लेकिन इसके कान इसके शरीर के लिहाज़ से कुछ बड़े होते हैं। इसके बदन के बाल छोटे होते हैं और इसकी दुम जड़ के पास काफ़ी मोटी होती है।

छछूँदर का बदन हलके सिलेटी रंग का रहता है जिसमें एक प्रकार की नीली झलक रहती है। इसके शरीर के जिस हिस्से पर बाल नहीं होते वे प्याज़ी या हलके गुलाबी रंग के रहते हैं। बच्चों का रंग अधिक गाढ़ा होता है और इनके थूथन, कान, पैर और दुम का रंग हलका गुलाबी रहता है। इनके पैर और दुम पर के बाल क़रीब क़रीब सफ़ेद होते हैं।

छछूँदर वास्तव में बहुत शरमीली होती है। यह ज्यादातर रात में ही बाहर निकलना पसन्द करती है। उस समय इसकी तेज़ बू के अलावा इसकी चिक् चिक् की आवाज़ से, इसकी मौजूदगी का पता लग जाता है। इसकी बू हमेशा एक जैसी नहीं होती बल्कि वह किसी मौसम में कम और किसी में तेज़ हो जाया करती है।

कुछ दिन पहले लोगों का यह भी ख़्याल था कि अगर छछूँदर शराब की बन्द बोतल पर से गुज़र जाती है, तो उस बोतल की शराब, अच्छी तरह बन्द रहने पर भी—एकदम बदबूदार हो जाती है। लेकिन अब यह साबित हो चुका है कि इस बात में ज़रा भी सत्यता नहीं है।

छछूँदर को आबादी के आस-पास रहना बहुत पसंद है और ऐसी शायद ही कोई बस्ती या गाँव होगा जहाँ इसका निवास न हो। यह कीड़े-मकोड़े खानेवाले जानवरों में मुख्य है। इसे और कीड़ों के अलावा तलचट्टे बहुत पसन्द हैं।

छछूँदर की दोनों बग़ल की गंध-ग्रन्थियों से एक प्रकार का बदबूदार पदार्थ निकला करता है। जोड़ा बाँधने का समय आने पर, यह द्रव पदार्थ और भी अधिक मात्रा में निकलने लगता है। तब छछूँदरों की बू और तेज़ हो जाती है। यह गाढ़ा बदबूदार पदार्थ, इनके डर जाने पर भी गंध-ग्रंथियों से निकलता है, जिसका उपयोग शायद ये शत्रुओं से बचाव के लिए करती हैं। इस तेज़ बू की वजह से इनके शत्रु अकसर इन्हें नहीं छेड़ते। अपनी इस बदबू से ये अपने शिकार में भी काफ़ी मदद लेती हैं और छोटे-मोटे कीड़ों को इसी तेज़ बू से बड़ी आसानी से अपने क़ाबू में कर लेती हैं।

छछुंदरी एक बार में कई बच्चे देती हैं, जो पैदा होने पर कुत्ते के पिल्लों की तरह अंधे रहते हैं।

३—कुबंग

The Flying Lemur—Galeopithecus volans

कुबंग उड़नेवाली गिलहरी की शक्ल का छोटा सा जानवर है जो हमारे देश के धुर पूर्वी प्रान्त के कुछ स्थानों में ही पाया जाता है। एक तो घने जंगल में रहने की वजह से, दूसरे

रात में निकलने की आदत के कारण, इसे हम बहुत ही कम देख पाते हैं।

कुबंग

कुबंग को कैबेगो भी कहते हैं। इसके नर की लम्बाई १६ इंच के लगभग होती है, जिसमें इसकी ९ इंच की लम्बी दुम शामिल नहीं है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा गाढ़ कत्थई रहता है। उस

पर बे-तरतीबी से, रुपहली सफ़ेद बिंदियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पेट का रंग हलका भूरा होता है। बच्चों के बदन पर सफ़ेद चित्तियों की संख्या अधिक रहती है जिससे वे चितकबरे से जान पड़ते हैं।

कुबंग के बदन पर के बाल छोटे और बहुत नरम होते हैं। इसका सर और दिमाग़ बहुत छोटा होता है और इसकी गरदन के पास की बढ़ी हुई खाल दोनों हाथ के पंजों तक फैली रहती है। इतना ही नहीं, इसी तरह की खाल इसके बदन के दोनों ओर, अगले पैर के पंजों से पिछले पैर के पंजों तक, जुटी रहती है, जो वहाँ से दुम तक चली जाती है। इस तरह चारों पैरों को फैला लेने पर कुबंग, पतंग की शकल का दिखाई पड़ने लगता है।

बिल्ली से भी छोटे क़द का यह जानवर, दिन भर या तो किसी डाल पर अपने चारो पैरों के सहारे लटका रहता है, या फिर डालों पर बड़ी काहिली से इधर-उधर घूमता रहता है। रात आते ही इसमें गज़ब की तेज़ी आ जाती है। तब यह अपनी ख़ूराक की तलाश में एक पेड़ से कूदकर दूसरे पेड़ तक हवा में तैरता हुआ चला जाता है। इसकी इस उड़ान को हम उड़ना न कहकर हवा में तैरना कहें तो ज्यादा ठीक होगा; क्योंकि एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते समय यह चमगादड़ों की तरह हाथ नहीं चलाता बल्कि अपने झिल्ली से जुटे हुए हाथ-पैर फैलाकर हवा में कूद जाता है और इसी झिल्ली के सहारे हवा में तैरता हुआ ७०-८० फ़ुट की दूरी तक पहुँच जाता है। कभी-कभी हवा में तैरते समय यह अपने हाथ भी चलाता है लेकिन यह शायद इसलिए कि उसका शरीर घूमकर, निर्दिष्ट स्थान की ओर जा सके। इसकी दुम काफ़ी लम्बी होती है। वह इसके लिए पतवार का काम

तो नहीं करती लेकिन उससे यह डालियों को बड़ी मज़बूती से पकड़ लेता है।

कुबंग शाकाहारी जीव है, जिसका मुख्य भोजन फल वगैरह हैं। इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

४

मांसभक्षी-वर्ग

Order Carnivora

यह बड़ा वर्ग उन मांसभक्षी स्तनपायियों को एकत्र करके बनाया गया है, जो तेज़, ख़ूँखार, आक्रमणकारी और फ़ुर्तीले होते हैं। मांस-भक्षण के कारण हम उनको हिंस्र पशु कहकर, उनसे भले ही घृणा करें लेकिन प्रकृति उनसे पशु-जगत् के समतुलन (Balance) का बहुत ज़रूरी काम लेती है। यदि वे शाकभोजियों की संख्या को कम न करते रहें, तो एक समय ऐसा आ जावे कि सारी पृथ्वी शाकाहारियों से भर जावे और कुछ समय के बाद यह भी असंभव नहीं कि उन पशुओं को हमारी इस पृथ्वी पर रहने की जगह न मिले।

मांसाहारी जीव होने पर भी, तिमि या ह्वेल को इस वर्ग से अलग कर दिया गया है क्योंकि उसका निवास ही नहीं, बल्कि उसकी बहुत सी आदतें भी इन मांसभक्षी जीवों से जुदा हैं। इसी तरह भालू आदि कुछ जीव इस वर्ग में ले तो लिये गये हैं लेकिन उनका मुख्य भोजन फल-फूल, जड़ें और शहद हैं। मांस तो वे नाममात्र को खाते हैं।

इस वर्ग के जानवरों के आगे के दाँत तो छोटे होते हैं लेकिन उनके दोनों बग़ल के दाँत लंबे और मज़बूत होते हैं। ये कुकुरदंत कहलाते हैं और मांसभक्षी प्राणियों की एक विशेषता है।

ये जानवर छरहरे बदन के और बहुत फ़ुर्तीले होते हैं क्योंकि इन्हें दूसरे जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरना पड़ता है।

इनके नाख़ून इनके मुख्य अस्त्र हैं। इसीलिए प्रकृति न इनमें से बहुतों के पंजों की बनावट ऐसी की है कि उसके भीतर ये बड़ी आसानी से अपने नाख़ून छिपा सकते हैं। इनके पंजे गद्देदार होते हैं जिससे ये बिना आहट के अपने शिकार के निकट तक पहुँच जाते हैं। इस वर्ग में कुछ जानवर ऐसे हैं जिनके चलते समय आधे ही तलवे ज़मीन पर पड़ते हैं और कुछ ऐसे जानवर भी इसी वर्ग में हैं जो चलते समय मनुष्यों की तरह पूरा तलवा ज़मीन पर रखकर चलते हैं।

इन जानवरों में सूँघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। दौड़ने में तो ये प्राय: सभी पशुओं से आगे रहते हैं। इनमें से कुछ की दुम के पास एक प्रकार की गंध-ग्रन्थि रहती है जिसमें से एक प्रकार का गाढ़ा गंधपूर्ण पदार्थ निकला करता है। इन जानवरों के नाख़ून पंजे के भीतर घुसे रहते हैं लेकिन पंजे पर ज़रा सा दबाव पड़ते ही ये बाहर निकल आते हैं। इन जानवरों की ज़बान भी बहुत खुरखुरी होती है, जिससे हड्डी पर से गोश्त हटाने में इन्हें काफ़ी सहूलियत हो जाती है।

मांसभक्षी-वर्ग काफ़ी बड़ा है। इसमें सिंह से लेकर नेवला तक शामिल कर लिया गया है। हमारे प्राणिशास्त्र-विशारदों ने आसानी के लिए, इनको इस प्रकार ६ परिवारों में विभक्त किया है।

(१) बिल्ली-परिवार
(२) कटास-परिवार
(३) लकड़बग्घा-परिवार
(४) कुत्ता-परिवार
(५) बिज्जू-परिवार
(६) भालू-परिवार

इन परिवारों का थोड़ा सा अलग अलग परिचय देना, असंगत न होगा क्योंकि सबमें मांस भक्षण का स्वभाव एक जैसा होने पर भी, सबकी आदतों में काफ़ी भेद है।

बिल्ली-परिवार—मांसभक्षी जीवों का यह प्रधान परिवार है, जिसके प्राणी, पूर्ण रूप से मांसभक्षी कहे जा सकते हैं। इसमें सिंह से लेकर बिल्ली तक शामिल है। इन पशुओं के दाँत जैसे मांस-भक्षण के लिए ही बनाये गये हैं। इनके कुकुरदन्त अन्य जन्तुओं से बड़े और नुकीले होते हैं। इनमें काफ़ी तेज़ धार भी होती है, जिससे मांस काटने में इन्हें काफ़ी मदद मिलती है।

ये मांसभक्षी पशु, वैसे तो रात्रिचारी होते हैं लेकिन इनमें से बहुतों को दिन में भी देखा जा सकता है। इनकी आँख की पुतलियों को फैलकर बड़ी हो जाने की ऐसी शक्ति प्रकृति द्वारा मिली है कि ये बहुत थोड़ी रोशनी भी ग्रहण करने में समर्थ हो जाती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि ये जानवर अँधेरे में भी थोड़ा बहुत देख लेते हैं। अँधेरे में चलते समय इनकी आँखों से ज्यादा तो, इनको अपनी मूँछों से मदद मिलती है, जो इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं।

इन जन्तुओं का शरीर लम्बा और छरहरा होता है और ये काफ़ी लम्बी छलाँगें मार सकते हैं। इनमें से कुछ अपनी तेज़ चाल के लिए प्रसिद्ध हैं तो कुछ अपने पेड़ पर चढ़ने की आदत के लिए मशहूर हैं। इनके तलवे इतने मुलायम और गुदगुदे होते हैं कि चलते समय उनकी आहट नहीं जान पड़ती। इनकी खोपड़ी गोल, जीभ खुरदुरी और सुनने की शक्ति बहुत तेज़ होती है।

कटास-परिवार—कई तरह के छोटे-छोटे मांसाहारी जीवों को शामिल करके यह परिवार बनाया गया है। इसमें के प्राणी एक-दूसरे से कई बातों में भिन्न होते हैं। ये वैसे तो लम्बी आकृति के प्राणी हैं जिनका थूथन पतला और नुकीला होता है लेकिन आपस में अधिक भेद होने के कारण हमारे देश के कटास-परिवार के जीव तीन उपपरिवारों में बाँटे गये हैं।

(१) कटास उपपरिवार
(२) मुसंग उपपरिवार

(३) न्योला उपपरिवार

इन तीनों उपपरिवारों के बारे में थोड़ा सा वर्णन अलग-अलग दिया जा रहा है।

कटास उपपरिवार के प्राणियों का क़द लगभग बिल्लियों के बराबर होता है लेकिन इनकी दुम बिल्लियों से कहीं ज्यादा लम्बी होती है। इनके शरीर पर गाढ़ चित्ते होते हैं और दुम के नीचे एक थैली रहती है। इस थैली से एक प्रकार का गन्धपूर्ण गाढ़ा-गाढ़ा पदार्थ निकलता रहता है। इन प्राणियों की जीभ खुरदुरी होती है और इनके नाख़ून बिल्लियों की तरह, सब तो नहीं लेकिन कुछ भीतर की ओर घुस जाते हैं। इसमें कटास, कस्तूरी (मुश्क बिल्ली) आदि जीव शामिल हैं।

मुसंग उपपरिवार में कटास से मिलते-जुलते जीव हैं, जो पेड़ पर बड़ी आसानी से चढ़ लेते हैं। यहाँ तक कि ताड़ और नारियल के पेड़ों पर चढ़ना भी इनके लिए मामूली सी बात है। इनके पैरों की उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुटी हुई रहती हैं और इनके नाखून, पंजे के भीतर थोड़ा ही घुस सकते हैं। इसमें मुसंग (ताड़ की बिल्ली) आदि जीव हैं।

न्योला अपने उपपरिवार में अकेला ही है। इसकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पाई जाती हैं। यह अपने परिवार का सबसे छोटा प्राणी है लेकिन साहस में शायद यह सबसे आगे है। अपनी रक्त पीने की आदत के लिए तो यह प्रसिद्ध ही है। यह अपने शिकार का गला काटकर रक्त तो चूस ही लेता है साथ ही साथ उनका भेजा भी खा लेता है। गोश्तख़ोर होते हुए भी न्योला फल वग़ैरह खाने में भी नहीं चूकता।

न्योले के बदन के बाल खुरदुरे होते हैं। इनके पंजे छोटे और मज़बूत होते हैं और इनकी दुम के सिरे पर के बाल घने रहते हैं।

लकड़बघा-परिवार—लकड़बघा अपने परिवार का अकेला

प्राणी है। इसे सबसे अलग इसलिए रखा गया है कि यह न तो कुत्ता-परिवार के प्राणियों से भिन्नता है और न बिल्ली-परिवार के जीवों से। इसकी खोपड़ी बड़ी होती है और इसके सीने तक का अगला हिस्सा पिछले हिस्से से बड़ा होता है।

लकड़बग्घा के नाखून छोटे और भोथरे होते हैं लेकिन उनकी मज़बूती में कोई कसर नहीं रहती। उनको देखकर ऐसा लगता है जैसे वे मिट्टी खोदने के लिए ही बनाये गये हों। ये बिल्ली के पंजों की तरह भीतर नहीं समा सकते। लकड़बग्घे की जीभ काफ़ी खुरदुरी होती है। इसकी उँगलियों के नीचे का बनावट गद्दे जैसी होती है जिससे चलते समय बहुत कम आहट होती है।

कुत्ता-परिवार—कुत्ता-परिवार में कुत्ते, सियार, लोमड़ियाँ और भेड़िये शामिल हैं। ये बिल्ली-परिवार के प्राणियों की तरह अकसर शिकार नहीं करते बल्कि दूसरों के किये हुए शिकार से अपना पेट भरना ज़्यादा पसन्द करते हैं। ये मांस के अलावा और चीजें भी खाते हैं। स्यार ककड़ी, फूट आदि फल बड़े स्वाद से खाता है। और कुत्ते को तो सर्वभक्षी जीव कहा जा सकता है।

इन जानवरों के कुकुरदन्त काफ़ी बड़े और तेज़ होते हैं लेकिन इनके नाखून बिल्लियों के नाखून की तरह भीतर नहीं समा सकते। नतीजा यह होता है कि ये उतने तेज़ न होकर भोथरे हो जाते हैं। इनकी जीभ भी बिल्लियों की तरह खुरदुरी नहीं होती।

ये यूथचारी जीव हैं जो प्राय: झुंड बनाकर रहते हैं। इनकी सूँघने की शक्ति काफ़ी तेज़ होती है और इनके उँगलियों के नीचे की बनावट गद्दे जैसी होती है। इससे इनके चलने में बहुत कम आहट मिलती है। अक़्ल के मामले में तो, ये अपने वर्ग में सबसे आगे हैं। लोमड़ी की मक्कारी, स्यार की चालाकी और कुत्ते की अक़्लमन्दी के बारे में तुमने काफ़ी क़िस्से सुने होंगे।

बिज्जू-परिवार—बिज्जू-परिवार में कई छोटे-छोटे मांसाहारी

जीव शामिल हैं, जिनके रङ्ग-रूप, क़द और बनावट में बहुत कम समानता रहती है। यही कारण है कि इनको तीन उपपरिवारों में बाँट दिया गया है जो इस प्रकार है।

(१) बिज्जू उपपरिवार

(२) चितराला उपपरिवार

(३) ऊद उपपरिवार

बिज्जू उपपरिवार में स्थल पर रहनेवाले प्राणी हैं, जिनकी चाल भद्दी होती है। इनका शरीर भारी और इनकी टाँगें मोटी होती हैं। इनके बाल रूखे और कड़े होते हैं और इनके नख ज़मीन खोदने के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं।

चितराला उपपरिवार के जीव क़द में लंबे लेकिन ऊँचाई में बहुत कम होते हैं। इनके नाखून काफ़ी तेज़ होते हैं और इनके शरीर पर के बाल कोमल और घने होते हैं। चलते समय इनके तलुवे का थोड़ा ही हिस्सा ज़मीन पर पड़ता है। इन्हें मांस से ज्यादा खून पसन्द है।

तीसरा उपपरिवार ऊद का है जिसमें वही अकेला प्राणी है। यह जल और थल दोनों में बड़ी आसानी से रह लेता है। पानी में तो यह मछली की तरह तैरता है। वैसे यह सूखे में बिल बनाकर रहता है लेकिन इसका ज्यादा समय पानी में ही बीतता है। इसका मुख्य भोजन मछली आदि है। इसका शरीर लम्बा और चपटा सा होता है। टाँगें छोटी और मोटी होती हैं, जिसकी उँगलियाँ आपस में बतख़ की उँगलियों की तरह जुटी हुई रहती हैं।

भालू-परिवार—भालू-परिवार में वैसे तो कई जीव हैं लेकिन यहाँ केवल भालू का ही वर्णन दिया गया है इससे उसी के बारे में कुछ लिखा जा रहा है।

भालू मांसभक्षी होने पर भी अपना पेट ज्यादातर दीमक, फल-फूल और शहद से भरता है। इसका सर गोल, थूथन लम्बा और

आँखें छोटी होती हैं। हाथ-पैर काफ़ी तगड़े और नख बड़े मज़बूत होते हैं। चलते समय यह अपना पूरा तलवा ज़मीन पर रखता है लेकिन इसकी चाल अजीब सी लगती है—जैसे कोई लुढ़क रहा हो। इसका कारण यह है कि चलते समय यह ऊँट की तरह अपने एक तरफ़ के दोनों पैरों को एक साथ ही उठा कर रखता है।

१—सिंह

The Lion—Felis leo

सिंह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध और परिचित जानवर है। हमारे देश से अब भले ही यह लुप्त होता जा रहा हो लेकिन इसका

सिंह

नाम हमारे साहित्य में इतना समा गया है कि इसके न रहने पर भी हमारे देश में इसका नाम अमर रहेगा।

कुछ विदेशी विद्वानों का पहले यह ख्याल था कि भारतीय सिंह के कन्धे पर अयाल या केसर नहीं होते लेकिन अब यह भ्रम दूर हो गया है क्योंकि सिंह का दूसरा नाम केसरी उसके कन्धे पर के बड़े बाल या केसर के ही कारण पड़ा है। कुछ सिंह गुजरात में ज़रूर ऐसे मिले हैं जिनके अयाल नहीं थे लेकिन बिना अयालवाले सिंहों की कोई अलहदा जाति रही हो, सो बात नहीं है।

जैसा ऊपर बता आया हूँ सिंह हमारे देश से धीरे-धीरे अब खतम होते जा रहे हैं और वह समय दूर नहीं जब हम इन्हें चिड़ियाखानों के सिवा और कहीं नहीं देख सकेंगे। हाँ, अफ्रीका को हम, अब भी, सिंहों का घर कह सकते हैं क्योंकि वहाँ के घने जंगलों में अभी सिंह बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। हमारे देश में जो सौ दो सौ सिंह बचे हुए हैं उनका निवास काठियावाड़ का लगभग सौ मील का एक पहाड़ी जंगल (गीर-जंगल) है। इसके अलावा ये कभी कभी उदयपुर, जोधपुर के दक्षिणी भाग के और आबू पहाड़ के जंगलों में भी मिल जाते हैं।

इनके निवास की हद पहले ज़रूर पश्चिमोत्तर भारत से लेकर मध्यभारत तक रही होगी क्योंकि ४०-५० वर्ष पहले इनकी संख्या इतनी कम नहीं थी। तब ये सागर, गूना ग्वालियर, रीवाँ, झाँसी, कोटा और पालामऊ तक के जंगलों में पाये जाते थे। लेकिन न तो इससे दक्खिन, न पूरब और न उत्तर के ही हिस्सों में इनके मिलने का कोई लेखा मिलता है।

सिंह, बाघ की तरह घने जंगलों में रहना उतना पसन्द नहीं करते जितना घास के खुले मैदानों में। इसी कारण इनको प्रकृति ने धूप-छाँह में छिपने के योग्य, बाघ की तरह, धारीदार पोशाक न देकर भूरी पोशाक दी है जिससे वे घास के मैदानों में आसानी से न

दिखाई पड़ें। इनका सर बड़ा और चपटा होता है, जिससे इनकी शकल कुत्ते सी दीख पड़ती है। नर के कन्धे पर क़रीब एक फ़ुट लम्बे अयाल रहते हैं लेकिन मादा सादी ही रहती है। दोनों की दुम के सिरे पर काले बालों का बड़ा सा गुच्छा रहता है, जिसे गुस्सा होने पर ये ज़मीन पर पटकते हैं। सिंह के सारे बदन का रंग पीलापन लिये भूरा या हलका बादामी होता है। दुम के सिरे पर के बालों का गुच्छा काले रंग का होता है। इनके कान के बाहरी हिस्से की जड़ के पास भी कुछ स्याही रहती है और बचपन में अयाल के बालों के सिरे भी काले होते हैं।

खुले मैदानों में रहने के कारण सिंह को बाघ की तरह धूप छाँह में छिपने के लिए धारीदार पोशाक की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसने अपने सारे शरीर में एक रंग का विकास करके उसको अपने पास पड़ोस के अनुरूप ज़रूर बना लिया है लेकिन यदि हम उनके बच्चों को गौर से देखें तो उनके बदन पर हमें हलके चित्ते ज़रूर दीख पड़ेंगे, जो उनको बिल्ली वंश का प्राणी साबित करने के लिए काफ़ी है। इनके बच्चों के बदन पर काफ़ी स्पष्ट धारियाँ और चितियाँ रहती हैं जो इनके बड़े होने पर ग़ायब हो जाती हैं। लेकिन इनके दोनों बग़ल कुछ चित्तियाँ बड़े हो जाने पर हलकी होकर रह ही जाती हैं।

सिंह बाघ की तरह लम्बे और क़दावर नहीं होते। उनकी नाक के सिरे से दुम की जड़ तक की लम्बाई ६ से ६॥ फ़ुट तक की होती है। इसके अलावा इनकी २॥-३ फ़ुट की दुम भी रहती है। ऊँचाई में ये ३॥ फ़ुट तक के देखे गये हैं। मादा ज़रूर नर से कुछ छोटी होती है।

बाघ की तरह सिंह भी रात्रिचारी जीव हैं, जो दिन को घने जंगलों अथवा घास के घने मैदानों में रहकर रात को शिकार की तलाश में बाहर निकलते हैं। क़द में बाघ से छोटा होने पर भी और उससे कम फुरतीला होने पर भी, सिंह उससे ज़्यादा साहसी और

बहादुर होता है। यही नहीं, यह बाघ से कहीं ज़्यादा ऊँची छलाँग मार लेता है और शिकार के समय बाघ की तरह छिपने की कोशिश न करके सामने से ही आक्रमण करता है, जिसकी वजह से इसको मारना काफ़ी आसान हो जाता है।

सिंह की गरज बाघ से कहीं ज़्यादा तेज़ होती है जो शाम और रात को अक्सर सुनाई पड़ती है। इसके दहाड़ने से इसके रहने के स्थान का पता चलाना कुछ ज़्यादा मुश्किल नहीं होता।

सिंह बाघ से ऊँचे होकर भी, उतने भारी और मज़बूत नहीं होते लेकिन शिकार करने में ये बाघ से किसी तरह कम नहीं कहे जा सकते। इसका ठीक ठीक पता अभी ज़रूर नहीं लगा है कि ये अपने शिकार को बाघ की तरह गरदन तोड़कर मारते हैं या इनके शिकार करने का कोइ दूसरा तरीक़ा है लेकिन इसमें तो किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि ये अपने से कहीं बड़े जानवरों को बड़ी आसानी से मार गिराते हैं। इनका मुख्य भोजन मांस है। इसके लिए ये हर तरह के हिरन, गाय, बैल और भैंसे आदि जानवरों का शिकार करते हैं।

सिंह वैसे भले ही अलग अलग रहते हों लेकिन जोड़ा बाँध लेने पर ये मादा के साथ ही दिखाई पड़ते हैं। सिंहनी आठ महीने बाद २-३ बच्चे देती है। इन बच्चों के शुरू में अयाल नहीं होते और इनकी आँखें कुत्ते के पिल्लों की आँखों की तरह बन्द न होकर शुरू से ही खुली रहती हैं। ये बच्चे ५-६ महीने तक मा-बाप के साथ रहने के बाद अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए उनसे अलग हो जाते हैं।

सिंह बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं। ये क़ैद की हालत में भी बच्चे देते हैं लेकिन इनमें से बहुत से बचपन ही में, कुकुरदंत निकलते समय, मर जाते हैं।

२—बाघ

The Tiger—Felis tigris

शेर या बाघ हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध जानवर है जिसे सचमुच जंगल का राजा कहा जा सकता है।

इसको हमने देखा भले ही न हो लेकिन इसमें से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इसकी तसवीर न देखी हो—या इसका नाम न सुना हो। अब तो हम इसको अजायबघरों में ही क्यों चिड़िया-ख़ानों में बहुत क़रीब से जीता जागता देख सकते हैं।
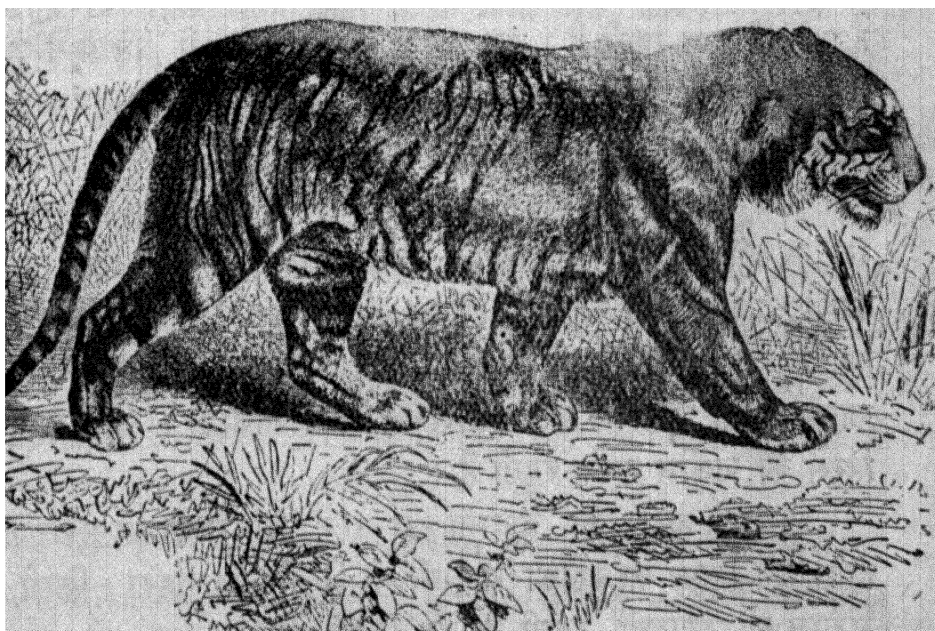
बाघ

हमारे देश के घने जंगलों में बाघ का आज भी अखंड राज्य स्थापित है। इधर पिछले २०-३० वर्ष से ज़रूर इनका काफ़ी शिकार होने लगा है जिससे इनकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही

है। बंगाल, मध्य भारत और बम्बई के उन प्रान्तों में जहाँ ये काफ़ी तादाद में थे, शिकार के कारण अब इनकी संख्या बहुत कम रह गई है। हाँ, हिमालय की तराई के घने जंगलों में आज भी ये काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं। ये वैसे तो हिमालय पर ६-७ हज़ार फ़ुट की उँचाई तक चले जाते हैं लेकिन भीतर की ओर ज्यादा दूर तक जाना इन्हें जैसे पसन्द नहीं है।

हमारे देश में इतने ज्यादा बाघ मारे गये हैं कि इनकी अलग अलग लम्बाई होते हुए भी एक औसत नाप निकालना कठिन नहीं रह गया। नर की लम्बाई नाक के सिरे से लेकर दुम की जड़ तक ५॥ से ६ फुट तक होती है। इसके अलावा इसकी क़रीब ३ फ़ुट की दुम रहती है। बाज़ बाज़ बाघ इससे भी बड़े पाये जाते हैं लेकिन उसे हम एक औसत की नाप नहीं कह सकते। उँचाई में ये सिंह से कुछ छोटे होते हैं। बाघिन बाघ से कुछ छोटी होती है।

बाघ के सर और बदन के ऊपरी और दोनों बग़ली हिस्से का रंग ललछोंह भूरा या बादामी रहता है। उस पर आड़ी आड़ी काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। दुम भी पीठ के रंग की होती है जो काली गड़ारियों से भरी रहती है। इसके कान का बाहरी हिस्सा काला रहता है, जिस पर एक सफ़ेद चित्ता रहता है। नीचे के कुल हिस्से की ज़मीन सफ़ेद रहती है।

बाघ के शरीर का बादामी रंग एक जैसा न होकर मुख्तलिफ़ होता है। किसी का हलका बादामी तो किसी का गहरा। किसी में भूरेपन की ज़्यादती रहती है तो किसी में कत्थईपन की झलक रहती है। इसकी बहुत कुछ ज़िम्मेदारी इनके रहने के स्थान पर है। घने जंगल में रहनेवाले बाघ कुछ ललछोंह होते हैं लेकिन घास के मैदानों या तितरे-बितरे जंगलों में रहनेवाले बाघों के शरीर में पीलापन ज्यादा होता है। बच्चों का रंग ज़रूर बड़ों से चटक रहता है।

बाघ का इतना अधिक शिकार हमारे देश में हुआ है और होता है कि इनकी आदतों के बारे में हमको काफ़ी जानकारी हो सकती है। यहाँ स्थानाभाव से उनमें से ख़ास ख़ास बातें ही दी जा रही हैं।

बाघ एक मादा से जोड़ा बाँधकर रहनेवाले जानवर हैं, जो कभी अकेले और कभी जोड़े में दिखाई देते हैं। बाघिन लगभग चार महीने बाद दो से छ तक बच्चे देती है। बच्चे देने का साल में कोई ख़ास समय निश्चित नहीं है। इसी से इनके बच्चे हमको प्राय: हर समय दिखाई पड़ते हैं। बच्चे काफ़ी बड़े होने तक अपनी मा के साथ ही साथ रहते हैं।

बाघ अपना सारा दिन किसी घनी और सायेदार जगह में बिताकर रात को अपने शिकार के लिए बाहर निकलते हैं। ये शिकार की तलाश में इधर-उधर चक्कर लगाते लगाते काफ़ी दूर तक चले जाते हैं। कभी कभी ये शिकार न पाने पर ८-९ बजे दिन तक जंगलों में घूमते रहते हैं और तब इनकी उपस्थिति का पता हमें अक़सर लंगूरों से चल जाता है। लंगूर इन्हें देखकर काफ़ी शोर मचाते हैं और जिधर से बाघ गुज़रता है उसी के आस-पास के पेड़ों पर वे भी पहुँच जाते हैं। केवल लंगूर ही नहीं, अकसर मोर आदि पत्ती भी हमको शेर का पता बोलकर दे देते हैं।

गरमियों में जब जंगल उतना घना नहीं रहता, बाघों का आरामगाह कहीं पानी के निकट ही रहता है और वे उसी के आस-पास शिकार करते रहते हैं लेकिन जाड़े और बरसात में शिकार के लिए बाघ काफ़ी दूर तक चले जाते हैं।

बाघ की गरज सिंह की गरज से मिलती-जुलती ज़रूर होती है लेकिन ये सिंह की तरह नियमित रूप से शाम को नहीं गरजते। इनके गरजने का वैसा कोई नियम नहीं है लेकिन गोली लगने पर,

गुस्सा होने पर और कभी कभी वैसे ही अनायास ही इनकी गरज सुनाई पड़ती है।

बाघ तैरने में बहुत उस्ताद होते हैं और पानी में घुसने में इन्हें ज़रा भी हिचक नहीं होती। अपने भारी शरीर के कारण ये दरख्तों पर अवश्य नहीं चढ़ पाते लेकिन १०-१२ फ़ुट ऊँची छलाँग मारना इनके लिए कुछ मुश्किल नहीं है। कभी कभी ये टेढ़े तनेवाले दरख़्तों पर कुछ दूर तक चढ़ भी जाते हैं लेकिन सीधे पेड़ों पर चढ़ना इनके लिए संभव नहीं होता।

वैसे तो शेर जंगली जानवरों का शिकार करता है जिसमें सुअर-साही और हर क़िस्म के हिरन शामिल हैं लेकिन इसके अलावा गाय, बैलों को भी इनसे बहुत ख़तरा रहता है क्योंकि इनको मारना शेरों के लिए आसान होता है। भूखा रहने पर बाघ किसी पर भी हमला कर सकता है। ऐसी दशा में जहाँ उसे कद्दावर गौर और हाथी के बच्चों पर हमला करते देखा गया है वहीं ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जब यह मोर, बन्दर ही नहीं मछली और मेढक तक को पकड़कर अपना पेट भरता है।

घायल होने की तो बात ही अलग रही, वैसे भी भूखे रहने पर बाघ आदमियों पर हमला कर बैठता है और जहाँ एक बार उसके दाँत में किसी आदमी का ख़ून लगा नहीं कि वह 'आदमख़ोर' हो जाता है। आदमख़ोर हो जाने पर बाघ बहुत ख़तरनाक हो जाता है फिर उसे मनुष्य के मांस से ज्यादा और किसी का मांस पसन्द ही नहीं आता क्योंकि आदमियों से ज्यादा आसान शिकार और कौन हो सकता है।

लेकिन सब शेर तो आदमख़ोर नहीं हो जाते और हो भी जावें तो इतने इफ़रात आदमी कहाँ हैं कि इन सबका पेट भर जावे। इसलिए बाघों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए और जानवरों पर निर्भर रहना पड़ता है। शिकार करते समय कभी कभी बाघ

बुरी तरह घायल भी हो जाते हैं। ऐसे कई उदाहरण मिले हैं जब सुअर का शिकार करते समय सुअर के साथ बाघ को भी जान से हाथ धोना पड़ा है। भूखा रहने पर गौर और जंगली भैंसों पर बाघ जरूर हमला कर देता है लेकिन उसके मारने में बाघ के दाँतों-तले पसीना आ जाता है। इतना ही नहीं कभी कभी वह खुद शिकार हो जाता है। जंगल में घूमनेवाले पालतू गाय, भैंसों को अकेला पाकर बाघ भले ही मार ले लेकिन उनका गरोह भी जब सींग सामने करके गोलाकार खड़ा हो जाता है तो फिर बाघ उनका कुछ भी नहीं कर पाता।

बाघ के शिकार करने का ढंग भी कम रोचक नहीं है। पहले वह अपने शिकार का कुछ दूर तक पीछा करता है, फिर मौक़ा पाते ही उसकी गरदन नीचे से पकड़ लेता है। इसके बाद वह बहुत फुरती से अपने पंजों का सहारा लेकर पीठ की दूसरी ओर कूद जाता है जिससे शिकार की गरदन ऐंठकर टूट जावे। यह सब काम इतने आनन-फ़ानन होता है कि देखनेवालों की समझ में नहीं आता कि शिकार कैसे मारा गया। छोटे-मोटे जानवरों को तो बाघ एक थपेड़े में ही ख़तम कर देता है।

शिकार करने के बाद अगर दिन हुआ तो बाघ 'मरी' या मारे हुए जानवर की लाश को या तो वहीं छोड़ जाता है या उसे आस-पास कहीं पत्थरों या पत्तों के नीचे छिपा देता है। दोनों हालतों में वह वहीं कहीं छिपा रहता है और रात होते ही 'मरी' को खाने के लिए पहुँच जाता है। वह पहले मरी की आँत खाता है। फिर उसके बाद उसकी दुम की ओर से खाना शुरू करता है। अगर जानवर बड़ा हुआ तो खाने का सिलसिला कई दिनों तक चलता रहता है।

शेर तो ख़तरनाक होता ही है, पर शेरनी और बच्चे उससे भी ज्यादा ख़तरनाक होते हैं। ये बच्चे शिकार करना सीखते-सीखते

अकसर ज़रूरत से ज़्यादा जानवरों को मार डालते हैं। शेरनी स्वयं अपने बच्चों को शिकार करना सिखाती है और अगर इत्तफ़ाक़ से उसने किसी आदमी को मार लिया तो फिर उसके बच्चे आदमख़ोर होने से नहीं बचते।

बाघ अपना ही मारा शिकार खाते हों सो बात नहीं है। कभी-कभी ये दूसरों के मारे हुए या अपनी मौत से मरे हुए ढोरों को भी खाते देखे गये हैं।

शेर के शिकार के शौक़ीन हमारे यहाँ कम नहीं हैं। शायद ही कोई साल ऐसा जाता हो जब इनकी एक बड़ी संख्या शिकारियों का शिकार न होती हो। इनके शिकार के दो तरीक़े प्रसिद्ध हैं। एक तो मचान पर से होता है और दूसरा मरी पर बैठकर।

मचान का शिकार हाँके के द्वारा होता है। इस शिकार में किसी ऊँचे पेड़ पर मचान बाँध दिया जाता है और जगल की दूसरी ओर से हाँकेवाले शोर मचाकर शेर को मचान की ओर हाँक लाते हैं। लकिन मरी के शिकार के लिए शिकारी को या तो किसी मारे हुए शिकार के पास मचान बाँधकर बैठना पड़ता है या कोई भैंसा जंगल में बाँध दिया जाता है और जब शेर उसको खाने के लिए आता है तो उसका शिकार किया जाता है। तराई की ओर जहाँ १५-२० फ़ुट ऊँची घास खड़ी रहती है अकसर शेर का शिकार लोग हाथियों पर बैठकर करते हैं। इसमें भी या तो हाँकेवाले शेर को हाँकते हैं या हाथी ज़्यादा हुए तो उन्हीं को घास के मैदान में क़तार से चलाकर शेर का पता लगा लिया जाता है।

बाघ के बच्चे बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं। ऐसा न होता तो आज हम अपने चिड़ियाख़ानों में इन्हें कैसे देख पाते।

३—तेंदुआ

The Leopard—Felis pardus

तेंदुआ भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध शिकारी जानवर है। हमारे यहाँ यह सिंध और पंजाब को छोड़कर देश के सभी घने जंगलों में
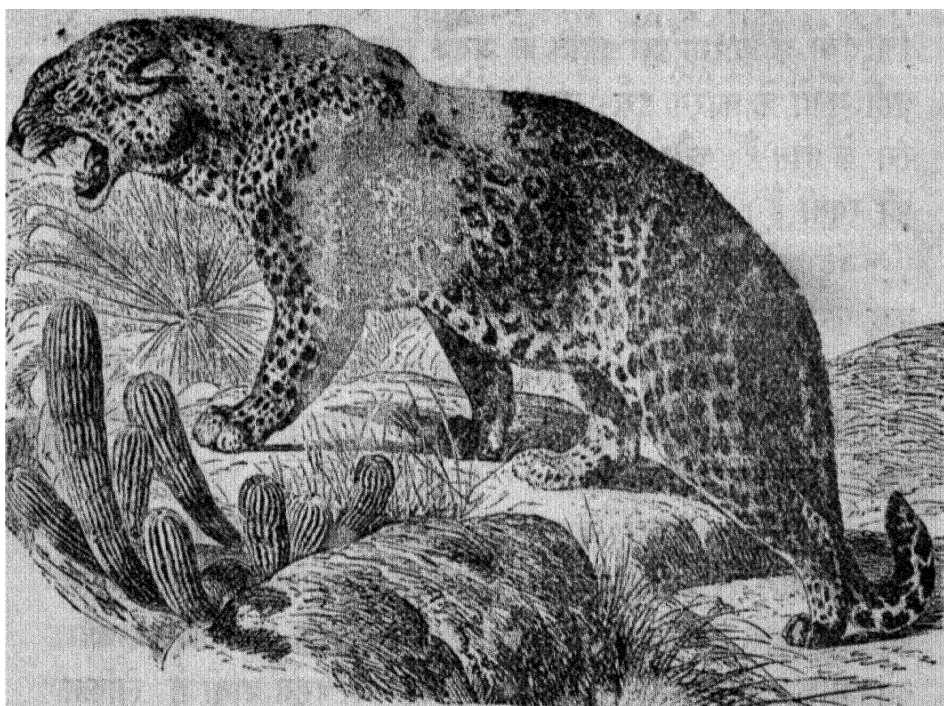
तेंदुआ

पाया जाता है। जिसे शिकार का थोड़ा भी शौक़ है वह इससे अपरिचित रह ही नहीं सकता।

तेंदुआ क़रीब चार-पाँच फ़ुट लंबा और दो फ़ुट ऊँचा होता है। इसके लगभग तीन फ़ुट लंबी दुम होती है। इसका बदन गठीला और अंग सुडौल होते हैं। इसके बदन का रंग वैसे तो हलका बादामी या हलका भूरा होता है लेकिन उसमें कभी कभी

हलकी सुर्खी या सुर्खी मायल सफ़ेदी मिली रहती है। पेट का रंग एकदम सफ़ेद होता है। इसका सारा बदन गोल चित्तियों से भरा रहता है जिसमें से सर, पेट और पैर के निचले हिस्से की चित्तियाँ तो धुर काली होती हैं लेकिन पीठ, दुम और दोनों बग़ल की चित्तियाँ छल्लेनुमा रहती हैं और उनके बीच का रंग पीला रहता है। इन छल्लेदार चित्तियों को 'गुल' भी कहते हैं। इसी कारण जहाँ चित्तियों के कारण इस जाति के प्राणी चित्ता या 'चीता' कहलाते हैं वहीं गुलों के कारण इसे 'गुलदार' भी कहा जाता है। इनके बच्चे भूरे रंग के होते हैं और उनके बदन पर की चित्तियाँ शुरू में हलके रंग की रहती हैं।

तेंदुए के शरीर पर के बाल छोटे होते हैं और इसकी खोपड़ी कुछ लमछौंह रहती है। इसमें और बघेरे में ख़ास भेद यही रहता है कि इसके बदन की चित्तियाँ बहुत स्पष्ट और चमकीली होती हैं लेकिन लंबे बालों के कारण बघेरे के बदन पर की चित्तियाँ ज्यादा साफ़ नहीं दीख पड़तीं।

तेंदुआ घने पहाड़ी जंगलों का निवासी है, जहाँ यह दिन को किसी खोह या घनी छायावाले स्थान में छिपा रहता है और रात को शिकार के लिए बाहर निकलता है। यह बहुत ही ताक़तवर और ख़ौफ़नाक जानवर है। इसमें चालाकी तो बहुत होती है लेकिन साहस कम होता है। मौक़ा पड़ने पर यह अपने को छिपाने या भागने की ही सोचता है। यह गाँव के भीतर आकर आदमियों या जानवरों पर हमला नहीं करता लेकिन रात को गाँव के आस-पास पालतू जानवरों के लिए इसका चक्कर लगता ही रहता है।

तेंदुए में फुर्ती की कमी नहीं रहती। यह काफ़ी लंबी छलाँग मारता है और बहुत आसानी से पेड़ पर चढ़ जाता है। यही नहीं पानी में भी यह अच्छी तरह तैर लेता है।

तेंदुआ मांसाहारी जीव है जो आमतौर पर बंदर, सुअर, हिरन

और कुत्तों को मारकर अपना पेट भरता है। कभी कभी भूखा रहने पर यह छोटे घोड़ों और मवेशियों पर भी हमला कर बैठता है। अपनी ढिठाई के कारण यह आदमखोर हो जाने पर शेर से भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है। इसको पालतू करना उतना आसान नहीं है, जितना शेर और चीते का लेकिन इसको पिंजड़े में बंद करके चिड़ियाघरों में पाला ही जाता है।

इसकी मादा एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है।

४—बघेरा

The Panther—Felis panthera

बघेरा तेंदुए से छोटा जानवर है जो सारे भारत के घने और पहाड़ी जंगलों में फैला हुआ है।

इसका सर तेंदुए से गोल होता है और इसकी टाँगें उससे छोटी होती हैं। इसके बदन पर के बाल तेंदुए से कुछ बड़े जरूर होते हैं लेकिन उनमें उतनी चमक नहीं रहती। इसके बदन का रंग तेंदुए से कुछ गहरा होता है लेकिन बालों के लंबे होने के कारण इसके बदन पर की चित्तियाँ तेंदुए की तरह साफ़ नहीं दिखाई पड़तीं। इसकी दुम लंबी होती है, जिसके सिरे पर बाल ज्यादा रहते हैं।

तेंदुए की लंबाई ३ से ३॥ फ़ुट तक, उँचाई १॥ से २ फ़ुट तक और दुम की लंबाई क़रीब २॥ फ़ुट तक होती है। ये तेंदुए से ज्यादा तादाद में हमारे यहाँ पाये जाते हैं और ढीठ तो इतने होते हैं कि रात में अकसर जंगल के आस-पास के गाँवों में आ जाते हैं। यह सब होने पर भी ये आदमियों पर हमला नहीं करते और गाँव के कुत्तों और छोटे घोड़ों को ही मारकर संतोष कर लेते हैं। जंगल में ये बंदरों और छोटे हिरनों का भी शिकार करते हैं। अपनी ढिठाई के

कारण ये आदमियों को देखकर जल्द नहीं भागते, इसलिए इनको मारना उतना कठिन नहीं होता।
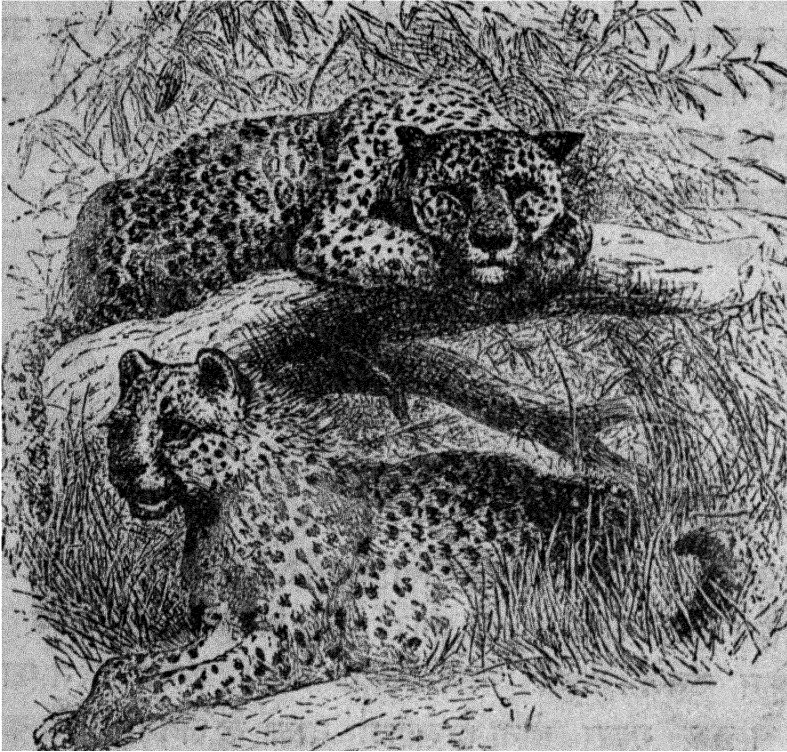
बघेरा (ऊपर) और चीता (नीचे)

इनकी और सब आदतें तेंदुए से इतनी ज्यादा मिलती-जुलती होती हैं कि उनको यहाँ दुहराने की जरूरत नहीं है।

५—साह

The Ounce or Snow Leopard—Felis uncia

साह हिमालय का निवासी है जो लगभग ६००० फ़ुट की ऊँचाई पर रहने के कारण हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ता है।

यह लगभग चार फुट का सुन्दर जानवर है। इसके बदन का रंग सफ़ेदी मायल राख जैसा होता है। और उसमें कभी कभी कुछ पीलेपन की झलक भी रहती है। इसके बदन पर बड़े और काले छल्लेनुमा चित्ते या गुल पड़े रहते हैं, जो देखने में बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। इसके बदन के बाल काफ़ी बड़े होते हैं और दुम के सिरे के पास बालों का एक गुच्छा सा रहता है। नीचे
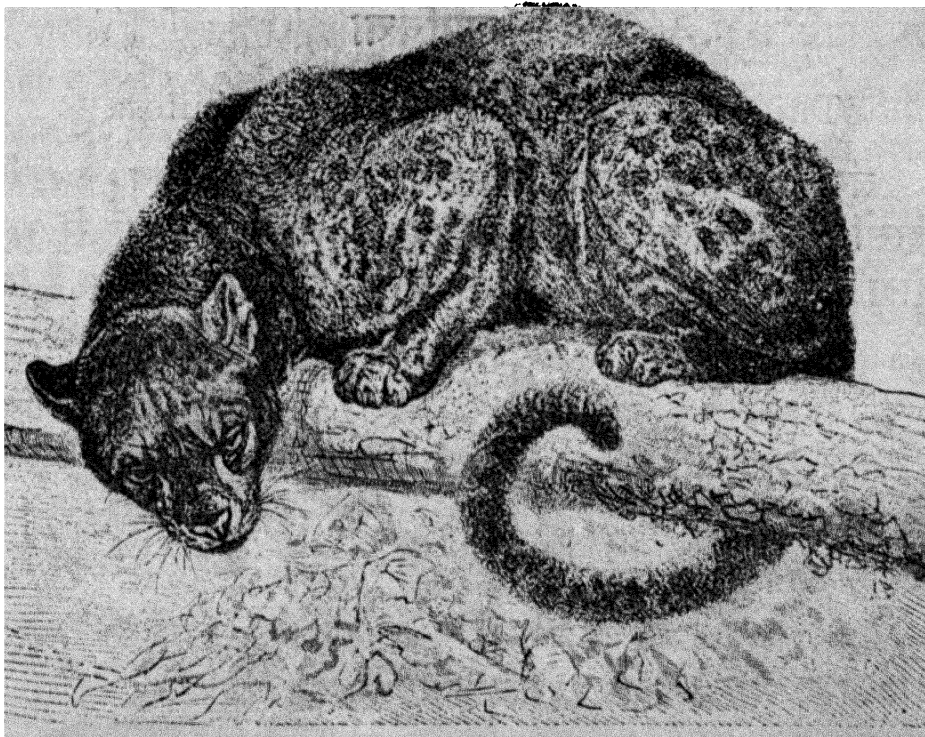
साह

का सारा हिस्सा गन्दा सफ़ेदी मायल रहता है, जिस पर पेट के पास कुछ गहरे रंग की चित्तियाँ रहती हैं। कान का बाहरी हिस्सा काला रहता है। यह लम्बा भले ही चार फुट का हो जावे लेकिन इसकी ऊँचाई दो फुट से ज़्यादा नहीं होती। इसकी दुम की लम्बाई क़रीब तीन फ़ुट के रहती है।

यह बर्फ़ीला तेंदुआ, वैसे तो मांसाहारी और हिंसक जीव है लेकिन यह आदमियों पर हमला नहीं करता। यह भारल आदि बर्फ़ के निकट रहनेवाले जंगली भेड़-बकरियों और कुत्तों को मारकर अपना पेट भर लेता है।

इसकी और बाक़ी आदतें तेंदुए तथा इस परिवार के अन्य जानवरों से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं।

६—लमचित्ता

The Clouded Leopard—Felis nebulosa

लमचित्ता भी हिमालय का निवासी है यह हिमालय के पूर्वी हिस्सों में ७००० फ़ुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। साह से कुछ छोटा होने पर भी इसका नाम लमचित्ता शायद इसलिए पड़ा है कि
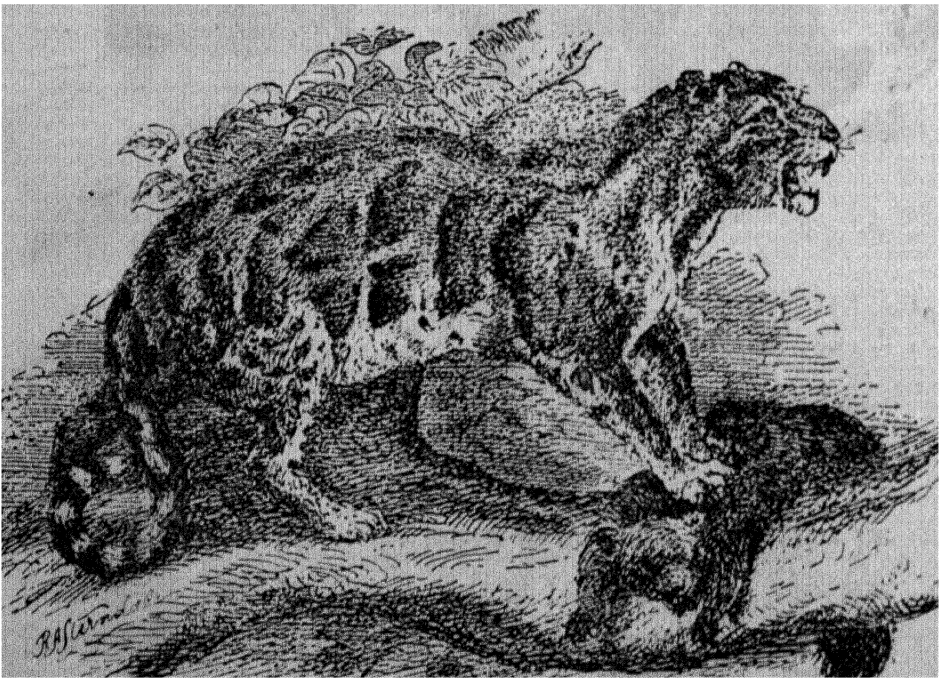
लमचित्ता

इसके पैर छोटे होने के कारण देखने में यह उससे कुछ लम्बा जान पड़ता है। कुछ लोग इसे इसके बदन पर के लंबे और बड़े चित्तों के कारण "लमछिट्टा" भी कहते हैं।

लमचित्ता क़रीब तीन फ़ुट लम्बा होता है। इसकी दुम भी क़रीब क़रीब इतनी ही लम्बी होती है लेकिन इसकी उँचाई १ फ़ुट से कुछ ही ज्यादा रहती है। यह अपने रंग-रूप के लिहाज़ से बहुत ही सुन्दर जानवर है। इसके रंग का वर्णन करना कठिन ज़रूर है लेकिन जिसने इसको एक बार देखा है वह इसे फिर कभी भुला नहीं सकता। इसके बदन का रंग पिलछौंह भूरा या हलका बादामी रहता है, जिसके ऊपर बहुत बड़े बड़े काले चित्ते रहते हैं। ये देखने में बहुत ही भले मालूम देते हैं, जैसे किसी तसवीर की पीली ज़मीन पर काले बादल से उठ रहे हों। इसके पैरों का भीतरी हिस्सा सफ़ेद रहता है और बदन का निचला हिस्सा हलका होता है। गरदन और दोनों गालों पर काली धारियाँ रहती हैं और गले पर एक काली पट्टी साफ़ चमकती रहती है। इसकी दुम काफ़ी लम्बी और झबरी होती है जिस पर गहरे रंग के छल्ले पड़े रहते हैं।

लमचित्ते का बदन भारी और गठीला होता है। इसके अवयव मोटे और पंजे बहुत मज़बूत होते हैं। बरफ़ के पास रहने पर भी इसके बदन के रोएँ बड़े न होकर छोटे ही रहते हैं।

यह अपना काफ़ी समय पेड़ों पर बिताता है। वहाँ यह अकसर किसी दुफंकी डाल पर बैठा रहता है। रात को यह अकसर पेड़ों पर ही सोता है जहाँ अपना पेट भरने के लिए यह चिड़ियों को पकड़ लेता है। चिड़ियों के अलावा यह कुछ छोटे-मोटे जानवरों का भी शिकार करता है, लेकिन आदमियों पर हमला करने की इसकी हिम्मत नहीं पड़ती।

इसकी और आदतें तेंदुए और साह से मिलती-जुलती होती हैं।

७—सिकमार

The Marbled Cat—Felis marmorata

सिकमार, घरेलू बिल्ली के क़द का, छोटा जानवर है जो हमारे यहाँ पूर्वी बंगाल, शिकम और आसाम के जंगलों में काफ़ी संख्या में पाया जाता है। इसके अंग मामूली बिल्लियों से कहीं ज्यादा मज़बूत होते हैं और यह ताक़त और फुरती में भी उनसे आगे ही रहता है। इसके बदन का रंग मैंदा ललछौंह होता है, जिसमें बादामी या हलके भूरे रंग का मेल रहता है। इसके सारे बदन पर बहुत से

सिकमार

लम्बे लम्बे काले धब्बे रहते हैं जो देखने में लहर से जान पड़ते हैं। सर और गुद्दी पर पतली धारियाँ रहती हैं, जो दुम तक चली जाती हैं। इसकी जाँघों के भीतरी हिस्से में काली चित्तियाँ रहती हैं और इसकी लम्बी और काली दुम पर तमाम छोटी छोटी बिन्दियाँ पड़ी रहती हैं। दुम पर छल्ले भी रहते हैं लेकिन उनका

सिरा काला ही रहता है इसके पेट का हिस्सा पिलछौंह सफ़ेद रहता है।

सिकमार क़रीब १॥ फ़ुट से २ फ़ुट लम्बा जानवर है जिसकी दुम लगभग १। फ़ुट लम्बी होती है। दूर से देखने पर यह लमचित्ते का बच्चा जान पड़ता है। इसकी दुम झबरी और जड़ से लेकर सिरे तक एक जैसी मोटी रहती है। इसके शरीर के बाल काफ़ी नरम होते हैं, जिसके नीचे मुलायम रोओं की एक और तह भी रहती है।

सिकमार शर्मीला जानवर है। यह गुस्सा हो जाने पर ख़ौफ़नाक जरूर हो जाता है लेकिन वैसे यह किसी की आहट पाकर पहले छिपने की ही कोशिश करता है। यह अपना ज्यादा समय पेड़ों पर काटता है। इसकी बहुत सी बातें जंगली बिल्लियों से मिलती-जुलती होती हैं।

८—बाघदशा

The Fishing Cat—Felis viverrina

बाघदशा का मुख्य निवास उत्तरी भारत है। वहाँ ये हिमालय की तराई में काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं। वैसे ये कभी कभी दक्षिण भारत की ओर मालाबार तट तक भी मिलते हैं लेकिन इनकी अधिक संख्या बंगाल से लेकर सिंध तक पाई जाती है।

बाघदशा हमारे यहाँ की बड़े क़दवाली जंगली बिल्लियों में से एक है। इसे बंगाल में 'माछबिडाल' और कहीं कहीं 'बरौन' या 'खुपिया बाघ' भी कहते हैं।

यह क़रीब २॥ फ़ुट लम्बा और १। फ़ुट ऊँचा जानवर है। इसके बदन का रंग सिलेटी रहता है। इस सिलेटी रंग में कहीं कहीं हलकी भूरी झलक भी होती है। इसका सारा बदन गहरे रंग की चित्तियों

से भरा रहता है। ये चित्तियां पीठ और गरदन पर तो अंडाकार और सिलसिलेवार रहती हैं लेकिन और स्थानों पर इनकी शकल गोल हो जाती है। वहाँ ये बेसिलसिले से इधर-उधर फैली रहती हैं। इसके गाल का रंग सफ़ेद होता है लेकिन चेहरे पर एक काली धारी रहती है। पेट का रंग मटमैला सफ़ेद होता है, जिस पर सीने के पास तो ५-६ गहरे रंग की पट्टियाँ रहती हैं लेकिन बाक़ी और हिस्सा चित्तियों से भरा रहता है। दुम १०-११ इंच लम्बी होती है जिसका सिरा काला होता है। दुम पर ५-७ छल्ले भी रहते हैं।
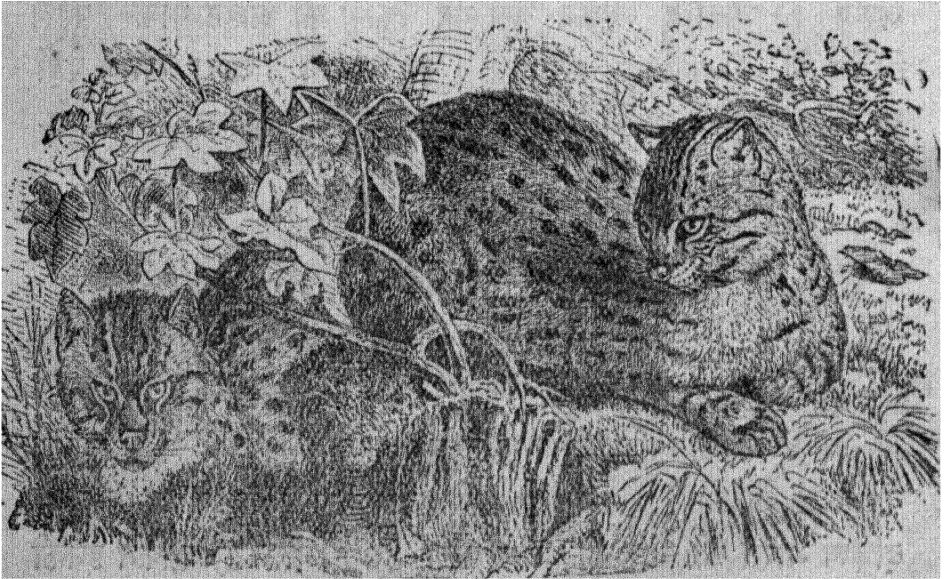
बाघदशा

बाघदशा जैसा ऊपर कहा जा चुका है—और सब जंगली बिल्लियों से क़द में बड़ा होता है। यही नहीं, यह और सब बिल्लियों से ख़ूँख्वार और तेज़ भी होता है। इसको पालतू करना काफ़ी मुश्किल है।

यह पानी के आस-पास और दलदलों के निकट रहनेवाला

प्राणी है जिसका मुख्य भोजन घोंघे, कछुए और मछलियाँ हैं। यह चिड़ियों और छोटे जानवरों को पकड़ने में भी ज़रा नहीं हिचकता और कभी कभी आदमियों के दो-चार महीने के बच्चों को भी उठा ले जाता है। इसकी शरारत यहीं नहीं ख़त्म होती। भूखा रहने पर यह भेड़-बकरियों और कुत्तों पर भी हमला कर बैठता है।

९—तेंदुआ-बिल्ली

Ths Leopard Cat—Felis bengalensis

तेंदुआ बिल्ली सारे भारतवर्ष के पहाड़ी स्थानों में पाई जाती है। यह कद में हमारी घरेलू बिल्ली के ही बराबर होती है। इसे घने
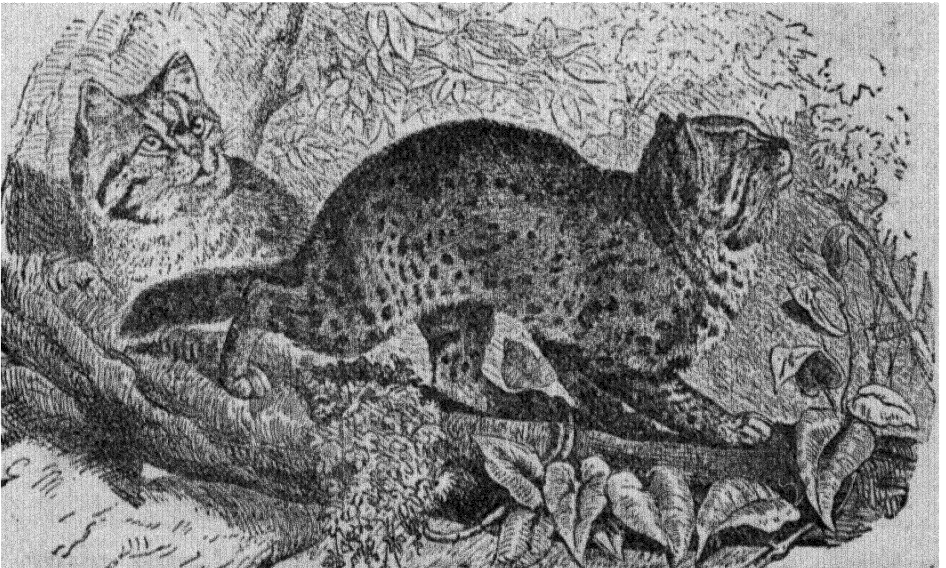
तेंदुआ-बिल्ली

जंगलों में रहना बहुत पसंद है, जहाँ यह ज़्यादातर अपना समय पेड़ों पर ही बिताती है।

इसके बदन का रंग हलका भूरा होता है, जिस पर काली या गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा सफ़ेद रहता है जो गहरी काली धारियों से भरा रहता है। इसकी गरदन और गुद्दी पर काली धारियाँ पड़ी रहती हैं लेकिन दुम और पैरों पर धारियों के बजाय चित्तियाँ रहती हैं, जिनका रंग भी काला ही होता है। इसका क़द लगभग दो फ़ुट लम्बा होता है। इसके अलावा इसकी १ फ़ुट लम्बी दुम होती है। ऊँचाई में यह घरेलू बिल्लियों से ज्यादा ऊँची नहीं होती।

तेंदुआ-बिल्ली जंगल में रहनेवाली बिल्ली है, जो दिन में किसी पेड़ के खोथे या पहाड़ के किसी सूराख़ में घुसी रहती है लेकिन रात होते ही जंगल के आसपास के गाँवों में इसका चक्कर लगना शुरू हो जाता है। वहाँ यह पालतू मुर्गियों-बतख़ों और ख़रगोशों का बहुत नुक़सान करती है। जंगल में भी इसका मुख्य भोजन चिड़ियाँ और छोटे छोटे जानवर हैं।

इसको आसानी से पालतू करना बहुत कठिन है। पिंजड़े में बन्द करने पर यह जल्द पालतू नहीं होती और एक कोने में चुप-चाप दुबक कर बैठी रहती है। किसी के पास जाने पर यह बहुत गुस्सा होती है और बड़े ज़ोर से गुर्राती है।

इसकी मादा एक बार में तीन-चार बच्चे देती है, जो छुटपन में भूरे रंग के रहते हैं।

१०—बनबिलार

The Jungle Cat—Felis chaus

बनबिलार हमारे यहाँ की जंगली बिल्लियों में सबसे प्रसिद्ध है जो हमारे देश में, धुर-दक्खिन से हिमालय की ७-८ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक के जंगलों में फैले हुए हैं। जंगल के पास-पड़ोस के कोई भी गाँव इनसे ख़ाली हों, यह मुमकिन नहीं।

बनबिलार हमारे यहाँ की घरेलू बिल्लियों के बराबर होता है। इसकी लम्बाई २ फ़ुट से कुछ कम ही होती है। उँचाई में यह मामूली बिल्लियों के बराबर होता है और इसकी दुम १० इंच से ज्यादा नहीं होती। इसके बदन का रंग कुछ ललछौंह सिलेटी होता है जिसमें कुछ भूरापन भी मिला रहता है। इसकी पीठ पर से दोनों बग़ल की ओर धुमैली खड़ी खड़ी धारियाँ रहती हैं जो जगह ब-जगह टूट
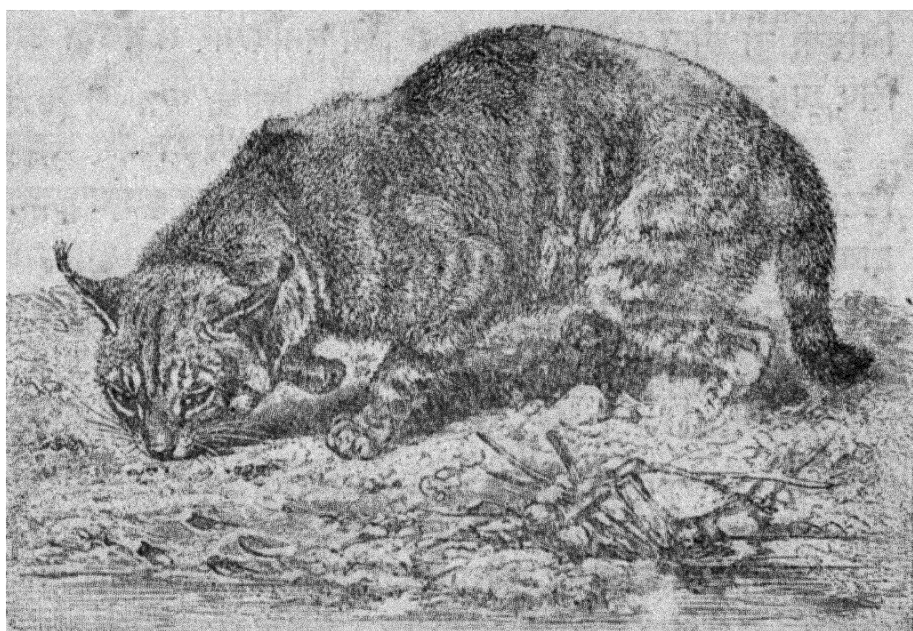
बनबिलार

जाने से चित्तियों की शकल की हो जाती हैं। ज्यादा उम्र हो जाने पर बनबिलार के बदन की चित्तियाँ बहुत अस्पष्ट हो जाती हैं। बन-बिलार के पैरों पर के चिह्न ज्यादा साफ़ दीखते हैं और इनके अगले पैर पर जो एक स्पष्ट काली धारी रहती है, उस पर फ़ौरन निगाह पड़ जाती है। इसके नीचे का हिस्सा सफ़ेद होता है लेकिन सीने पर कभी कभी एक काली धारी रहती है। पेट का हिस्सा भी

कभी कभी हलके रंग की बिन्दियों से भरा रहता है। इसके पैर के तलवे कलछौंह होते हैं और दुम के निचले आधे भाग में छल्ले पड़े रहते हैं। दुम का सिरा काला होता है।

बनबिलार गाँव और बस्तियों में घुसकर हमारा बहुत नुक़सान करता है। दिन भर तो यह सुनसान खँड़हरों, घास के मैदानों, जंगलों और खेतों में छुपा रहता है लेकिन रात हुई नहीं कि यह बस्तियों में बाक़ायदा घूमने लगता है। फिर गाँव की कोई पालतू चिड़िया या छोटा जानवर बन्द न रहा तो वनबिलार से बचना उसके लिए असंभव सा हो जाता है।

इसकी और आदतें अन्य जंगली बिल्लियों सी होती हैं लेकिन ढिठाई में यह उन सबसे आगे है। जंगली तो यह इतना ज़्यादा होता है कि इसको पालना संभव नहीं।

मादा साल में दो बार तीन-चार तक बच्चे देती है।

११--बिल्ली

The Cat—Felis domestica

बिल्ली से भला ऐसा कौन है जो परिचित न होगा। पालतू जानवरों में कुत्ते की तरह यह भी बहुत दिनों से शौक़ीनों के शौक़ की पूर्ति करती रही है। जानवरों की कहानियों में तो इसका एक विशेष स्थान ही है।

बिल्ली को शेर की मौसी कहा जाता है क्योंकि चालाकी में यह उससे कहीं आगे है। इसकी अनेकों पालतू जातियाँ संसार भर में फैली हुई हैं जिसमें परशियन बिल्ली, श्यामीज़ बिल्ली आदि मुख्य हैं।

हमारे देश में भी, शहरों की इन विदेशी पालतू बिल्लियों के मेल से एक प्रकार की बिल्लियाँ पाई जाती हैं जिन्हें सब पालतू बिल्लियों

का मेल कह सकते हैं। ये सफ़ेद भी होती हैं और काली भी; लेकिन इनमें ज्यादातर चितकबरी ही दिखाई पड़ती हैं। इन बिल्लियों को हमारे यहाँ विलायती बिल्ली कहते हैं। इनके रंग में सफ़ेद, काले या भूरे धब्बों के अलावा कभी कभी देशी बिल्लियों की तरह कुछ हिस्सा चित्तीदार भी रहता है।

इन बिल्लियों को हम अपने यहाँ की बिल्ली नहीं कह सकते। हमारे यहाँ की बिल्ली तो असल में वही है जो हमारे घरों में दिन भर पालतू बिल्ली की तरह घूमा करती है और जो गौरैया या कौए की तरह इतनी ढीठ हो गई है कि उसे हम अपने घर का प्राणी कह सकते हैं।

बिल्ली

इस बिल्ली का रंग कलछौंह सिलेटी होता है जिसके सारे शरीर पर काली बिन्दियाँ और धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी दुम भी पतली और काली गड़ारियों से भरी रहती है। इससे हम सब इतने ज्यादा परिचित हैं कि इनके रंग-रूप, क़द और शकल-सूरत के बारे में ज्यादा लिखने की जरूरत नहीं।

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा गाँव या शहर होगा जहाँ हमारी बिल्लियाँ न पहुँच गई हों। ये बन्दरों की तरह उत्पात नहीं करतीं और न कौओं की तरह इनके शोर से परेशान हो जाना पड़ता है लेकिन दूध-मलाई और गोश्त वग़ैरह खुला रह गया तो फिर उसके बचने की कोई आशा इनसे न करनी चाहिए। पालतू चिड़ियों

और छोटे-मोटे जानवरों को भी खुला पाकर यह नहीं छोड़तीं और अकसर पिंजड़ों में पंजे डालकर उनको मार डालती हैं।

इनको बाघ या तेंदुए का छोटा स्वरूप कह सकते हैं और इनके शरीर की बनावट, शकल-सूरत और शिकार के तरीक़े को देखकर हम शेर आदि हिंसक जानवरों के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

बिल्लियाँ कितनी भी पालतू क्यों न हो जावें वे कुत्ते की तरह आदमियों से हिल नहीं पातीं। उनमें कुत्तों की तरह न तो मुहब्बत होती है और न वैसी वफ़ादारी। वे कुरसियों पर लेटी लेटी अपना बदन भले ही चाटकर साफ़ करती रहें लेकिन उनसे आदमियों को किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं मिल सकती। उलटे गुस्सा होने पर उनके पंजा मार देने का डर हमेशा लगा रहता है।

घरेलू बिल्लियों को मनुष्यों से भले ही प्रेम न हो लेकिन उन्हें अपने निवासस्थान से बहुत प्रेम रहता है। वे जहाँ एक बार पाली जाती हैं या जहाँ उन्होंने अपने रहने और शिकार करने का अड्डा बना लिया, वहाँ से फिर उनको दूसरी जगह ले जाना एक ज़हमत ही समझिए। ऐसे उदाहरण मिले हैं कि कुछ बिल्लियों को बोरे में बन्द करके कोसों दूर ले जाकर छोड़ा गया लेकिन बिल्लियाँ बिना किसी दिक्क़त के अपने स्थान पर लौट आईं। इसका कारण यह है कि बिल्लियों की सूँघने की ताकत बेहद तेज़ होती है और एक बार किसी चीज़ को सूँघ लेने पर, उनके मस्तिष्क पर उसी प्रकार के चित्र अंकित हो जाते हैं, जैसे किसी चीज़ को देखने के बाद हम लोगों के मस्तिष्क पर पड़ते हैं। इसी कारण बिल्लियाँ उन चीज़ों की गन्ध के सहारे अपने निश्चित स्थान पर लौट आती हैं।

बिल्ली एक बार में कई बच्चे देती है, जिन्हें वह थोड़े थोड़े दिन बाद एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रखती है। बच्चे बहुत ही खिलाड़ी और प्यारे होते हैं लेकिन इनको सीधा नहीं

कहा जा सकता। गुस्सा होने पर ये फ़ौरन पंजा मार देते हैं। गुस्सा होने पर या दबाव में पड़ने पर बिल्ली भी बहुत खूंखार हो जाती है और उछलकर आदमियों की गरदन इस ज़ोर से पकड़ लेती है कि बस जान ही पर आ बनती है।

इसका मुख्य भोजन मांस है लेकिन यह दूध-दही बहुत स्वाद से खाती है। चूहे, चिड़ियाँ और छोटे छोटे जानवर इससे बचने नहीं पाते।

इसके बारे में ख़ास ख़ास बातें तो मांसभक्षी-वर्ग के वर्णन के साथ दिया ही जा चुका है।

१२—स्याहगोश

The Caracal—Felis caracal

स्याहगोश, जंगली बिल्लियों की शकल-सूरत का छोटा सा जानवर है, जो अपने ऐंठे हुए काले कान के कारण उन सबसे बिना किसी दिक्क़त के अलहदा किया जा सकता है। इसकी एक और जाति हमारे यहाँ पाई जाती है जिसे 'लिंक्स' कहते हैं। ये हमारे देश में स्याहगोश की तरह फैले नहीं हैं बल्कि इनकी थोड़ी ही संख्या काश्मीर और गिलगिट के आस-पास पाई जाती है।

स्याहगोश सिर्फ़ पंजाब, सिन्ध और पश्चिमोत्तर प्रान्त में ही नहीं, मध्यप्रदेश और मध्यभारत के जंगलों में भी पाए जाते हैं। दक्षिण में भी ये मालाबार तट को छोड़कर वहाँ के प्रायः सभी जंगलों में फैले हुए हैं।

हमारे देश में इतने प्रान्तों में फैले रहने पर भी स्याहगोश को हम बहुत कम देख पाते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं—एक तो ये अपने रहने की जगह इतने घने जंगलों के बीच चुनते हैं कि वहाँ जल्द आदमियों की पहुँच नहीं हो पाती। दूसरे ये हमारे देश में

बहुत कम संख्या में हैं, इस कारण ये हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ते हैं और यदि इन्हें हम जंगलों में देखते भी हैं, तो इन्हें मामूली जंगली बिल्ली समझकर जल्द पहचानते नहीं।

स्याहगोश

स्याहगोश क़रीब २।। फ़ुट लम्बा और १।। फ़ुट ऊँचा जानवर है। इसकी दुम १ फ़ुट से कुछ छोटी होती है। इसके ऊपर का रंग ललछौंह सिलेटी होता है जिसमें कुछ पीलापन भी मिला रहता है। कुछ स्याहगोश हलके भूरे या बादामी रंग के भी होते हैं लेकिन चित्ती किसी के बदन पर नहीं होती। इनके पेट का रंग वैसे तो पिलछौंह रहता है लेकिन कुछ सफ़ेद पेटवाले स्याहगोश भी पाये गये हैं। पेट पर बहुत हलकी ललछौंह चित्तियाँ रहती हैं, जो एक तरह से लिपी-पुती सी रहती हैं और ग़ौर से देखने से ही इनका पता चलता है।

इनकी दुम वैसे तो शरीर के ही रंग की रहती है लेकिन उसका सिरा अन्य जंगली बिल्लियों की तरह काला होता है। टाँगों का भीतरी हिस्सा और नीचे का कुछ हिस्सा एक प्रकार की धुमैली चित्तियों से भरा रहता है।

स्याहगोश के कान का बाहरी हिस्सा काला होता है। इसी के कारण इसे यह नाम मिला है। इसके कान के ऊपरी हिस्से पर बालों का एक गुच्छा सा रहता है और कान के भीतरी हिस्से के बाल काले न होकर सफ़ेद रहते हैं। इसके ऊपरी होंठ और आँखों के ऊपर एक एक काली चित्ती रहती है और नाक के दोनों बग़ल काली धारियाँ रहती हैं।

स्याहगोश और स्थानों की अपेक्षा मध्यभारत के जंगलों में अधिक संख्या में हैं; लेकिन घनी झाड़ियों, घास के मैदानों और घने जंगलों के बीच रहने के कारण इन्हें हम बहुत कम देख पाते हैं। यही वजह है कि इनके बारे में बहुत सी बातों की अभी तक खोज नहीं हो सकी है।

इनका मुख्य भोजन छोटे जानवर और मोर आदि पक्षी हैं। यही नहीं, ये कभी कभी छोटे हिरनों को भी मार लेते हैं। चिड़ियों के पकड़ने में तो ये उस्ताद होते हैं। अपनी पेड़ पर चढ़ने की आदत से ये वैसे तो पेड़ों पर घूम घूमकर चिड़ियों को पकड़ ही लेते हैं, लेकिन अगर ज़मीन पर इन्हें चिड़ियों को पकड़ना हुआ तो ये उनके उड़ने पर भी ज़मीन से ५-६ फ़ुट तक कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं।

इनकी इसी फुरती के कारण कुछ लोग इन्हें पालतू करके इनसे चीते की तरह शिकार का काम लेते हैं। सिखाये जाने पर इनकी आँखों पर चीतों की तरह पट्टी बाँध दी जाती है। शिकार सामने दिखाई पड़ने पर इनके आँख की पट्टी खोल दी जाती है और तब इनकी फुरती और तेज़ी देखने क़ाबिल होती है। ये छोटे हिरनों,

खरगोश और लोमड़ियों के अलावा तीतर, मोर, कबूतर आदि चिड़ियों का बड़ी आसानी से शिकार कर लेते हैं। ज़मीन पर चुगते हुए कबूतरों पर जब ये छोड़े जाते हैं, तो इससे पहले कि वे उड़ जावें, ये १०-१२ कबूतरों को तो मार ही गिराते हैं।

१३—चीता

The Hunting Leopard—Felis jubetus

चीता हमारे देश का सबसे तेज़ दौड़नेवाला जानवर है, जो तेंदुए का एक तरह से भाई कहा जा सकता है। इसका रंग-रूप भी तेंदुए से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है लेकिन इसकी लम्बी टाँगें, छोटा सर और बदन की पतली बनावट तेंदुए से एकदम जुदा है। वह अपने बड़े सर और गठीले बदन के कारण इससे साफ़ अलग जान पड़ता है।

चीते अफ़्रीका आदि देशों में तो अब भी काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं लेकिन हमारे देश में ये बहुत कम संख्या में रह गये हैं। अगर इनका शिकार एकदम बन्द न कर दिया गया तो हमारे देश में ये भी सिंहों की तरह इने-गिने ही रह जायँगे। हमारे यहाँ चीते मध्यप्रान्त, मध्यभारत, दक्षिण भारत, राजपूताना, सिन्ध, पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रान्त के जंगलों में पाये जाते हैं लेकिन गंगा के उत्तरी भाग में और बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में इनका पता नहीं चलता।

चीता छरहरे बदन का कुछ चपटा सा जानवर है जिसकी टाँगें भी काफ़ी लम्बी होती हैं। इसका बदन क़रीब ४॥ फ़ुट लम्बा होता है जिसमें उसकी २॥ फ़ुट की दुम शामिल नहीं की गई है। ऊँचाई में यह २॥ फ़ुट से कम नहीं होता। इसकी दुम सिरे पर कुछ घूमी सी रहती है और इसके कान छोटे और गोलाई लिये रहते हैं। इसका सर इसके बदन के लिहाज़ से काफ़ी छोटा ही कहा जायगा,

लेकिन देखने में यह बदशकल लगता हो सो बात नहीं है। तेंदुए के वर्णन के साथ जो चित्र दिया गया है उसमें ऊपर तेंदुए का और नीचे चीते का चित्र है।

चीता जैसा उसके नाम से ज़ाहिर है चित्तीदार जानवर है। इसकी पीठ और दोनों बगल का रंग कभी ललछौंह बादामी और कभी भूरापन लिए हलके पीले रंग का होता है, जिस पर धुर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा ऊपर के हिस्से की ज़मीन से कहीं ज्यादा हलके रंग का होता है जो उसी की काली चित्तियों से भरा रहता है। इसकी ठुड्डी और गला बहुत हलकापन लिए सफ़ेद होता है जिस पर किसी क़िस्म की चित्तियाँ नहीं रहतीं। दोनों आँख के भीतरी कोनों से ऊपरी होंठ तक एक एक काली लकीर चली जाती है और इसी तरह की दो लकीरें जो हलकी या बिन्दीदार होती हैं आँख के दोनों बाहरी कोनों से कान के नीचे तक फैली रहती हैं। इसके कान का बाहरी हिस्सा काला होता है जो जड़ के पास भूरा हो जाता है। दुम पर भी काले चित्ते रहते हैं जो जड़ के पास जाकर तीन-चार छल्लों की शकल के हो जाते हैं। दुम का सिरा काला न होकर सफ़ेद रहता है।

चीते की आँख की पुतली गहरे भूरे रंग की होती है और इसके नथुने के पास की खाल शेर की तरह गुलाबी न होकर काले रंग की रहती है। इसके बदन पर के बाल वैसे तो छोटे और कड़े होते हैं लेकिन गरदन पर के बाल लम्बे और बिखरे बिखरे से रहते हैं। इनके बच्चों के सारे शरीर के बाल शुरू में लम्बे होते हैं जो इनके बदन की चित्तियों को ढक सा लेते हैं।

चीता अपने शिकार के कारण बहुत प्रसिद्धि पा चुका है। हमारे यहाँ अब भी लोग इसे शिकार के लिए पालते हैं और इससे हिरन वग़ैरह का शिकार खिलाते हैं। यह घने जंगलों से ज्यादा खुले मैदानों में रहना पसन्द करता है जहाँ यह भेड़-बकरियों

और हिरनों का शिकार करता फिरता है। सिखाये जाने पर यह बहुत पालतू हो जाता है लेकिन इसकी आँख पर तब तक पट्टी बँधी रहती है, जब तक इसको शिकार पर छोड़ने का समय नहीं आ जाता।

बचपन से पाले हुए चीते आदमियों से खूब हिल भले ही जावें लेकिन वे दौड़ने में उतने तेज़ नहीं होते जितने बड़ी उम्र के पकड़े हुए चीते। इसी लिए प्राय: बड़े चीतों को ही पकड़कर शिकार करना सिखाया जाता है और यह देखकर सचमुच ताज्जुब होता है कि वे इतनी जल्द पालतू कैसे हो जाते हैं। अब तो चीते का शौक़ धीरे धीरे कम होता जा रहा है लेकिन अब भी काफ़ी संख्या में शिकारी चीते देशी नरेशों के यहाँ पले हुए हैं।

इनके शिकार के संक्षिप्त वर्णन के बिना इनका बयान अधूरा ही रह जायगा। यही सोचकर इनके शिकार का मुख़्तसर सा हाल नीचे दिया जा रहा है।

पकड़े जाने के बाद चीते को पालतू करने में पहले कुछ दिन लगता है फिर उसे धीरे धीरे शिकार करना सिखाया जाता है। शिकार करना सीख लेने पर उसका मालिक उसे बैलगाड़ी या और किसी सवारी पर लाद कर ऐसे मैदान में ले जाता है जहाँ हिरनों का पहले से पता रहता है। हिरनों का गरोह दिखाई पड़ते ही चीते की आँख की पट्टी खोल दी जाती है और यह हिरनों को देखते ही उनके गरोह पर टूट पड़ता है। इसकी तेज़ दौड़ के आगे हिरनों का भागना मुश्किल हो जाता है और चार-पाँच फ़रलांग के भीतर ही यह किसी न किसी हिरन को पकड़ लेता है।

चीता हिरन की टाँगों के नीचे से पंजा मारकर उसे गिरा देता है और अपने दाँतों से उसकी गरदन को पकड़े हुए तब तक वहीं खड़ा रहता है जब तक उसका मालिक वहाँ नहीं पहुँच जाता। शिकारी हिरन के पास पहुँचकर उसका गला काट देता है और

चीते को किसी बड़े बर्तन में उसका खून पीने को दे देता है। खून पीते समय चीते की आँखों पर फिर पट्टी चढ़ा दी जाती है।

१४—कटास

The Large Indian Civet—Viverra zibetha

कटास हमारे देश के केवल पूर्वी हिस्सों में पाया जाता है और रात में निकलनेवाला पशु होने के कारण यह हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ता है। हमारे देश में नैपाल से उड़ीसा के पूरब की ओर के जंगल ही इसके रहने के स्थान हैं।
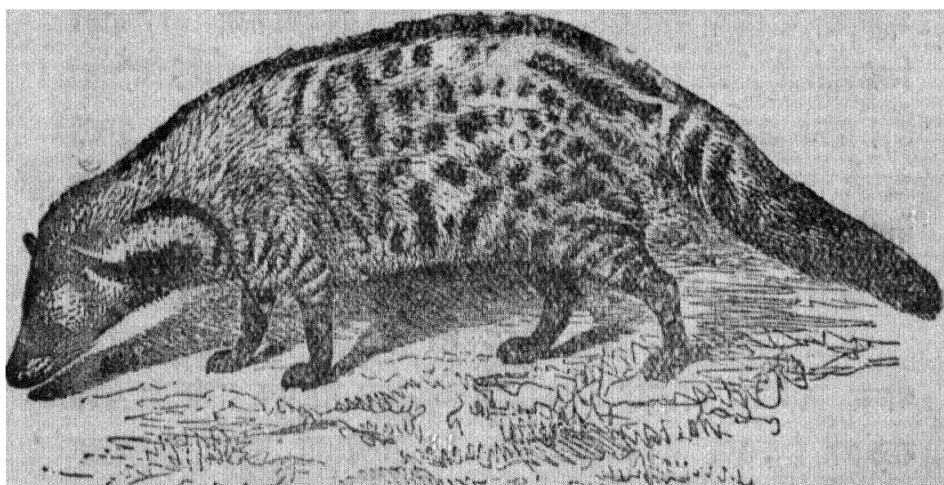
कटास

इसे लोमड़ी और बिल्ली के बीच का जानवर कहें तो ज्यादा बेजा नहीं होगा क्योंकि जहाँ इसने लोमड़ी की शकल और क़द चुराया है, वहीं यह बिल्लियों की आदत को चुराना भी नहीं भूला है। इसका क़द २॥ फुट से कुछ बड़ा ही होता है लेकिन इसकी टाँगें इसके क़द को देखते हुए छोटी ही कही जावेंगी। इसकी दुम जरूर १॥ फुट से किसी तरह कम नहीं होती।

कटास का रंग गाढ़ सिलेटी होता है और उसकी पीठ पर के बाल काले रंग के होते हैं। ये बदन के और बालों से तो बड़े होते ही हैं साथ ही साथ गरदन से पीठ तक फैले रहते हैं। इसकी दुम भी काले रंग की होती है जिस पर सफ़ेद छल्ले या गड़ारियाँ पड़ी रहती हैं। इसके पैर के तलवे भी काले होते हैं लेकिन टाँगों की जड़ के पास का हिस्सा काली और सिलेटी धारियों से भरा रहता है। इसके गले और सीने पर भी चौड़ी और स्पष्ट सफ़ेद काली पट्टियाँ पड़ी रहती हैं और बदन के दोनों बगल कुछ हलकी धारियाँ ज़ाहिर होती रहती हैं।

कटास रात्रिचर जीव है। यह दिन भर जंगल की घनी घास या झाड़ियों में छिपा रहता है और रात होने पर अकेला ही बाहर निकलता है। इसका मुख्य भोजन, छोटे जानवर और चिड़ियाँ हैं। इसी कारण जंगल के पास-पड़ोस के गाँववालों को इससे अपने पालतू पशु-पक्षियों को बहुत बचाना पड़ता है। यह मांस के अलावा जड़ें और फल-फूल भी खाता है और छोटे-मोटे जलचर भी इससे नहीं बचने पाते।

कटास पानी में अच्छी तरह तैर लेता है और इस जाति के अन्य जानवरों की तरह इसकी दुम के नीचे भी एक गन्ध की थैली रहती है। इससे एक प्रकार का तेज़ गन्धपूर्ण पदार्थ निकलता रहता है।

इसकी मादा एक बार में तीन से पाँच तक बच्चे देती है।

१५—कस्तूरी (मुश्क बिल्ली)

The Small Indian Civet—Viverricula malaccensis

कस्तूरी, कटास की ही जाति का जन्तु है। यह हमारे देश के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। इसे मुश्क बिल्ली भी कहते हैं

क्योंकि इसकी दुम के नीचे भी एक गंध-थैली होती है, जिसमें से गंध-पूर्ण गाढ़ा पदार्थ निकलता रहता है। इसका कस्तूरी नाम भी इसी गंध-थैली के कारण पड़ा है। यही नहीं, बंगाल में इसी कारण इसे 'गंधगोकुल' कहते हैं। देहातों में तो यह 'चोंधियारी' के नाम से पुकारी जाती है क्योंकि इसके बदन का रंग चितकबरा होता है और इस कारण चाँदनी रात में इसे देखने से सहसा आँख चौंधिया जाती है।
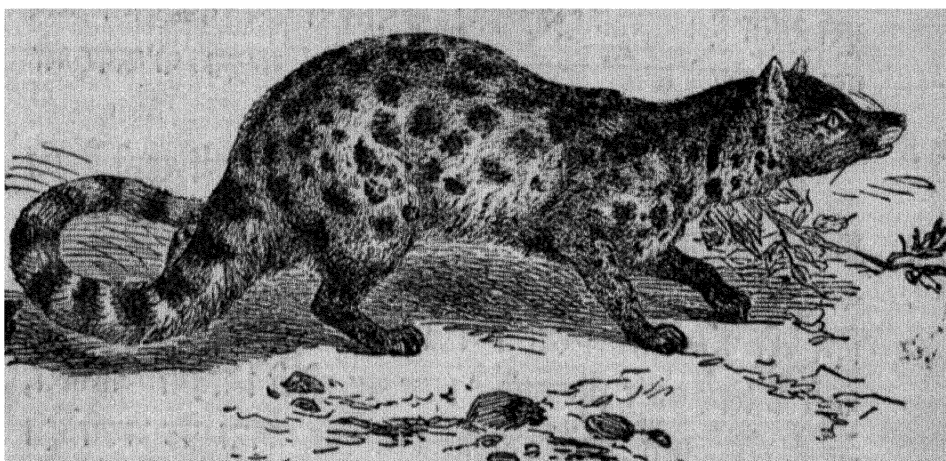
कस्तूरी (मुश्क बिल्ला)

जो भी हो कस्तूरी हमारा बहुत परिचित प्राणी है, जो रात्रिचर होने पर भी अपनी बड़ी संख्या के कारण हमें अकसर दिन में भी दिखाई पड़ जाती है। देहातों में तो इसके उपद्रवों से परेशान हो जाना पड़ता है और इसी कारण इसे लोग मौक़ा पाते ही मार डालते हैं।

कस्तूरी लगभग दो फ़ुट लम्बी होती है जिसकी दुम १॥ फ़ुट से कम नहीं होती। कटास की तरह इसके भी लम्बी मूँछ होती है जो इसकी स्पर्शेन्द्रिय कही जा सकती है। अँधेरी रात में चलते समय इन मूँछों से इसको बड़ी सहायता मिलती है।

कस्तूरी के बदन का रंग भूरापन लिये सिलेटी होता है, जिस पर काली काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ पर की चित्तियाँ लम्बी होकर क़तारों की शकल की हो जाती हैं, लेकिन बदन की और चित्तियों का कोई सिलसिला नहीं रहता। सारी दुम काली और सफ़ेद गड़ारियों से भरी रहती है। ये गड़ारियाँ या छल्ले ज्यों ज्यों सिरे की ओर जाते हैं त्यों त्यों पतले होते जाते हैं। इसके पेट पर कोई चित्ती नहीं रहती और इसकी टाँगों का निचला हिस्सा धुमैला भूरा रहता है। इसके दोनों कान के पास से कंधे तक दोनों ओर एक एक काली लकीर ज़रूर रहती है और गरदन के ऊपर भी कुछ खड़ी धारियाँ रहती हैं।

कस्तूरी दिन भर किसी घनी झाड़ी या बिल में रहती है जो अक्सर जङ्गलों में या जलाशयों के किनारे रहती हैं। पुराने खँडहर या पुराने मकान भी इनके रहने के लिए उपयुक्त स्थान हैं। सारा दिन ऐसे ही निर्जन स्थानों में बिताकर रात को कस्तूरी शिकार करने के लिए बाहर निकलती है। तब यह छोटी चिड़ियों, जानवरों, मेढक, साँप तथा कीड़े-मकोड़ों को मारकर अपना पेट भरती है। मांसाहार के अलावा यह फल-फूल भी बड़े मज़े में खाती है।

कस्तूरी बड़ी आसानी से पालतू हो जाती है और अक्सर जंगली लोग इसे स्याहगोश की तरह शिकार कराने के लिए पालते हैं।

१६—मुसंग (ताड़ की बिल्ली)

The Indian Palm Civet—Paradonurus niger

मुसंग को ताड़ की बिल्ली भी कहते हैं और जैसा इसके दूसरे नाम से ज़ाहिर है यह पेड़ों पर रहनेवाला जानवर है। यह अपना ज़्यादा समय पेड़ों पर ही बिताता है। पेड़ों में भी इसे ताड़, खजूर

या नारियल के पेड़ ज्यादा पसंद हैं, जहाँ इसे शाम को अकसर देखा जा सकता है।

मुसंग या ताड़ की बिल्ली, बिल्ली की शकल-सूरत की न होकर अपने कस्तूरी, कटास आदि जात-बिरादरियों की हमशकल होती है। यहाँ तक कि उसकी लम्बी मूँछ, छोटी टाँगें, लम्बी दुम और लोमड़ी जैसा नुकीला मुँह, सब कुछ कस्तूरी ही की तरह का होता है।

मुसंग (ताड़ की बिल्ली)

मुसंग २० इंच से २ फ़ुट तक लम्बा होता है। इसकी लम्बी दुम लम्बाई में क़रीब क़रीब इसके बदन के बराबर पहुँच जाती है। इसके रंग के बारे में कुछ कहना बहुत मुश्किल है क्योंकि अलग अलग मुसंगों के रंग अलग अलग होते हैं। वैसे आमतौर पर इसका रंग भूरापन लिये सिलेटी होता है जिस पर काली चित्तियाँ या धारियाँ रहती हैं। इनके पैर का रंग गहरा होता है और अकसर इसके सर के ऊपरी हिस्से से नाक के बीच तक एक गहरी धारी रहती है।

मुसंग हमारे यहाँ का बहुत परचित जानवर है, जो बस्तियों के पास की झाड़ियों, जंगलों और खाली मकानों में रहता है। यह रात्रिचारी जीव है, जो दिन भर ऐसे ही स्थानों में रहकर शाम को शिकार के लिए बाहर निकलता है। यह पेड़ पर चढ़ने में बहुत उस्ताद होता है और गाँवों की पालतू चिड़ियों और छोटे जानवरों को बहुत नुक़सान पहुँचाता है। यह ताड़ के पेड़ों पर चढ़कर बहुत ताड़ी भी बर्बाद कर डालता है।

घरेलू बिल्लियों की तरह मुसंग केवल बस्तियों के आस-पास ही रहता हो सो बात नहीं है—इसकी काफ़ी बड़ी संख्या जंगलों में फैली हुई है, जो वहीं शिकार करके अपना पेट भर लेती है। इसका मुख्य भोजन—चिड़ियाँ, कीड़े-मकोड़े और छोटे जानवर हैं।

मुसंग बहुत आसानी से पालतू हो जाते हैं और जंगली अवस्था में रहकर भी, ढीठ हो जाने पर, ये हमारे लिए नेवले की तरह बहुत उपयोगी हो सकते हैं। इनकी और सब आदतें कस्तूरी से इतनी मिलती-जुलती होती हैं कि उनको यहाँ दुहराना आवश्यक नहीं जान पड़ता। यहाँ तक कि, इनके भी दुम के नीचे कस्तूरी की तरह गंध की थैली होती है, जिसमें से गंधयुक्त पदार्थ निकलता रहता है।

इसकी मादा एक बार में चार से छः तक बच्चे देती है।

१७—नेवला

The Common Indian Mungoose—Herpestes mungo

नेवला हमारे देश का इतना परिचित और ढीठ जानवर है कि हममें से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इसे मकान में या घर के आस पास घूमते न देखा हो।

यह हमारे देश के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है और इसकी कई जातियाँ हमारे यहाँ फैली हुई हैं। इनमें से सबसे ढीठ और घरों में चूहों की तरह घूमनेवाला नेवला प्रायः १। फ़ुट लम्बा होता है। इसकी दुम भी क़रीब क़रीब इतनी ही बड़ी होती है। इसका रंग भूरा होता है जिसमें कुछ पिलछौंह और स्याहीपन की झलक रहती है और किसी किसी के रंग में कुछ ललाई भी दीख पड़ती है। इसके थूथन और पैर भूरे रंग के, पंजे गाढ़े भूरे और आँख की पुतलियाँ ललछौंह भूरी होती हैं। इसके बदन पर छोटे और खुरदुरे बाल होते हैं, जिसे यह बिल्लियों की तरह बराबर चाटता रहता है। इसकी आँखें और कान छोटे, पंजे मज़बूत और दुम के सिरे पर के बाल घने होते हैं।
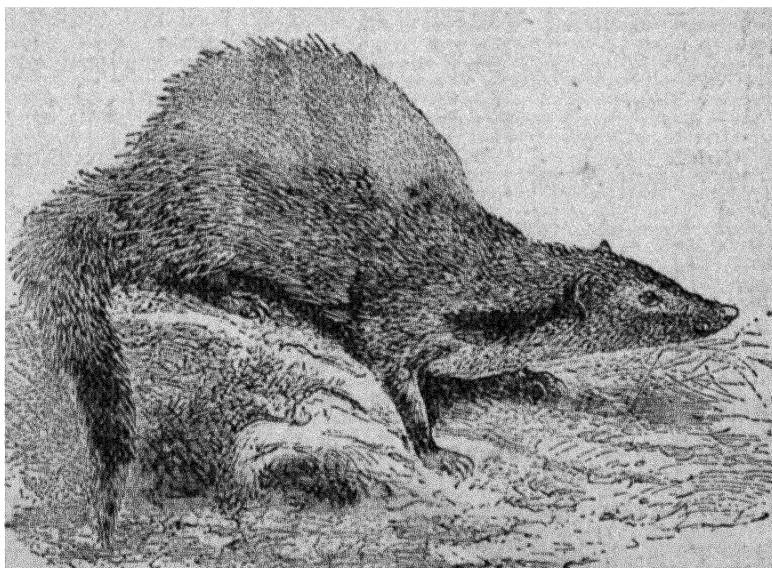
नेवला

नेवले दिन रात दोनों वक्त बराबर बाहर दिखाई पड़ते हैं। ये वैसे तो ज़मीन पर बिल बनाकर रहते हैं लेकिन पेड़ों पर चढ़ने में ये गिलहरी से कम उस्ताद नहीं होते। ये अक़्लमंद भी काफ़ी

होते हैं और इनको बड़ी आसानी से पाल सकते हैं। एक बार पालतू हो जाने पर ये कुत्ते की तरह हिल जाते हैं और अपने मालिक के पीछे पीछे चलते हैं।

नेवले हमारे घरों के आस पास रहने के कारण, इतने ज़्यादा ढीठ हो गये हैं कि ये अकसर पालतू चिड़ियों और छोटे जानवरों पर आदमियों के सामने ही हमला कर बैठते हैं। हमला करते समय इनके बदन के बाल साही के काँटे की तरह खड़े हो जाते हैं, जिससे इनका शरीर ड्योढ़े दुगुने के क़रीब दिखाई पड़ने लगता है। ये अकसर अपने शिकार की गरदन पर ही हमला करते हैं और उसकी घुटकी काटकर उसका ख़ून पी लेते हैं। नेवले केवल ख़ून पीकर अपना पेट भरते हों सो बात नहीं है। ख़ून के साथ ही साथ ये मांस और भेजा भी बड़े स्वाद से खाते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो कीड़े-मकोड़े, चिड़ियाँ, छोटे जानवर और सरीसृप हैं लेकिन इनके अलावा ये अंडे और फल भी ख़ूब खाते हैं। हाँ, ये मुर्दे का मांस ज़रूर नहीं खाते। शिकार करते समय इनको जैसे अपने शिकार के क़द का ध्यान नहीं रहता और ये अपने से चौगुने क़दवाले जानवरों पर भी हमला कर बैठते हैं।

नेवले के बारे में यह मशहूर है कि इस पर साँप के ज़हर का असर नहीं होता और यह साँप के टुकड़े टुकड़े करके, उसे फिर जोड़ देता है। लेकिन इस बात में सत्यता कुछ भी नहीं है। असलियत इसमें केवल इतनी ही है कि यह साँप के हमला करने से पहले ही बड़ी फुरती से उसकी गरदन पर हमला करके उसे काट डालता है। इसको ज़हरीले और मामूली साँपों की पहचान सी होती है और जहाँ ये बिना ज़हर के साँपों को परेशान करके और खेला खेलाकर मारते हैं वहीं ज़हरीले साँपों से बहुत सतर्क रहकर उनके मारने में ज़रा भी देर नहीं करते।

नेवला हमारे लिए बहुत उपयोगी जानवर है क्योंकि जहाँ

यह घर के चूहों का शिकार करके उनकी संख्या घटाता है वहीं इससे हम लोगों के लिए साँपों का ख़तरा भी बहुत कम हो जाता है।

१८—लकड़बघा

The Striped Hyæna—Hyæna striata

लकड़बघे को कहीं कहीं 'हड़हा' भी कहते हैं। यह नाम इसे शायद इसकी हाड़ चबाने की आदत के कारण मिला है। लकड़बघा

लकड़बधा
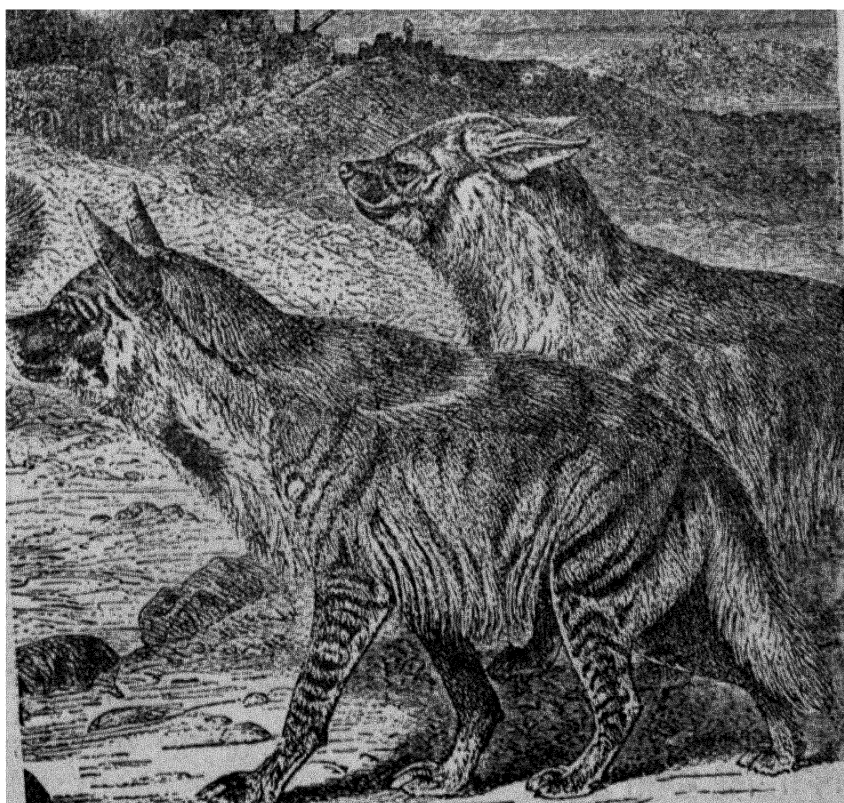
हमारे देश का बहुत ही परिचित जानवर है जो हमारे देश के प्रायः सभी जंगलों में पाया जाता है।

इसके आगे का हिस्सा जितना तगड़ा और भारी होता है, पिछला हिस्सा उतना ही कमजोर और दुबला-पतला रहता है। इसमें और अन्य मांसभक्षी जीवों में एक खास भेद यह भी होता है कि इसके पंजों में केवल चार ही अँगुलियाँ होती हैं।

लकड़बघा क़रीब ३॥ फ़ुट लम्बा जानवर है जिसकी शकल-सूरत बिल्ली से ज़्यादा कुत्ते से मिलती-जुलती होती है। इसकी दुम क़रीब १॥ फ़ुट लम्बी होती है, जिस पर काफ़ी बाल रहते हैं। इसकी गरदन और पीठ पर भी काफ़ी बड़े बाल रहते हैं और बिल्लियों की तरह इनकी मूँछ भी काफ़ी बड़ी होती है।

लकड़बघे के अगले पैर पिछले पैरों से काफ़ी बड़े होते हैं, जिससे इसका पिछला हिस्सा नीचे की ओर दबा सा रहता है। इसकी ज़बान बिल्लियों की तरह खुरदुरी, आँखें काली और खोपड़ी कुछ छोटी होती है, जिस पर बीच में रीढ़ सा उभार रहता है। सारे बदन का रंग हलका पिलछौंह राख के समान रहता है, जिस पर खड़ी खड़ी गाढ़ी, भूरी या कलछौंह धारियाँ पड़ी रहती हैं।

यह बदसूरत जानवर, भयानक ज़रूर होता है लेकिन होता है बहुत ही डरपोक। यह प्रायः मुर्दा जानवरों से ही अपना पेट भर लेता है और अकसर गाँवों में आकर कुत्तों को पकड़ ले जाता है। पालतू चिड़ियों और जानवरों को इससे बहुत खतरा रहता है। यही नहीं, यह अकसर आदमियों के छोटे बच्चों को भी उठा ले जाता है। इसको स्वयं शिकार करना जैसे पसन्द नहीं है—और शिकार से ज़्यादा यह दूसरे जानवरों द्वारा मारे गये शिकार से अपना पेट भरता है।

इसे पशुओं का गिद्ध या मनुष्यों का मेहतर कहें तो बेजा न होगा। हम इसकी कायरता, बदसूरती और घिनौनी आदत से

भले ही इसको घृणा की दृष्टि से देखें लेकिन जंगल की सफ़ाई का जो काम प्रकृति ने इसे सौंपा है, उसमें हम इसे बहुत ही मुस्तैद पाते हैं।

१९—भेड़िया

The Indian Wolf—Canis pallipes

भेड़िया खुले मैदानों में रहनेवाला जीव है जिसे घने जंगल पसन्द नहीं हैं। हमारे देश में भेड़िये हिमालय की तराई से, दक्षिण की ओर सारे देश में फैले हुए हैं। विन्ध्याचल पर्वत में भी ये खुले पठार या मैदान ही में ज्यादातर दिखाई देते हैं। हिमालय इनसे एकदम खाली ही है।
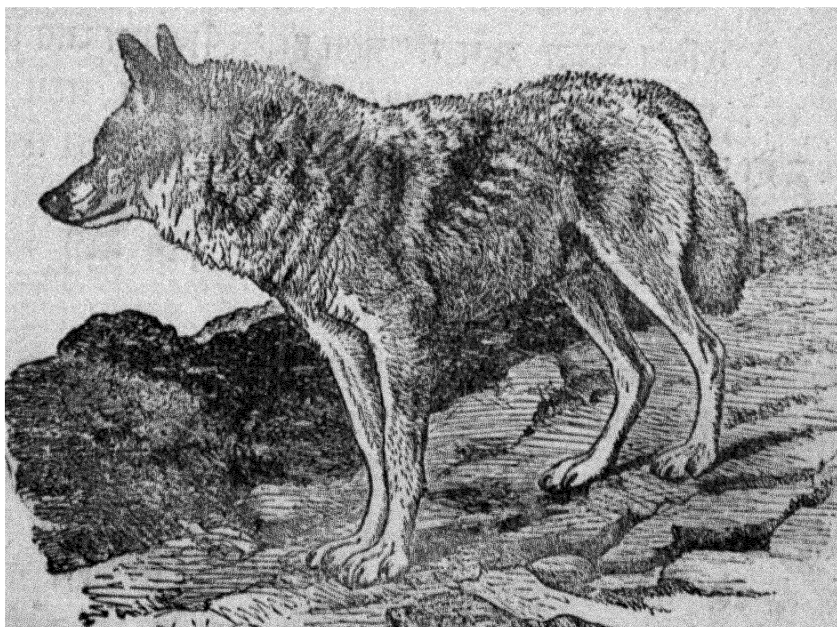
भेड़िया

भेड़िये को 'बीग' या 'बिगवा' भी कहते हैं। कहीं कहीं ये

'गुर्ग' या 'गुरगा' के नाम से भी पुकारे जाते हैं। यह हमारे यहाँ के प्रसिद्ध मांसभोजी जानवरों में से एक है, जो अपनी चालाकी और गोलबन्दी के लिए प्रसिद्ध है।

भेड़ियों की लम्बाई लगभग तीन फ़ुट होती है। इसके अलावा इनकी १॥ फ़ुट लम्बी दुम भी रहती है। इनका रंग राखी भूरा होता है, जिसमें कभी कभी कुछ ललाई भी मिली रहती है। पीठ के ऊपर का रंग स्याही मायल रहता है और निचला हिस्सा गन्दा सफ़ेद रहता है। इनके बच्चे कलछौंह भूरे रंग के होते हैं। उनके सीने पर एक सफ़ेद चित्ता रहता है जो महीने डेढ़ महीने पर ग़ायब हो जाता है।

भेड़िये वैसे तो जोड़े में रहनेवाले जानवर हैं लेकिन कभी कभी ये ७-८ का गोल बनाकर भी रहने लगते हैं। ये बहुत चालाक जानवर हैं लेकिन अकेले रहने पर बहुत ही डरपोक बन जाते हैं। भूखे रहने पर या गरोह के साथ रहने पर भेड़िये बहुत ही ख़ूँख़ार हो जाते हैं। विदेशों में तो इनके गरोहों के अनेकों क़िस्से मशहूर हैं। हमारे देश में भी युक्त-प्रान्त और मध्य-प्रान्त के कुछ हिस्सों में इनके गरोह पाये जाते हैं, जो कभी कभी बहुत ज्यादा उपद्रव करते हैं।

भेड़िये छल और चोरी में बहुत माहिर होते हैं और हमेशा अपने शिकार को धोखा देकर मारते हैं। इनमें बहादुरी नहीं होती। हाँ, चालाकी और तरकीबें इन्हें ख़ूब आती हैं। अगर किसी बड़े शिकार को ये अकेले या दो-चार मिलकर नहीं मार पाते तो उसे घेर कर ऐसी जगह फँसा ले जाते हैं जहाँ पहले से कुछ भेड़िये छिपे रहते हैं। इसी तरह जब ये भेड़-बकरियों के झुण्ड पर आक्रमण करते हैं, तो उनमें से कुछ तो कुत्तों से लड़कर उन्हें उसी लड़ाई में उलझाये रहते हैं और कुछ भेड़ों को उठा ले जाते हैं।

भेड़ियों की मुख्य खूराक मांस है, जिसमें हर किस्म की चिड़ियों और जानवरों को शामिल किया जा सकता है। वैसे ये खरगोश, लोमड़ी, भेड़-बकरी और हिरनों को मार लेते हैं लेकिन भूखे रहने पर चार-पाँच भेड़िये मिलकर गाय-बैल पर भी हमला कर देते हैं। कभी कभी ये आदमियों पर भी हमला कर बैठते हैं और एक बार आदमखोर हो जाने पर आदमियों पर हमला किया करते हैं। आदमखोर भेड़िया आदमखोर शेर या चीते से भी ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि इसमें मक्कारी और चालाकी उन दोनों से कहीं ज्यादा होती है।

भेड़िया की मादा अक्टूबर से दिसम्बर तक किसी मांद, बिल या गुफा में तीन से आठ तक बच्चे देती है। इनके बच्चों की आँखें कुत्ता के पिल्लों की तरह शुरू में बन्द रहती हैं। ये बच्चे बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं।

भेड़िये के बारे में हमारे यहाँ यह प्रसिद्ध है कि ये अकसर आदमियों के बच्चों को उठा ले जाते हैं और उन्हें अपनी माँद में पालते हैं। इस प्रकार के बच्चे भी अकसर पाये गये हैं लेकिन इनके बारे में अभी तक कुछ ठीक पता नहीं चल सका है। इस प्रकार के बच्चे मिले तो जरूर हैं लेकिन उनमें से कोई शायद ज्यादा दिन तक जिन्दा नहीं रह सका। जो बच्चे मिले भी, वे आधे हैवान से थे और बोलना नहीं जानते थे। इससे यह विषय अभी रहस्यपूर्ण ही पड़ा है।

२०—सियार

The Jackal—Canis aureus

सियारों को हम लोगों ने देखा भले ही न हो लेकिन उनके बारे में कोई न कोई कहानी जरूर सुनी होगी। देहातों में तो आज

भी इन्हें देखना कठिन नहीं। एक तो ये काफ़ी तादाद में हमारे देश में फैले हुए हैं दूसरे गाँवों के आस-पास ये इतनी ढिठाई से आ जाते हैं कि इनका जोड़ा हमें अकसर दिखाई पड़ता है।

सियार

सियार हमारे देश में प्राय: सभी स्थानों में पाया जाता है। क्या जंगल, क्या मैदान कोई भी जगह ऐसी नहीं है जहाँ इसकी पहुँच न हो। पहाड़ी स्थानों पर और खुले मैदान में तो ये मिलते ही हैं, आबादियों के आस-पास रहना भी इन्हें बहुत पसंद है। हाँ, हिमालय पर ये ३-४ हज़ार फ़ुट से ज्यादा ऊपर नहीं जाते।

सियार को गीदड़, शृगाल और सीगट भी कहते हैं। इनकी चालाकी और धूर्त्तता की एक नहीं अनेकों कहानियाँ हमारे यहाँ प्रचलित हैं। आबादी के आस-पास रहने के कारण ये इतने ढीठ हो गये हैं कि इन्हें हम कभी कभी बहुत नज़दीक से देख सकते हैं।

सियार का क़द २।। फ़ुट से कुछ बड़ा ही होता है, जिसमें इसकी ८-१० इंच की झबरी दुम शामिल नहीं है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। इनके बदन का रंग भूरापन लिये हलका ललछौंह होता है, जिसके पीठ के हिस्से पर कुछ स्याही रहती है। थूथन, कान और पैर के बाहरी हिस्सों में ललाई का हिस्सा ज्यादा रहता है। नीचे का हिस्सा बहुत हलका यहाँ तक कि कभी कभी सफ़ेद सा दीख पड़ता है। दुम के ऊपर के बाल खैरे होते हैं लेकिन सिरे के बाल धुरकाले ही रहते हैं।

सियार अकसर अकेले या जोड़े में दिखाई पड़ते हैं। इन्हें कभी कभी गरोहों में भी देखा जा सकता है। शाम होते ही इनकी बोली सुनाई पड़ने लगती है। पहले एक सियार बोलता है उसके बाद उसके साथी इतना शोर मचाते हैं कि कभी कभी जी ऊब जाता है। देहात में यह मशहूर है कि सबसे पहले बोलने-वाले सियार के सर पर एक सींग होती है जो "सियारसिंगी" कहलाती है। अगर किसी तरह यह सींग किसी को मिल जावे और इसे वह अपने पास रखे तो उस पर किसी तरह के हथियार का असर नहीं होगा। लेकिन यह केवल कहानी भर है, इसमें सत्यता कुछ भी नहीं है।

सियार रात्रिचर जीव है, जो रात को अकसर अपने भोजन की तलाश में बाहर निकलता है लेकिन इसे हम जाड़ों में दिन को भी देख सकते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है लेकिन ये फल वग़ैरह भी मांस की तरह बड़े स्वाद से खाते हैं। इन्हें लकड़बग्घे की तरह जानवरों का मेहतर कह सकते हैं क्योंकि गाँव और बस्तियों की पालतू चिड़ियाँ और छोटे जानवरों के चुराने के अलावा, ये अपना पेट ज्यादातर मरे हुए जानवरों को खाकर भरते हैं। ये वैसे तो जानवरों का शिकार नहीं करते लेकिन बीमार और रोगी भेड़-बकरियाँ इनके चंगुल में

फँस ही जाती हैं। फलों में इन्हें बेर, फूट, खरबूजे और ककड़ियाँ बहुत पसन्द हैं। इसके अलावा ये भुट्टे और गन्ने भी बड़े मज़े में खाते हैं। दक्षिण भारत और लङ्का में सियार 'कॉफ़ी' के फल बहुत खाते हैं, जिनके समूचे बीज इनकी विष्ठा में मिलते हैं। मज़दूरों से 'कॉफ़ी' के व्यापारी इन बीजों को जमा करा लेते हैं और कहा जाता है कि इन बीजों की 'कॉफ़ी' या क़हवा सबसे उम्दा मानी जाती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि सियार 'कॉफ़ी' के अच्छे अच्छे फलों को ही चुनकर खाते होंगे।

सियार की बोली प्रत्येक ग्राम-निवासी पहचानता है लेकिन वे शेर या तेंदुए को निकट पाकर एक दूसरे प्रकार की बोली बोलते हैं। यह बोली शायद अपने साथियों को खतरे से आगाह करने के लिए बोली जाती है क्योंकि भूखा रहने पर शेर इन पर भी तो हमला कर बैठता है।

कुत्ते और भेड़िये की तरह सियार की मादा भी क़रीब तीन महीने पर बच्चे देती है, जो संख्या में अकसर चार होते हैं। बच्चे देने की जगह कोई माँद, गुफा या बिल होती है, जिसे मादा अपनी सहूलियत के मुताबिक़ पसन्द कर लेती है।

सियार कुत्तों से भी जोड़ा बाँध लेते हैं और हमारे देश के देशी कुत्तों की नस्ल, जहाँ तक पता चल सका है, इन्हीं सियारों से निकली है। अब भी हमें कोई कोई देहाती कुत्ता सियार से बहुत कुछ मिलता-जुलता दीख पड़ता है, जिसका कारण उसकी मा का सियार से जोड़ा बाँधना हो सकता है।

सियार के पागल होकर गाँव के लोगों को काटने के समाचार हम अकसर सुनते हैं। पागल सियार के काटने का असर ठीक पागल कुत्ते जैसा होता है।

२१—सोनहा (ढोल)

The Indian Wild Dog—Cyon dukhunensis

सोनहा वास्तव में जंगली कुत्ते हैं। इन्हें कहीं कहीं 'सोना कुत्ता' भी कहते हैं और किसी किसी स्थान पर ये 'ढोल' के नाम से प्रसिद्ध हैं।
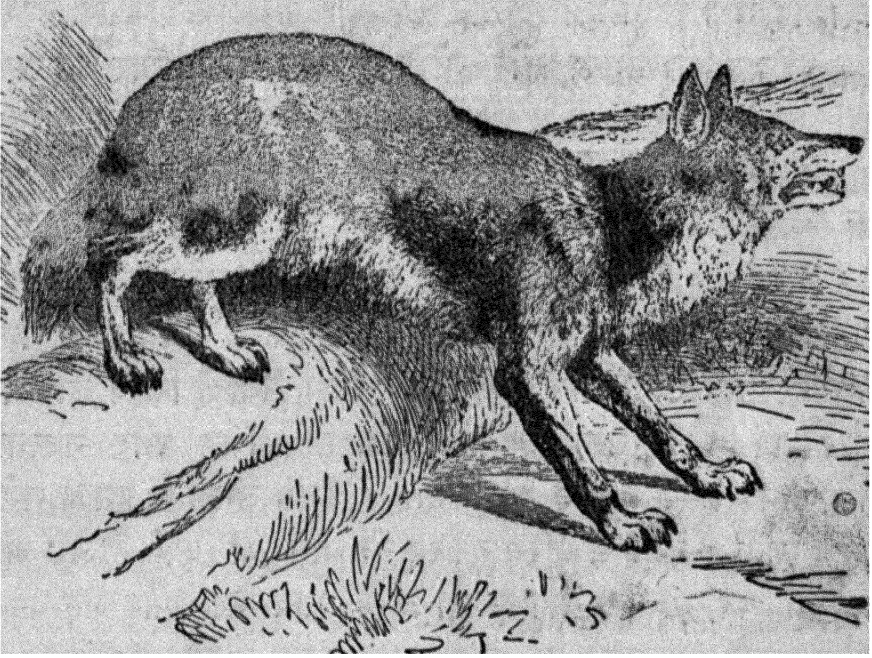
सोनहा

सोनहा हमारे देश में प्रायद्वीप के क़रीब क़रीब सभी जंगलों में पाये जाते हैं लेकिन लंका में इनका ठीक ठीक पता नहीं चलता। इसके अलावा ये सिंध नदी के उत्तरी प्रान्तों में और हिमालय के जंगलों में काश्मीर से आसाम तक फैले हुए हैं। मध्यप्रान्त और उसके दक्षिण के भाग के जंगली कुत्तों में और हिमालय के जंगली कुत्तों की आदत और रंग में थोड़ा सा फ़र्क़ होता है लेकिन ख़ास ख़ास बातें सबकी एक जैसी ही होती हैं।

सोनहा का क़द ३ फ़ुट से कुछ ज्यादा ही रहता है. इसके अलावा उनकी १ फुट से कुछ बड़ी झबरी पूँछ होती है।

इनके ऊपरी हिस्से का रंग ललछौंह होता है जिसमें बादामीपन की मिलावट रहती है। किसी किसी में भूरेपन या सिलेटीपन की झलक भी दिखाई पड़ती है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है और दुम का सिरा काला रहता है। बच्चों का सारा शरीर कलछौंह भूरा रहता है।

सोनहा को भेड़िया और गीदड़ के बीच का जानवर कह सकते हैं। जहाँ गोलबन्दी में ये भेड़ियों से कम नहीं होते वहीं चालाकी और छल में इन्हें सियार से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं कहा जा सकता।

ये दिन रात दोनों वक्त घूमते हुए देखे जा सकते हैं और प्राय: १५-२० के झुण्ड में रहते हैं। शिकार करते समय इनमें गजब का एका रहता है। जिसका नतीजा यह होता है कि ये छोटे-मोटे हिरनों को ही नहीं बल्कि बड़े बड़े सुअरों, साँभर और नीलगाय जैसे जानवरों को घेरकर मार लेते हैं। जिस जंगल में इनका गरोह पहुँच जाता है वहाँ से हिरन वग़ैरह तो भाग ही जाते हैं शेर और तेन्दुओं का भी पता नहीं चलता। ये गाय-बैल और भेड़-बकरी आदि पालतू जानवरों पर कम हमला करते हैं और आदमियों पर इनके आक्रमण का कोई हाल अभी तक तो मिला नहीं।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है लेकिन ये फल-फूल और शाकाहार भी कर लेते हैं। ये ज्यादातर तो शिकार मारकर ही अपना पेट भरते हैं लेकिन इन्हें कभी कभी दूसरे के मारे हुए जानवरों को भी खाते देखा गया है।

सोनहा के बारे में यह क़िस्सा मशहूर है कि ये शेर को घेर-कर मार लेते हैं और इसी कारण इनको देखते ही शेर जंगल छोड़-कर भाग जाते हैं। इसके बारे में अभी तक कोई विश्वस्त उदाहरण

नहीं मिला है लेकिन इतना तो तय है कि इनमें और शेर में शिकार के मामले में अकसर झगड़ा हो जाता है। इनमें से कुछ अपनी जान से हाथ धोकर भी शिकार को हाथ से नहीं जाने देते और शेर को भाग जाना पड़ता है। रही शेर के जंगल छोड़ने की बात, तो वह तो हिरन वग़ैरह के जंगल से भाग जाने पर, उसके लिए यों भी मजबूरन जंगल छोड़ना पड़ता होगा।

सोनहा के शिकार के बारे में भी एक रोचक कथा है जिसे हम कपोल कल्पित बात कहकर टाल नहीं सकते। उसमें सत्यता बहुत है। कहते हैं सोनहा जब किसी शिकार को घेरते हैं, तो पहले से रास्ते पर की कुछ झाड़ियों पर पेशाब कर देते हैं और जब उधर से जानवर भागता है, तो पत्तियों पर पड़ी हुई पेशाब उसकी आँख में पड़ जाती है और वह मारे दर्द के अंधा सा हो जाता है। इनकी पेशाब में इतना तेज़ खारापन रहता है कि आँखों में पड़ने से वे कुछ देर के लिए अंधी सी हो जाती हैं। इसका फ़ायदा उठाकर सोनहा का झुण्ड शिकार को आनन-फानन मार डालता है।

कुछ लोगों का यह भी ख़्याल है कि सोनहा झाड़ियों में नहीं बल्कि अपनी दुम पर पेशाब कर लेते हैं और जिस जानवर का शिकार करना होता है उसकी आँख में छिड़ककर उसे कुछ देर के लिए अन्धा बना देते हैं।

सोनहा सियार की तरह शाम को शोर नहीं मचाते। कुछ लोगों का तो ख़्याल है कि ये कभी बोलते ही नहीं। ख़ैर, जो भी हो इतना तो तय है कि ये अगर बोलते भी हैं तो इतना कम कि इनकी बोली कभी सुनाई नहीं पड़ती।

सोनहा का पालतू करना असंभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। इसकी मादा जनवरी से मार्च के बीच किसी खोह, गुफा या बिल में ५-६ बच्चे देती है।

२२—कुत्ता

The Dog—Canis domestica

घरेलू कुत्ते का यहाँ परिचय देना, उसके साथ ज्यादती करना होगा क्योंकि उसके बारे में हम लोग बहुत कुछ जानते ही हैं। हाँ, उनके बारे में कुछ आश्चर्यजनक बातों को यहाँ लिखना बेमौक़ा नहीं कहा जावेगा।

कुत्ता

घरेलू कुत्तों की क़रीब दो सौ जातियाँ संसार में पाई जाती हैं लेकिन हमारे देश में तो उन्हीं कुत्तों की संख्या अधिक है जिन्हें 'देशी कुत्ता' कहकर पुकारा जाता है। ये कुत्ते सारे देश के क़रीब क़रीब सब बस्तियों में मिल सकते हैं और सारे पशुसमाज में, इनसे अधिक मनुष्यों का कोई दूसरा साथी नहीं मिल सकता। इनमें से कुछ तो किसी के पाले हुए होते हैं और कुछ यों ही बेमालिक घूमा करते हैं। ये इधर-उधर घूम फिरकर अपना पेट भर लेते हैं।

इन कुत्तों के क़द और रंग में तो फ़र्क़ होता ही है, इनकी शकल-सूरत भी अकसर मुख़्तलिफ़ होती है। इनके क़द के मामले में इनमें ज़्यादा भेद नहीं रहता। ये सियारों से कुछ ही छोटे-बड़े होते हैं लेकिन इनके सियारों की तरह न तो बड़े बाल होते हैं और न झबरी पूँछ। इनके बदन के बाल बहुत छोटे छोटे होते हैं जैसे किसी ने मशीन चला दी हो। कुत्ते कुतियों से क़द में कुछ बड़े होते हैं।

इनके रंग के मामले में एक राय नहीं हो सकती। कोई ललछौंह, भूरे या बादामी होते हैं तो कोई काले। किसी का रंग सफ़ेद होता है तो किसी का चितकबरा। बहरहाल इनका शरीर या तो इन्हीं रंगों में से किसी एक रंग का होता है या इनके ऊपर इन्हीं रंगों के चित्ते पड़े रहते हैं। इन चित्तों का न तो कोई सिलसिला रहता है और न कोई आकार।

इन कुत्तों की शकल-सूरत भी एक सी नहीं होती। उसमें भी कुछ भेद रहता है। किसी का मुँह लमछौंह होता है तो किसी का गोलाकार—किसी का शरीर गठीला रहता है तो कोई देखने से ही मरियल सा जान पड़ता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि हमारे देशी कुत्ते सियार के निकट-सम्बन्धी हैं और उसी की नस्ल के हैं। इन्हें इस पालतू अवस्था में भी सियारों से जोड़ा बाँधते देखा गया है और आज भी सैकड़ों कुत्ते ऐसे मिल जावेंगे, जिनकी शकल-सूरत बहुत कुछ सियारों से मिलती-जुलती होती है।

पहले तो सभी कुत्ते जंगली थे लेकिन अब इनकी इतनी बड़ी संख्या पालतू होकर हमारे साथ रहने लगी है कि इनके पूर्वजों की संख्या उसके सामने ज़्यादा नहीं ठहरेगी। इतना होने पर भी यदि कुत्ते आज मनुष्यों से कुछ काल के लिए अलग कर दिये जावें तो वे फिर जंगली हो जाते हैं। तब उनमें और परिवर्तनों के अलावा एक परिवर्तन यह भी हो जाता है कि वे कुत्तों

की तरह भूँकना भूल जाते हैं। फिर वे सियारों या भेड़ियों की तरह चिल्ला भले ही लें लेकिन अपनी स्वाभाविक भूँकने की आदत को जैसे वे भुला ही देते हैं।

घरेलू कुत्ते, जंगली कुत्तों से, सियारों से या भेड़ियों से धीरे धीरे पालतू ज़रूर किये गये लेकिन वे अपनी एक आदत को पालतू हो जाने पर भी नहीं छोड़ सके। जंगली अवस्था में जब वे कहीं बैठते थे तो बैठने से पहले वे अपने चारों ओर घूमकर पहले घास-पात को दबा लेते थे। आज सैकड़ों वर्ष से पालतू हो जाने पर भी, जब घरेलू कुत्ते क़ालीन बिछे हुए कमरों तक में बैठने लगते हैं तो अपने चारों ओर प्राय: चक्कर लगा लेते हैं।

कुत्तों की स्वामिभक्ति, उनका प्रेम और उनकी बुद्धिमत्ता की एक नहीं अनेकों कथाएँ हैं। मनुष्यों के साथ एक युग से रहते रहते इन्होंने अपना इतना विकास कर लिया है कि कभी कभी इनके कार्यों को देखकर बहुत आश्चर्य होता है। अपने मालिक की वफ़ादरी में ये अपनी जान भले ही गँवा दें लेकिन कभी भागने का नाम नहीं लेते। प्रेम और मुहब्बत तो इनमें इस क़दर होती है कि मालिक के मरने पर अकसर देखा गया है कि पालतू कुत्तों ने खाना-पीना छोड़ दिया और मर गये।

कुत्तों के गाड़ी खींचने की, पीठ पर चंदे का बकस बँधवाकर चन्दा जमा कर लाने की, और लड़ाई के मैदानों में डाकिए का काम करने की कथाएँ हम सब सुन चुके होंगे लेकिन उनके संगीत-प्रेम का हाल शायद कम लोगों ने सुना होगा। कुत्ते संगीत के बड़े प्रेमी होते हैं और अकसर हम लोगों ने भी देखा होगा कि जब मन्दिरों में घंटा-घड़ियाल बजने लगते हैं, तो पास-पड़ोस के कुत्ते उसी के साथ एक प्रकार की बोली बोलते हैं। उनकी इस बोली को हम उनका रोना कहते हैं क्योंकि यह उनके भूँकने से बिलकुल जुदा होती है। पर वास्तव में यह कुत्तों का रोना नहीं है। पशु-शास्त्र के विद्वानों

ने बड़ी खोज और अनुसंधान के बाद यह पता लगाया है कि कुत्तों में संगीत-प्रेम की एक अद्भुत प्रेरणा होती है। उनमें से कुछ अकसर संगीत के अवसर पर उस स्वर में अपना स्वर मिलाने का उद्योग करते हैं।

हमारे देश में, अब विदेशों से इतने ज्यादा कुत्ते आ गये हैं कि इनके मेल से शहरों में एक नहीं अनेकों क़िस्म के दोग़ली जाति के कुत्ते देखने में आते हैं लेकिन वैसे ख़ास ख़ास प्रसिद्ध जातियों के कुत्ते जिनका बाक़ायदा वंश-वृत्त रहता है अब भी रईसों के शौक़ के साधन बने हुए हैं।

२३—लोमड़ी

The Indian Fox—Vulpes bengalensis

भेड़िया यदि अपने छल-कपट और सियार अगर अपनी धूर्त्तता के लिए मशहूर है, तो लोमड़ी भी अपनी चालाकी में बेजोड़ कही जा सकती है। इसकी चालाकी के बारे में सैकड़ों कहानियाँ हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं। जिनमें सत्यता न होने पर भी जहाँ तक लोमड़ियों की चतुराई का सवाल है, उसे मानने में कोई भी इनकार नहीं कर सकता।

लोमड़ी मांसभक्षी-वर्ग की ही नहीं बल्कि सारे पशु-समाज की सबसे चालाक प्राणी कही जा सकती है। शिकारी कुत्तों को, भागते भागते, कतरी काटकर, चकमा देना और जंगली जानवरों की आँख में धूल झोंकना तो इसके बायें हाथ का खेल है। इसे देहात में लोमड़ी न कहकर 'लोखरी' कहा जाता है।

लोमड़ी की कई जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध लोमड़ी, हमारे यहाँ प्रायः सभी स्थानों पर दिखाई पड़ती है। यह हिमालय की तराई से धुर-दक्षिण तक फैली हुई

है लेकिन पश्चिम की ओर यह सिंध और पंजाब के आगे फिर नहीं मिलती। पूरब की ओर यह आसाम तक जाती तो है लेकिन वहाँ इसे बहुत कम देखा जा सकता है। इसे घने जंगल पसंद नहीं हैं लेकिन खुले मैदानों, तितरे-बितरे जंगलों और खेतों में इसे देखना कुछ मुश्किल नहीं।

लोमड़ी
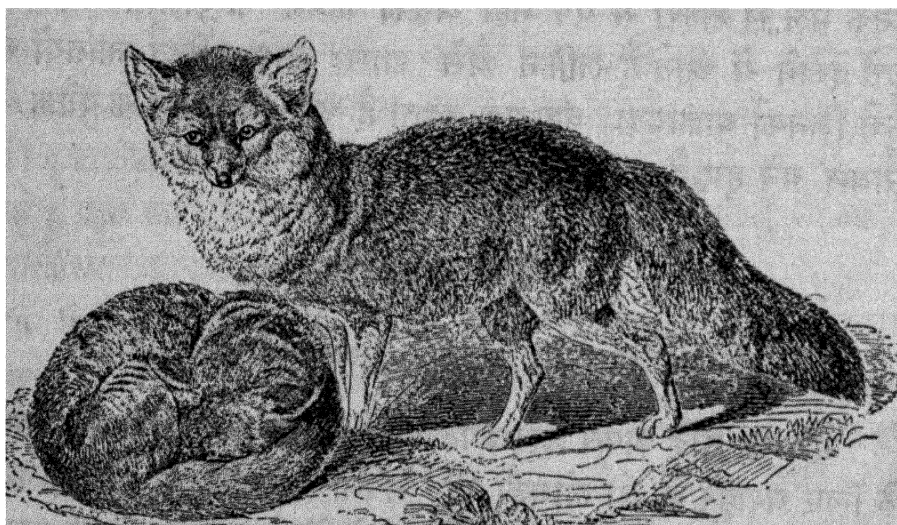
लोमड़ी का क़द १॥ फ़ुट से कुछ बड़ा ही होता है लेकिन इसकी झबरी दुम १। फ़ुट से कम नहीं होती। मादा नर से कुछ छोटी होती है।

इसके रंग के बारे में कुछ कहना बड़ा मुश्किल है क्योंकि अलग अलग जगह की लोमड़ियों के रंग में कुछ न कुछ भेद रहता ही है। वैसे साधारणतया इनके ऊपरी हिस्से का रंग ललछौंह सिलेटी रहता है, जिसमें से कुछ में ललाई ज़्यादा रहती है, तो कुछ में राखीपन का हिस्सा अधिक रहता है। बग़ल का हिस्सा भी, होता तो है क़रीब क़रीब उसी रंग का, लेकिन उसमें सिलेटीपन ज़्यादा

रहता है। नीचे का हिस्सा सफ़ेदीमायल होता है। उसमें गले के पास का रंग तो एकदम सफ़ेद रहता है लेकिन सीने और पेट की सफ़ेदी में कुछ पीलेपन की मिलावट रहती है। उसके आगे के हिस्से, में कुछ हलकी ललाई भी मिली रहती है। दुम का रंग सिलेटी होता है, जिसका सिरा काला रहता है।

लोमड़ी को बस्ती के आसपास रहना जैसे ज्यादा पसंद है। यह आदमियों से काफ़ी ढीठ हो गई है और इसी कारण गाँव के पालतू पशु-पक्षी इसके शिकार हो जाते हैं। जाड़ों में इसकी भद्दी बोली अकसर सुनाई पड़ती है, जैसे कोई ज़ोर से हँस रहा हो।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है लेकिन यह फल-फूल और जड़ें भी खा लेती है। फलों में इसे तरबूज़ और बेर ज्यादा पसंद हैं लेकिन माँस यह हर क़िस्म का खा लेती है। यह चिड़ियों को जैसे कम पसंद करती है लेकिन इसे छोटे-मोटे जानवर और सरीसृप बहुत पसन्द हैं। यह कीड़े-पतिंगे और दीमक भी बड़े मज़े में खाती है और छिपकली तो शायद इसको सबसे ज्यादा ज़ायकेदार जान पड़ती है।

लोमड़ी की चालाकी के एक नहीं अनेकों उदाहरण मिले हैं जो स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। यह बिल में रहना तो पसन्द करती है लेकिन बिल खोदने का कष्ट उठाना नहीं चाहती। नतीजा यह होता है कि यह अकसर बिज्जू आदि जानवरों के बिल पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लेती है और उसको कुछ बड़ी और कई मुँहवाली बनाकर, उसी में रहने लगती है। बिल के मुख्य द्वार पर अगर किसी के पैर के निशान इसे दिखाई पड़ गये तो फिर यह उसे छोड़कर फ़ौरन ही अपने बच्चों को दूसरी जगह हटा ले जाती है।

लोमड़ी की चालाकी की कोई हद नहीं है। कभी कभी यह आक्रमणकारियों को सर पर देखकर इस प्रकार दम साध कर

ज़मीन पर पड़ जाती है कि फिर ठोकर मारने पर और इधर-उधर घसीटी जाने पर भी ऐसी बनी रहती है कि जैसे मुर्दा हो।

इसके जोड़ा बाँधने का समय नवम्बर से जनवरी तक रहता है। मादा अप्रैल के आस-पास चार बच्चे देती है। ये बच्चे काफ़ी बड़े हो जाने तक अपने बिल में ही रहते हैं।

२४—चितराला

The Indian Marten—Mustela flavigula

चितराला रात्रिचर होने पर भी हमारा बहुत ही परिचित जानवर है। वैसे तो यह हिमालय के ८,००० फ़ुट ऊँचे प्रान्तों में रहनेवाला जीव है और इसका निवास काश्मीर से आसाम तक कहा जा सकता है लेकिन यह कमायूँ, गढ़वाल और नैपाल के आस-पास के प्रान्तों में काफ़ी संख्या में पाया जाता है। यह इन जगहों के अलावा नीलगिरि पर भी अकसर दिखाई पड़ता है लेकिन वहाँ इसकी बहुत ही थोड़ी संख्या रहती है।
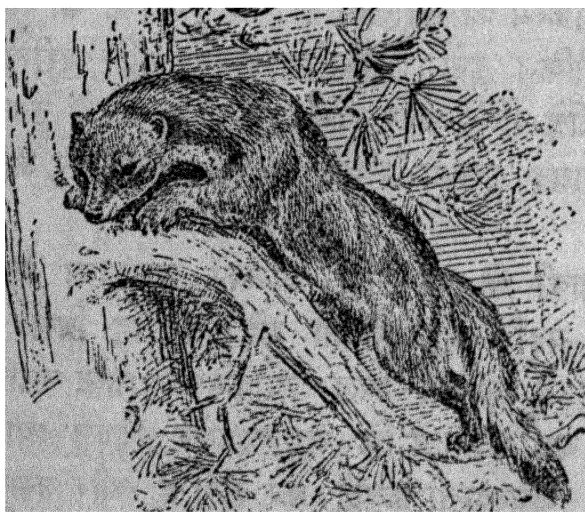
चितराला

चितराला क़रीब दो फ़ुट लम्बा जानवर है जिसकी क़रीब इतनी ही लम्बी दुम होती है। इसका सर से लेकर कान के नीचे तक का

हिस्सा चमकीला काला या गाढ़-कत्थई रंग का होता है। इसका चेहरा, गुद्दी, दुम और चारों पैर भी इसी रंग के होते हैं। पीठ पर का रंग हलका भूरा या सफ़ेदी मायल भूरा होता है और गले का ऊपरी हिस्सा एकदम सफ़ेद रहता है। सीने का रंग पीला या नारंगी होता है और उसके बाद का नीचे का सारा हिस्सा हलके भूरे रंग का रहता है। इसके बदन के बाल बड़े और काफ़ी मुलायम रहते हैं।

चितराला वैसे तो रात में निकलनेवाले जीव हैं लेकिन इन्हें अक़सर हम पहाड़ी जंगलों में पेड़ों पर या झाड़ियों में शिकार करते देख सकते हैं। ये अकसर जाड़े में ५-७ के गरोह में शिकार करने के लिए निकलते हैं और ज़रा सी आहट पाते ही पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। पेड़ पर चढ़ने में ये बहुत ही उस्ताद होते हैं।

चितराला की बोली से भी कभी कभी उसकी उपस्थिति का पता चल जाता है क्योंकि यह इधर-उधर घूमते समय कुछ न कुछ चख़चख़ करता ही रहता है। हाँ, किसी की आहट पाकर सतर्क हो जाने पर या छेड़े जाने पर यह चीख़ मार कर भाग खड़ा होता है।

इसका मुख्य भोजन चिड़ियाँ, उनके अंडे, चूहे, ख़रगोश और इसी तरह के छोटे-छोटे जानवर और सरीसृप हैं। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़े भी बड़े मज़े में खाता है।

चितराला बहुत आसानी से पालतू हो जानेवाला जानवर है लेकिन इसके बदन से एक प्रकार की बू सी आती रहती है।

इसकी एक और जाति भी होती है जिसे चीड़ का चितराला (Pine Marten) कहते हैं। इन दोनों की शकल तो आपस में बहुत-कुछ मिलती-जुलती होती है लेकिन रंग में दोनों के फ़र्क रहता है। इसका रंग, गाढ़-कत्थई न होकर भूरा रहता है लेकिन गला पीला और ठुड्डी सफ़ेद ही होती है। क़द और आदतें यद्यपि दोनों चितरालों की एक जैसी ही होती है लेकिन चीड़ का

चितराला हिमालय के और ज़्यादा ऊँचे प्रान्तों का रहनेवाला है जो चितराले की पहुँच के बाहर है।

२५—कथियान्याल

The yellow bellied weasel—Putorius cathia

कथियान्याल हमारे देश में बहुत कम पाये जाते हैं इससे इन्हें अगर हम लोगों ने न देखा हो तो कोई ताज्जुब की बात नहीं। ये ज़्यादातर नैपाल और भूटान के जंगलों के निवासी हैं जहाँ इनके छोटे क़द और इनकी रात में निकलने की आदत के कारण अकसर लोग इनकी ओर ध्यान ही नहीं देते।
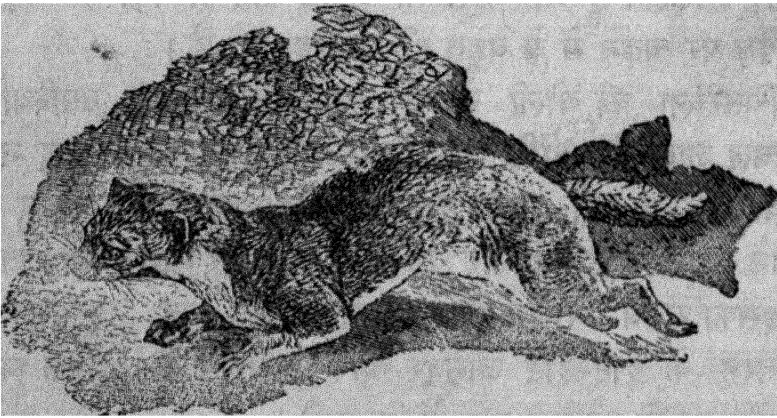
कथियान्याल

कथियान्याल लगभग १० इंच का छोटा सा जानवर है जिसकी दुम ४-५ इंच से ज़्यादा लम्बी नहीं होती। इसके बदन के बाल कुल एक जैसे होते हैं नर मादा से नाप में कुछ बड़ा होता है।

यह कत्थई रंग का जानवर है जिसकी पीठ, चेहरा और सर पर का ऊपरी हिस्सा तो गाढ़ कत्थई रहता है लेकिन नीचे का कुल हिस्सा यहाँ तक कि पैरों का भीतरी हिस्सा भी चटक पीले रंग का होता है। इसकी ठुड्डी और ऊपरी होंठ सफ़ेदी मायल होते हैं लेकिन

दुम जो इसके क़द को देखते हुए छोटी ही कही जावेगी, गाढ़ कत्थई रंग की ही रहती है।

हमारे देश में कथियान्याल हिमालय के सिवा और कहीं नहीं पाया जाता और वहाँ भी इसका निवास मसूरी से आसाम तक ३,००० से ८,००० फ़ुट की उँचाई तक के प्रान्तों को ही माना जाता है।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो चूहे और चिड़ियाँ वग़ैरह हैं लेकिन अकसर ये अपने से चौगुने जानवरों पर हमला कर देते हैं। अपने शिकार की गर्दन को ये अपने तेज़ दाँतों से बड़ी मज़बूती से पकड़ लेते हैं और उसे तब तक नहीं छोड़ते जब तक उनका इतना ख़ून नहीं निकल जाता कि वे मर जावें।

कथियान्याल के बारे में हम अभी ज्यादा नहीं जान सके हैं। इनके शिकार का तरीक़ा, इनके जंगल में रहने का ढंग और जोड़ा बाँधने आदि के बारे में कुछ ज्यादा पता अभी तक नहीं लग सका है। जो कुछ थोड़ी बहुत जानकारी इनके बारे में हमें हो सकी है वह नैपाल के उन पालतू जीवों से, जिनसे वहाँ बिल्ली की तरह घरों से चूहों को खदेड़ने का काम लिया जाता है।

नैपाल में लोग इन्हें अच्छे दामों पर ख़रीद कर पालते हैं क्योंकि चूहे इनसे बिल्ली से ज्यादा डरते हैं। इनकी गिल्टियों से एक प्रकार का पीला पीला तरल पदार्थ निकलता रहता है जिसकी तेज़ बू से चूहों को इनकी मौजूदगी का पता चल जाता है और वे घर छोड़कर भाग जाते हैं।

२६–बिज्जू

The Indian Ratel—Mellivora indica

बिज्जू हमारे देश के उन जानवरों में से है जो काफ़ी संख्या में हमारे यहाँ फैले हुए हैं। वैसे तो ये हमारे देश के पहाड़ी स्थानों

में काफ़ी बड़ी तादाद में फैले हुए हैं लेकिन संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और इनके आसपास के जंगलों में इनकी संख्या कम नहीं है।

शरीर के दुहरे रंग के कारण इनको बहुत आसानी से पहचाना जा सकता है। क्योंकि इनके शरीर का निचला हिस्सा तो काला रहता है लेकिन ऊपर का सारा हिस्सा सिलेटी या ऊदी रंग का होता है। देखने में ये ऐसे लगते हैं जैसे किसी ने इन्हें ऊपर से सिलेटी रंग की 'गरदनी' पहना दी है। जैसे जाड़ों में कुत्तों को पहना दी जाती है।

बिज्जू
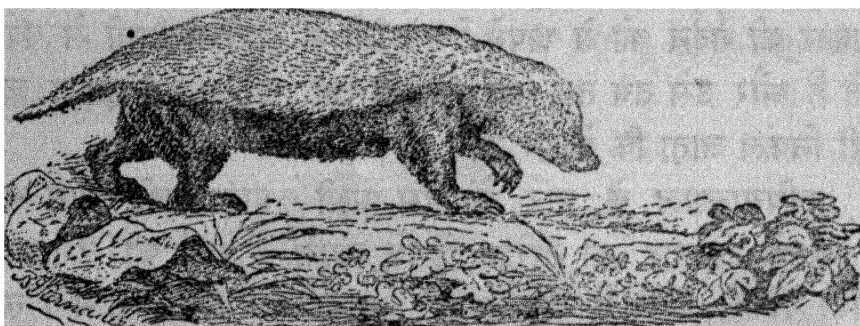
बिज्जू क़द में ढाई फ़ुट से कुछ बड़ा ही होता है। उसकी दुम सिर्फ़ ५-६ इंच लम्बी रहती है। इसकी पीठ का रंग हलका सिलेटी या राखी रहता है लेकिन नीचे का हिस्सा और पैर धुर काले होते हैं। पीठ पर कुछ सफ़ेद लम्बे और कड़े बाल होते हैं। इसके ऊपर का राखी हिस्सा और नीचे का काला हिस्सा, दोनों बग़ल जहाँ मिलते हैं वह साफ़ ज़ाहिर होता रहता है। इसका सर और दुम पीठ की तरह राखी रंग की होती है लेकिन दुम का सिरा काला रहता है।

बिज्जू के ऊपर सबसे बड़ा दोष यह लगाया जाता है कि यह क़ब्रों को अपने मज़बूत पंजे से खोद डालता है। देहातों में तो यहाँ तक मशहूर है कि यह ताज़ी क़ब्र खोदकर मुरदे के पैर की कोई

ऐसी नस अपने दाँतों से पकड़कर दबाता है कि मुर्दा खड़ा हो जाता है और यह उसे जहाँ चाहता है इसी तरह ले जाता है। पर यह सब कपोलकल्पित बातें हैं। अभी तक तो यही नहीं साबित हो सका कि यह वास्तव में क़ब्र खोदता भी है या नहीं।

वैसे तो इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, चिड़ियाँ और छोटे जानवर हैं लेकिन मांस खाने की इच्छा इसमें इतनी बढ़ गई है कि यह क़ब्र खोद डालता है इसका कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। हाँ, शहद इसे ज़रूर बहुत पसन्द है और यह फल और जड़ें भी बड़े स्वाद से खाता है।

२७—भालूसुअर

The Hog-Badger—Arctonyx collaris

भालूसुअर के नाम के बारे में लोगों की दो राय हैं। कुछ इन्हें भालूसुअर कहते हैं क्योंकि इनकी शकल भालू और सुअर से मिलती-जुलती होती है और कुछ इन्हें बालूसुअर कहते हैं क्योंकि ये ज्यादातर नदी किनारे के रेतीले टीलों में रहते हैं। यहाँ भालूसुअर के नाम से ही इनका परिचय दिया जा रहा है क्योंकि इनका यही नाम ज्यादा प्रचलित है।

भालूसुअर हमारे देश में वैसे तो कभी कभी मध्यप्रान्त के जंगलों में भी दिखाई पड़ जाते हैं लेकिन इनके रहने का मुख्य स्थान हिमालय ही कहा जा सकता है। वहाँ ये नैपाल की पूर्वी तराई के आस-पास के पहाड़ी प्रान्तों में काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं। मध्य-प्रान्त में इन्हें 'चिरिकभाल' भी कहा जाता है।

भालूसुअर का क़द थूथन से दुम की जड़ तक क़रीब २५-३० इंच का होता है। इसके अलावा इसकी ७-८ इंच लम्बी दुम रहती है। ऊँचाई में यह १२-१४ इंच से ज्यादा नहीं देखा गया।

भालूसुअर के सारे बदन का रंग गंदा सिलेटी होता है लेकिन इसकी पीठ पर कुछ ज्यादा स्याही रहती है। कुछ भालूसुअर ऐसे भी मिले हैं जिनके बदन का रंग कलछौंह कत्थई था। इसके बदन के बाल छोटे और कड़े होते हैं और उनमें एक प्रकार की गंदे सफ़ेद रंग की झलक होती है। बग़ल और पीठ पर के कुछ बाल बड़े होते हैं जिनके सिरे पर यह सफ़ेदी नहीं रहती और जो धुर काले होते हैं। इनका सर सफ़ेद रहता है लेकिन ऊपरी होंठ के दोनों किनारों से एक गाढ़ भूरी या काली पट्टी शुरू होती है जो आँखों के ऊपर से होकर कान तक फैल जाती है। इसी तरह की दूसरी धुमैली पट्टी ठुड्डी से शुरू होती है जो आँखों के ऊपर से होकर कान तक फैल जाती है। फिर इसी तरह की तीसरी धुमैली पट्टी ठुड्डी से शुरू होती
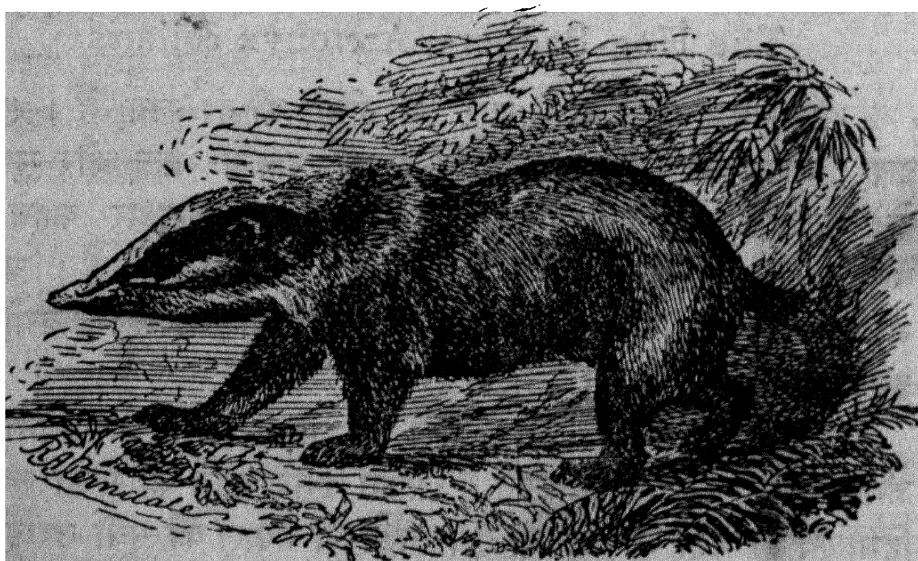
भालूसुअर

है। यह गाल के ऊपर से होती हुई ऊपर की दोनों पट्टियों में चौड़ी होकर मिल जाती है। इस प्रकार इसका सफ़ेद सर इन पट्टियों के कारण धारीदार सा लगता है। इसका सर, गला, छोटी दुम और

गरदन के दोनों बग़ली हिस्से सफ़ेदी मायल होते हैं। नीचे का सारा हिस्सा और चारों पैर धुमैले रहते हैं।

भालूसुअर भालुओं की तरह दिन भर पहाड़ की खोहों या बिलों में पड़ा पड़ा आराम किया करता है पर रात होते ही यह खाने की तलाश में बाहर निकल पड़ता है। फिर सारी रात पहाड़ी हिस्सों और ऊबड़-खाबड़ स्थानों में इसका चक्कर लगता रहता है। यह फल-फूल, कीड़े-मकोड़े के अलावा मछली भी खाता है लेकिन इसे और सब चीज़ों से ज्यादा केंचुए पसन्द हैं।

भालूसुअर की कुछ आदतें सुअर से और कुछ भालू से मिलती हैं। पालतू किये जाने पर यह बहुत सुस्त हो जाता है और छेड़े जाने पर यह ग़ुस्सा होकर सुअर की तरह घुरघुरा कर काटने की कोशिश करता है। इसकी सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है और यह किसी की भी आहट पाने पर सुअर की तरह अपना थूथन उठा कर हवा सूँघता है। इसकी चाल भालू की चाल से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है और यह भी ज़रूरत पड़ने पर उसी की तरह दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो जाता है।

२८—ऊद

The Common Otter—Lutra vulgaris

ऊद हमारे यहाँ का एक विचित्र जीव है जिसे देखकर सहसा यह ख़्याल नहीं होता कि यह पानी के भीतर उसी आसानी से तैर लेता होगा जिस तरह हमारी मछलियाँ। लेकिन यह सन्देह तभी मिट सकता है जब हम ऊद को चिड़ियाख़ाने की हौज़ों में या अपने यहाँ की बड़ी नदियों में तैरता हुआ देखें।

ऊद को ऊदबिलाव भी कहते हैं। यह हमारे यहाँ सारे देश में

फैला हुआ है। यहाँ यह एक दूसरी जाति के ऊद से ऐसा मिल गया है कि कौन से स्थान में कौन से ऊद मिलते हैं इसका पता लगाना
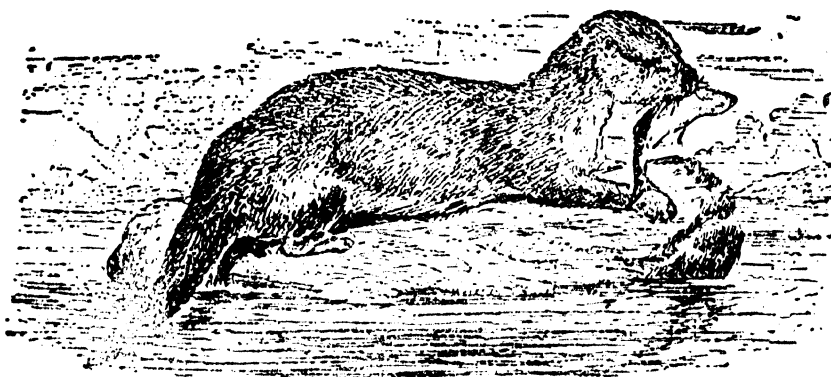
ऊद

असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है। इन दोनों की शकल-सूरत और रंग में भी इतना कम भेद रहता है कि दोनों को जल्द पहचानना बड़ा मुश्किल काम है। विदेशी ऊद के बाल कुछ बड़े होते हैं और इनका रंग कुछ ज़्यादा कत्थई होता है। इनका क़द भी हमारे देशी ऊदों से कुछ ज़्यादा बड़ा होता है लेकिन आदतें दोनों की एक जैसी ही होती हैं।

ऊद लगभग दो फ़ुट लम्बा जानवर है। इसके १७-१८ इंच लंबी दुम होती है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का होता है जिसमें कुछ कत्थई या ललछौंह झलक रहती है। इसके बड़े बालों के नीचे बदन की खाल से मिली हुई घने बालों की एक और तह होती है जिसका रङ्ग सफ़ेदी मायल होता है। नीचे का हिस्सा जिसमें गला, सीना, पेट, टाँगों का भीतरी हिस्सा और दुम का निचला हिस्सा भी शामिल है, सफ़ेद रहता है। गले और ठुड्डी के बाल एकदम सफ़ेद होते हैं लेकिन बाक़ी और निचले हिस्से की सफ़ेदी में कुछ भूरेपन की मिलावट रहती है। लेकिन ज्यों-ज्यों ऊद की उम्र बढ़ती

जाती है उनमें नीचे की यह सफ़ेदी स्पष्ट होती जाती है। बच्चों का ऊपरी रङ्ग धुमैला और नीचे का हलका भूरा रहता है।

ऊद वैसे तो नदियों के निवासी हैं लेकिन हमारे यहाँ ये बड़े तालाबों और झीलों में भी पाये जाते हैं। वैसे तो ये मीठे पानी में रहनेवाले जीव हैं लेकिन मौक़ा पड़ने पर ये खारी पानी में भी घुस जाते हैं।

ये बिलों में रहनेवाले जानवर हैं जो अकसर अपना बिल पानी के आस-पास ही बनाते हैं। इनके बिल काफ़ी गहरे होते हैं और उसमें कई दरवाज़े होते हैं। इनमें से एक न एक दरवाज़े का मुँह पानी के निकट रहता है जिसमें से होकर ये पानी में चले जाते हैं। इनके रहने की जगह का पता इनके झिल्लीदार पैरों के निशान से लग जाता है जिनके अँगूठे आपस में बतख़ों की तरह जुटे रहते हैं।

ऊद वैसे तो रात्रिचारी जीव हैं लेकिन आबादी से दूर सुनसान जगहों में इन्हें दिन को भी बड़ी नदियों में शिकार खेलते या रेत पर लेट कर धूप सेंकते देखा जा सकता है। शिकार करते समय ये प्रायः ५-७ के गिरोह में रहते हैं और मछलियों को किनारे के पास अर्ध-चंद्राकार घेरे में घेर लेते हैं। एक ऊद पहरे के लिए सूखे पर बैठा रहता है जो किसी ख़तरे की आहट पाते ही एक प्रकार की आवाज़ करता है। इस संकेत को सुनते ही सारे के सारे ऊद गहरे पानी में भाग जाते हैं और थोड़ी थोड़ी दूर पर छोटे कुत्तों की तरह सर बाहर निकाल कर फिर पानी में ग़ोता लगा लेते हैं।

ऊद को बड़ी आसानी से पालतू किया जा सकता है—और अकसर नदियों के पास-पड़ोस के गाँवों के लोग इन्हें पाले रहते हैं। पालतू हो जाने पर ये अपने मालिक से हिल जाते हैं और उनके पीछे पीछे कुत्ते की तरह फिरा करते हैं।

इन्हें पालतू करनेवाले लोग इनसे एक और काम लेते हैं जिसे

ये बड़ी ख़ूबी से पूरा कर देते हैं। इनके शिकार के तरीक़े से फ़ायदा उठा कर लोग इनसे मछलियों के शिकार में इनकी मदद लेते हैं। वे इन्हें शिकार के समय अपने साथ ले जाते हैं और इनसे उसी तरह जाल की ओर मछलियों को हँकाते हैं जैसे जंगल में जानवरों का हाँका होता है। इस तरह मछलियाँ घिर कर जाल में आ फँसती हैं।

ऊद पानी में तो मछलियों की तरह तैर ही लेते हैं सूखे में भी इन्हें काफ़ी तेज़ भागने की सहूलियत प्रकृति की ओर से मिली हुई है। इनकी सूँघने और सुनने की शक्ति भी बहुत तेज़ होती है लेकिन इनकी निगाह ज़रूर उतनी तेज़ नहीं होती। ये बहुत ही चालाक जानवर हैं और इन्हें आसानी से पकड़ा नहीं जा सकता। इनकी बोली बहुत तेज़ होती है और कभी कभी अपने साथियों को आगाह करने के लिए ये एक प्रकार की सीटी सी बजाते हैं।

इनका मुख्य भोजन मांस, मछली, मेढक और केकड़े आदि हैं। लेकिन ये अपने शिकार को अपनी ज़रूरत से ज़्यादा काट डालते हैं। ये पानी में रहनेवाली चिड़ियों पर भी हमला करते हैं और उनके अंडे भी इनसे नहीं बचते।

ऊद सितम्बर के आस-पास जोड़ा बाँधते हैं और लगभग दो महीने बाद इनकी मादा दो से पाँच तक बच्चे देती है। इन बच्चों की आँख कुत्ते के बच्चों की तरह कुछ दिन बाद खुलती है।

२९—वाह

The Red Cat Bear or Himalayan Racoon

Aelurus Fulgens

वाह जिस वंश का प्राणी है उसके और जीव अमेरिका में पाये जाते हैं। यहाँ तो केवल वाह ही न जाने कैसे आकर हिमालय

के प्रान्तों में बस गया है। हिमालय में भी यह जानवर १०,००० फ़ुट से १२,००० फ़ुट तक के उन्हीं भागों में मिलता है जो नैपाल से आसाम तक फैले हुए हैं।

वाह

छोटे भालू की तरह का यह जानवर वैसे शकल-सूरत में भालू से ज्यादा बिल्ली से मिलता है। उसके बिल्ली जैसे चेहरे में भालू की तरह छोटी आँखें न होकर अगर कहीं बिल्ली जैसी बड़ी आँखें भी होतीं तब तो और ज्यादा धोखा होता। इसकी दुम भालुओं की तरह छोटी न होकर बिल्ली की दुम से भी ज्यादा लंबी होती है।

वाह लंबाई में दो फ़ुट से ज्यादा लंबा नहीं होता लेकिन इसकी दुम भी इससे कम नहीं होती। इसके ऊपरी लंबे बालों के नीचे छोटे-छोटे घने बालों की एक तह होती है जो इन्हें सर्दी से बचाती

है। इसके बदन का ऊपरी रङ्ग गहरा बादामी लिये खैरा होता है जिसमें नीचे का हिस्सा काला रहता है। इसके चारों पैर और दुम का सिरा भी काला ही रहता है, दुम पर हलके रङ्ग की कई गड्डारियाँ पड़ी रहती हैं और बालों के निचले तह के बाल भूरे रङ्ग के होते हैं। इसका चेहरा, ठुड्डी और कान के भीतर के बाल सफ़ेद रहते हैं और दोनों आँखों के बीच में होती हुई एक लाल रंग की पट्टी पड़ी रहती है।

वाह अकसर जाड़े में दिखाई पड़ते हैं। ये दोपहर को किसी पेड़ के खोथे या पहाड़ की गुफ़ा में पड़े रहते हैं। यही नहीं कभी कभी इन्हें किसी पेड़ की डाल पर ही कुत्ते या बिल्ली की तरह अपना सारा बदन समेट कर सोते देखा जा सकता है। इनके सोने का ढङ्ग विचित्र होता है। कभी कभी तो यह अपना सर सीने के पास घुसेड़ कर खड़े ही खड़े सो लेता है।

यह वैसे तो रात्रिचर जीव है लेकिन रात को ही यह शिकार करने निकलता हो सो बात नहीं है इसके शिकार का समय बहुधा सुबह और शाम का होता है। उस समय इसे ऊँचे पेड़ों पर देखना ताज्जुब की बात नहीं। ज़मीन पर तो यह बहुत सुस्ती और काहिली से चलता है लेकिन पेड़ पर चढ़ते ही इसमें ग़ज़ब की फ़ुर्ती आ जाती है।

वाह मांसभक्षी-वर्ग का प्राणी होते हुए भी भालुओं की तरह मांस बहुत कम खाता है और ज्यादातर फल-फूल और शाकाहार से ही अपनी उदरपूर्ति करता है। बाँस के नरम कल्ले इसे बहुत पसन्द हैं, इसके अलावा यह चिड़ियों के अंडों और बच्चों को भी चट कर जाता है।

वाह की बोली बहुत तेज़ और बिल्ली से मिलती-जुलती होती है। जोड़ा बाँधने का समय आने पर इनकी बोली और भी तेज़ और

कर्कश हो जाती है। नर के बदन से कभी कभी एक प्रकार की तेज़ बू आती रहती है। जो जोड़ा बाँधने के समय बोली ही की तरह और तेज़ हो जाती है।

वाह की न तो देखने की ही शक्ति तेज़ होती है और न सुनने की ही। इसी वजह से इसको पकड़ने में मनुष्यों को ज़्यादा परेशानी नहीं उठानी पड़ती। पकड़े जाने पर वाह बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं और पहाड़ के निवासी होने पर भी ये आसानी से मैदानों में रह लेते हैं। ये वैसे तो सीधे होते हैं लेकिन गुस्सा होने पर अपने अगले पंजों से भालू की ही तरह हमला करते हैं।

वाह की मादा वसंत ऋतु में दो बच्चे जनती है जो कुछ दिनों तक पेड़ के खोथों या गुफ़ाओं में रहते हैं। उसके बाद इन्हें तब तक अपनी मा के साथ ही साथ देखा जा सकता है जब तक उसके और दूसरे बच्चे नहीं हो जाते।

३०—भालू भूरा

The Brown Bear—Ursus arctus

भालुओं के बारे में और कुछ जानने से पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि मांसभक्षी-वर्ग में शामिल रहने पर भी इनका मुख्य भोजन मांस नहीं है।

काला भालू तो हम सबने देखा होगा लेकिन भूरे भालू के लिए या तो हमें हिमालय के ऊँचे स्थानों का सफ़र करना चाहिए नहीं तो फिर उसकी तसवीर से सन्तोष करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।

भूरा भालू हमारे देश में हिमालय के उन बर्फ़ीले प्रान्तों का निवासी है जो काश्मीर से नैपाल तक फैले हुए हैं। हिमालय में इस भालू को इसके कत्थई रंग के कारण 'लाल भालू' और इसके बर्फ़ के

निकट रहने की आदत के कारण 'बर्फ़ का भालू' भी कहा जाता है।

इसका क़द औसदन पाँच फ़ुट लम्बा होता है लेकिन कुछ भालू इससे भी बड़े पाये गये हैं। इनके रंग के बारे में कुछ कहना बहुत कठिन है क्योंकि ये एक जैसे होकर भी मुख़्तलिफ़ होते हैं। फिर
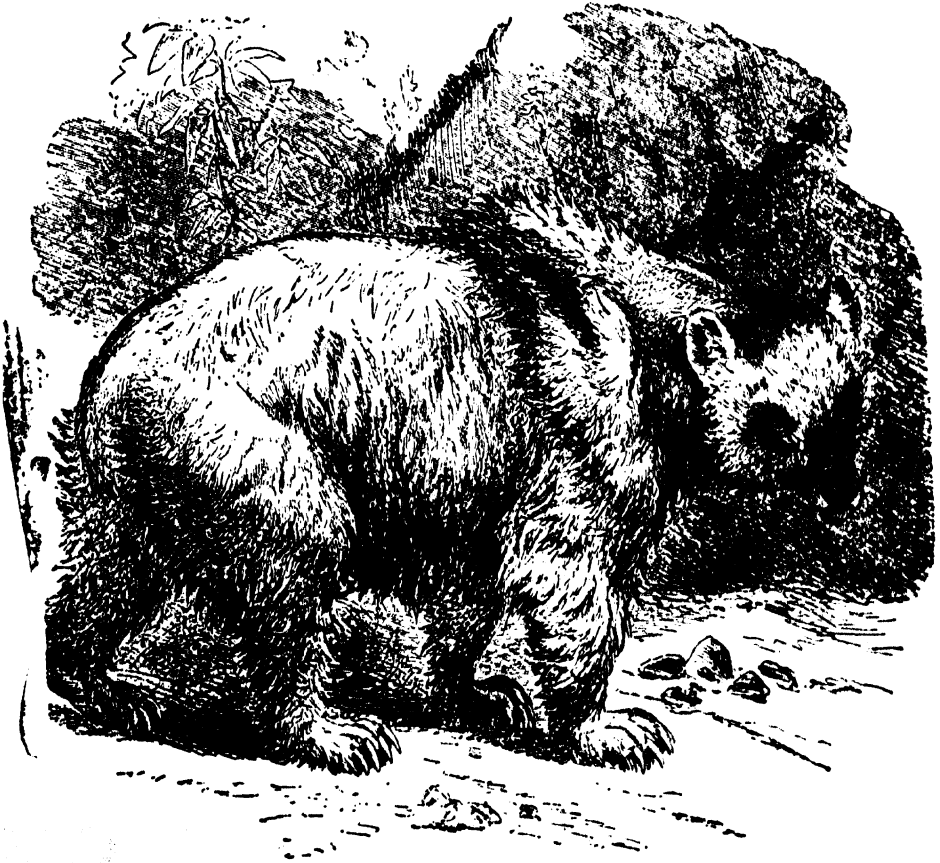
भालू भूरा

भी इनके रंग को भूरे के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ के भूरे रंग में पीलापन मिला रहता है तो कुछ में थोड़े खैरेपन की झलक रहती है। कुछ गाढ़े रंग के होते हैं तो कुछ का रंग हलका ही रह जाता है। इस तरह तरह के रंगों के लिए बहुत कुछ मौसम

भी ज़िम्मेदार है क्योंकि मौसम के साथ ही साथ इनमें भी तब्दीली होने लगती है। जाड़ों में इनके बालों में ज्यादा सफ़ेदी आ जाती है और वे लम्बाई में भी काफ़ी बड़े हो जाते हैं लेकिन गर्मी में ये छोटे होकर गहरे रङ्ग के हो जाते हैं।

इनके सीने पर V शकल का एक सफ़ेद चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ता है जिसे ये इस लड़ाई के V आन्दोलन के समय से नहीं बल्कि न जाने किस युग से अपने सीने से लगाये हुए हैं। बच्चों के तो यह चिह्न बहुत ही स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मादा का रङ्ग नर की तरह चटक न होकर उससे धूमिल रहता है।

भूरे भालू के बाल मोटे बिखरे हुए लेकिन मुलायम होते हैं। जिसके नीचे मोटे बालों की एक तह भी रहती है। जाड़ों में ऊपर के बाल क़रीब आठ इंच तक लम्बे हो जाते हैं लेकिन गर्मी आने पर इनकी लम्बाई फिर कम हो जाती है। इनके पंजे बहुत बड़े न होकर औसद क़द के होते हैं।

यह भालू और भालुओं की बनिस्बत सीधा होता है और आदमियों पर कभी हमला नहीं करता। घायल हो जाने पर भी यह हमला करने से ज्यादा भागना ही पसन्द करता है। यह पेड़ पर चढ़ने में भी उतना उस्ताद नहीं होता जितना दूसरे भालू होते हैं।

गरमियों में ये भालू हिमालय की काफ़ी ऊँचाई पर चले जाते हैं और बर्फ़ के आस-पास ही रहते हैं फिर पतझड़ के मौसम में ये कुछ नीचे उतर आते हैं और गाँव के आस-पास के बाग़ बग़ीचों में बड़ा उत्पात मचाते हैं। जाड़ा शुरू होने पर ये गुफ़ाओं में चले जाते हैं जहाँ वसन्त ऋतु के आने तक ये सारा शीतकाल अर्धसुप्तावस्था में बिता देते हैं। वसन्त के आने पर जब गुफ़ाओं के मुँह पर की जमी बर्फ़ गल जाती है तो ये बाहर निकल कर अपनी ख़ूराक की तलाश में इधर-उधर घूमने लगते हैं।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात, जड़ें और फल-फूल हैं लेकिन इनको कीड़े-मकोड़े खाने में भी कोई हिचक नहीं होती। कभी कभी ये भेड़-बकरियों तक को मार कर खा जाते हैं और कुछ उदाहरण ऐसे भी मिले हैं जब इन्हें स्यार और लकड़बग्घे की तरह दूसरों के मारे हुए शिकार को भी खाते देखा गया है।

भूरे भालू जाड़ा शुरू होने से कुछ पहले ही जोड़ा बाँध लेते हैं और तब ये अकसर जोड़े में घूमते ही दिखाई देते हैं। जाड़ों में जब इनके सोने का समय आता है तो ये अलग अलग हो जाते हैं। मादा अप्रैल मई तक दो छोटे बच्चे जनती है। ये बच्चे पैदा होने के समय बड़े चूहे से कुछ ही बड़े रहते हैं और तब न उनके बदन पर बाल ही होते हैं और न उनकी आँखें ही खुली रहती हैं।

ये बच्चे तीन साल तक अपनी मा के साथ रह कर फिर उससे अलग हो जाते हैं। मादा हर साल नये बच्चे देती हैं और हर साल तीन सालवाले पुराने बच्चे इनसे अलग होते जाते हैं।

३१—भालू काला

The Himalayan Black Bear—Ursus Torquatus

काले भालू हमारे देश में दो होते हैं। एक जो रीछ के नाम से प्रसिद्ध है और सारे देश में फैला हुआ है और दूसरा हिमालय का काला भालू जो भूरे भालू की तरह हिमालय के पहाड़ी प्रान्तों में ही घूम-फिर कर रहता है।

काला भालू एक दम हिमालय की पहाड़ियों का रहनेवाला है जो भूरे भालू की तरह बर्फ़ के आस-पास रहने से ज्यादा जंगलों में रहना पसन्द करता है। हिमालय के सारे जंगल इनसे भरे पड़े हैं जहाँ इन्हें देखना कठिन नहीं है। पूर्व की ओर आसाम के जंगलों तक में इनको बड़ी आसानी से देखा जा सकता है लेकिन इनकी

पश्चिमी सरहद सिन्ध तक मानी जाती है। वैसे ये उस ओर बहुत कम संख्या में मिलते हैं।
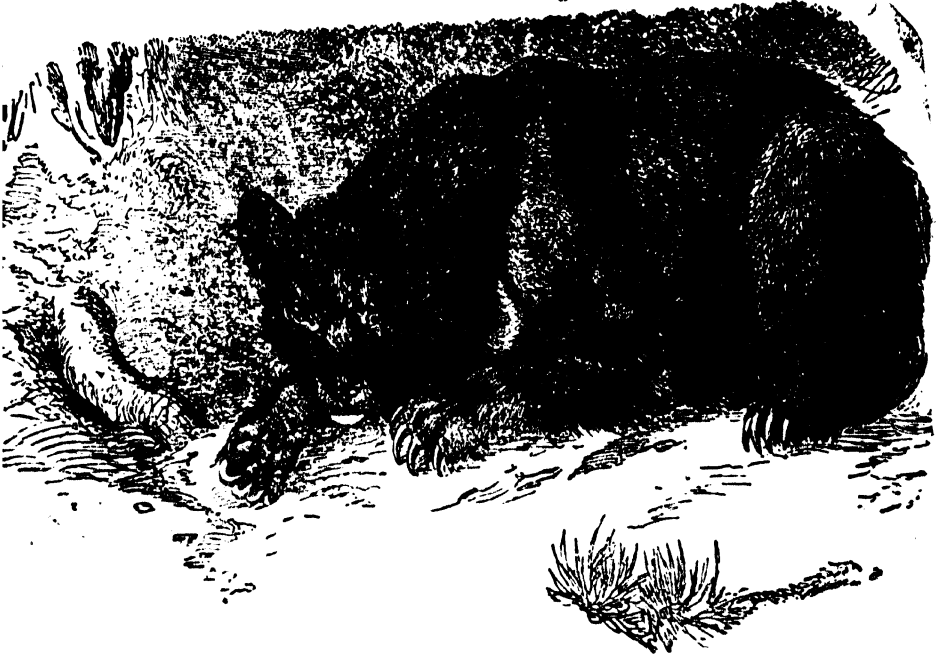
भालू काला

यह भालू हमारे पहाड़ी जंगलों का प्रसिद्ध भालू है जिसका क़द लगभग ५ फ़ुट के होता है। इसके बदन पर के बाल मुलायम और औसत क़द के होते हैं और उनके नीचे भूरे भालू की तरह घने बालों की मोटी तह नहीं होती। जाड़ों में इनके बदन पर के सारे बाल नहीं बढ़ते, केवल कन्धों पर के कुछ बाल बढ़ जाते हैं। इनके पंजे छोटे, मजबूत और टेढ़े होते हैं और कान भूरे भालू से कुछ बड़े होते हैं।

यह भालू धुर काले रंग का होता है जिसके सीने पर एक चौड़ा सफ़ेद रंग का अर्द्धचंद्राकार या V के शक्ल का चिह्न रहता है। इस

चिह्न के दोनों सिरे इसके कंधे तक चले जाते हैं। इसकी ठुड्डी भी सफ़ेद रंग की होती है और इसकी नाक का रंग ललछौंह भूरा रहता है। इसकी गरदन मोटी, सर चपटा और बदन और भालुओं से कुछ पतला होता है। इसका ऊपरी होंठ सफ़ेदी मायल रहता है और इसके पंजे कभी कभी ललछौंह भूरे रहते हैं। नाखून का रंग ज़रूर काला ही रहता है।

भूरे भालू की तरह इस भालू का भी मुख्य भोजन फल-फूल और जड़ें हैं और उसी की तरह यह मांस भी बड़े स्वाद से खाता है। शहद और दीमक तो सभी भालुओं को प्रिय है फिर यह उसे कैसे छोड़ सकता है जब कि यह पेड़ पर चढ़ने में और सब भालुओं से ज़्यादा उस्ताद होता है। अपने इसी पेड़ पर चढ़ने की आदत के कारण यह जड़ें वग़ैरह खोदने में अपना ज़्यादा वक्त नहीं बरबाद करता और फलों से ही अपना पेट भर लेना पसन्द करता है। इसका मांस खाने का तरीक़ा भूरे भालू की ही तरह है। यह ख़ुद भी भेड़-बकरियों का शिकार करता है और दूसरे के मारे हुए शिकार को भी नहीं छोड़ता।

यह भालू वैसे तो जंगल का निवासी है लेकिन इसे और जंगलों से आबादी के पास-पड़ोसवाले जंगल ज़्यादा पसंद आते हैं। यह भूरे भालू की तरह सीधा न होकर काफ़ी जङ्गली और बदमाश होता है और अकसर आदमियों पर हमला करके उन्हें अपने तेज़ पंजों से मार डालता है। इसकी आँख तो कमज़ोर होती है लेकिन सूँघने की शक्ति इसे बहुत तेज़ मिली है। भागने में, पेड़ पर चढ़ने में और तैरने में यह भूरे भालू से कहीं आगे रहता है।

शीतकाल में यह भूरे भालू की तरह कुछ महीने सुप्तावस्था में पड़ा रहता है या नहीं, इसके बारे में अभी तक कुछ ठीक पता नहीं चल सका है लेकिन इतना तो निश्चय ही है कि जाड़ों में यह उतना तेज़ नहीं रहता जितना और महीनों में।

इसकी मांद प्राय: घने जंगलों के बीच रहती है जहाँ यह घनी झाड़ियों, खोहों और मोटे दरख़्तों के खोथों में सारे दिन पड़ा रहता है। रात होते ही इसकी भोजन की तलाश शुरू हो जाती है।

भूरे भालू की तरह ये वैसे तो अकेले रहते हैं लेकिन जोड़ा बाँध लेने पर कुछ दिनों तक ये जोड़े के साथ घूमते-फिरते दिखाई पड़ते हैं। मार्च के क़रीब इनकी मादा दो बच्चे देती है जो क़द में बहुत छोटे होते हैं। बच्चों की आँख कुत्ते के पिल्लों की तरह कुछ दिनों बाद खुलती है। ये कुछ साल तक अपनी मा के साथ रहकर फिर उनसे अलग होते हैं।

मौसम के बदलाव के अनुसार इसको १२,००० फ़ुट की उँचाई तक देखा जा सकता है। जाड़ों में यह ५,००० फ़ुट तक या उससे भी नीचे उतर आता है लेकिन गरमियों में ज्यों ज्यों बरफ़ गलने लगती है यह ऊपर चढ़ने लगता है और तब इसका निवास ९,००० फ़ुट से १२,००० फ़ुट तक की उँचाई तक रहता है।

३२—रीछ

The Sloth Bear—Metursus Ursinus

रीछ हमारे यहाँ के भालुओं में सबसे प्रसिद्ध है। यह सारे देश में फैला हुआ है। इससे शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इस भालू को न देखा हो।

भारतवर्ष में यह हिमालय की तराई से धुर दक्षिण तक के घने जंगलों में पाया जाता है। पश्चिम की ओर यह कच्छ और काठियावाड़ में जरूर मिलता है लेकिन उसके उत्तरी रेगिस्तानी हिस्से में यह नहीं दिखाई पड़ता। पूरब की ओर यह बंगाल के पूर्वी और उत्तरी हिस्सों में कभी कभी जरूर दिखाई पड़ जाता है लेकिन उस ओर की इसकी कोई निश्चित सीमा अभी तक नहीं बनी है।

रीछ क़द में ५-६ फ़ुट का होता है जिसकी उँचाई भी ढाई फ़ुट के लगभग होती है। वज़न में तो इनमें से कोई कोई चार मन से भी ज़्यादा के पाये गये हैं। मादा ज़रूर नर से कुछ छोटी होती है।

इसके सारे बदन का रंग धुर काला होता है जिसमें सीने पर एक बड़ा अर्द्धचंद्राकार सफ़ेद चिह्न रहता है। इसका थूथन नोकीला

रीछ

और बड़ा होता है जो गंदे सिलेटी रंग का रहता है। इसके बदन के बाल काफ़ी बड़े होते हैं। रीछ की सुनने की शक्ति तेज़ नहीं होती और देखने की शक्ति तो उससे भी गई बीती है लेकिन सूँघने की शक्ति इसको इतनी तेज़ मिली है कि पेड़ के पत्तों में छिपे हुए शहद के छत्तों का पता यह बड़ी आसानी से सूँघकर लगा लेता है।

रीछ दूसरे भालुओं से क़द ही में बड़ा नहीं होता शरारत और बदमाशी में भी यह उनसे आगे ही रहता है। जंगल में शिकार के समय जिसने इसे घायल होकर चिल्लाते और पिछले दोनों पैरों पर खड़ा होकर आक्रमण करते देखा है वही इसकी खूँखारी को भली भाँति जान सकता है। घायल हो जाने के अलावा छेड़े जाने पर भी यह अकसर आदमियों पर हमला कर बैठता है और अपने तेज़ पंजों से उनका मुँह और खोपड़ी नोच डालता है।

हिमालय के भालुओं की तरह रीछ जाड़ों में शीतशायी नहीं होता बल्कि बारहों महीने जंगलों में फिरा करता है। गरमी के दिनों में इसे घने जंगलों में, पानी के आसपास की गुफाओं में, तलाशने पर निराश नहीं होना पड़ेगा। यह भी रात्रिचर जानवर है जो दिन को किसी घने स्थान की गुफा में आराम करता रहता है लेकिन रात होते ही भोजन की तलाश में बाहर निकल पड़ता है। फिर फल-फूल, शहद, दीमक और जड़ों की तलाश में ही इसकी सारी रात बीत जाती है। इसे इन चीज़ों के अलावा महुआ भी बहुत पसंद है। जब महुए का फूल गिरने लगता है तब जंगल के आस-पास के महुए के पेड़ों के नीचे अकसर रात को रीछ आ जाते हैं। शिकारी लोग इससे फ़ायदा ज़रूर उठाते हैं लेकिन गाँववालों को इससे बहुत ख़तरा रहता है। कभी कभी यह महुए की लालच में पेड़ों की निचली डालों पर भी चढ़ जाता है। महुए के अलावा यह आम, कटहल और गन्ना भी स्वाद से खाता है। इतना ही नहीं अपनी पेड़ पर चढ़ने की आदत के कारण यह दक्षिण भारत की ओर ताड़ी पीने के लिए ताड़ और खजूर तक के पेड़ों पर चढ जाता है।

दीमक तो इसे ख़ास तौर पर पसंद है। यह दीमक के बिलों या दिमौरों को पहले अपने तेज़ पंजों से खोद डालता है फिर अपने लम्बे थूथन को छेद में डाल कर इतनी तेज़ी से सुड़कता है कि सारे

के सारे दीमक इसके पेट में चले जाते हैं। दीमक ही क्यों और भी अनेकों कीड़े यह बड़े मजे से खाता है और वैसे आदतन गोश्तख़ोर न होकर भी भूखे रहने पर यह गोश्त से भी अपना पेट भर लेता है।

रीछ वैसे तो अकेला रहता है लेकिन जून के क़रीब जोड़ा बाँधने के बाद यह अकसर जोड़े में ही दिखाई पड़ता है। इसकी मादा दिसम्बर या जनवरी के आसपास कुत्ते के पिल्ले के आकार के दो बच्चे जनती है। इनका शरीर शुरू में तो छोटे-छोटे मुलायम बालों से ढका रहता है लेकिन दो तीन महीने बाद ये बाल बड़े और कड़े हो जाते हैं। अन्य भालुओं के बच्चों की तरह रीछ के बच्चों की भी आँख पैदा होने के समय बन्द रहती है और उनके खुलने में २॥-३ तीन सप्ताह से कम समय नहीं लगता।

छोटे रहने पर मादा अपने बच्चों को पीठ पर लादकर इधर-उधर ले जाती है। उस समय वह इतनी ख़तरनाक रहती है कि अगर किसी से रास्ते में भेंट हो गई तो उस पर हमला हुआ ही समझिए। यह सब होते हुए भी रीछ के बच्चों को आदमी पकड़ ही लेता है नहीं तो मदारियों के पास इतनी अधिक संख्या में रीछ आते कहाँ से ?

५

तिमि वर्ग

Order Cetacea

तिमि वर्ग भी दो उपवर्गों में बँटा है। अदंत उपवर्ग और सदंत उपवर्ग। पहले वर्ग में नीली तिमि (रारक्वेल) आदि प्राणी हैं जिनके मुँह में दाँत नहीं होते और दूसरे में मोमीतिमि (कचलाट) और सूस आदि हैं, जिनके जबड़ों में दाँत रहते हैं। इन दोनों उपवर्गों के प्राणी हमारे समुद्रों और बड़ी नदियों में पाए जाते हैं। जिनमें से बड़े जीवों को तिमि (ह्वेल) और छोटों को सूस कहा जाता है।

इससे पहले कि इन प्राणियों के बारे में कुछ बताया जावे, हमें यह भली भाँति जान लेना चाहिए कि पानी में रहने पर भी ये मछलियाँ या अन्य जलचर न होकर औरों जैसे स्तनपायी जीव हैं। इनका आकार-प्रकार भले ही मछलियों आदि की तरह हो लेकिन अपने स्वाभाव शरीर-रचना और कई अन्य बातों में ये उनसे कहीं जुदा हैं।

जल में रहकर भी न तो ये जल के भीतर मछलियों की तरह साँस ले सकते हैं और न इनकी दुम का सिरा ही मछलियों की तरह खड़ा खड़ा होता है। इनको साँस लेने के लिए थोड़ी थोड़ी देर के बाद पानी की सतह पर आना पड़ता है। जिसमें उनकी दुम का आड़ा सिरा बहुत सहायक होता है।

ये मांसाहारी जीव हैं, जिनका मुख्य भोजन छोटी छोटी मछलियाँ और घोंघे आदि है। ह्वेल आदि प्राणी, इतने भीमकाय होने पर भी अपने गले के तंग सूराख के कारण छोटी छोटी मछलियाँ ही खा सकती हैं। ये अन्डे न देकर बच्चे जनती हैं, जिनको मादा स्तनों से दूध पिलाती है।

सारा समय पानी में बिताने के कारण, इन प्राणियों के अगले

पर तो मछलियों के सुफनों या पखनियों Fins में बदल गए हैं लेकिन पीछे के पैर बेकार होने के कारण, धीरे-धीरे ग़ायब ही हो गए हैं। इनके पैरों की उँगलियाँ एक दूसरे से, एक प्रकार की झिल्ली से जुटी रहती हैं। जिनमें नाख़ून नहीं होते। इनमें से किसी किसी की पीठ पर मछलियों की तरह एक काँटा भी होता है लेकिन उसको ये हिला नहीं सकतीं। इनके बदन पर बाल नहीं होते लेकिन बदन में गर्मी क़ायम रखने के लिए, प्रकृति ने इनके शरीर को एक चर्बी की मोटी तह प्रदान की है, जो इनके सारे शरीर में खाल के नीचे रहती है। इनकी आँखें छोटी छोटी होती हैं, कान के छिद्र भी छोटे होते हैं और कान का ऊपरी हिस्सा नहीं होता। नाक के छिद्र सिरे पर न होकर, कुछ ऊपर की ओर चढ़े रहते हैं। इनकी सुनने की शक्ति बहुत तेज़ होती है।

इनमें से कुछ का सर काफ़ी बड़ा होता है और जैसा पहले बता आया हूँ, इनको साँस लेने और छोड़ने के लिए पानी की सतह पर आना पड़ता है। पानी के ऊपर आकर जब ये ज़ोर से साँस छोड़ते हैं तो इनके नथुनों के छेद से कभी कभी पानी की धार सी निकलती है। कुछ लोग उसे देखकर यह ख़्याल करते हैं कि तिमि (ह्वेल) अपना बड़ा मुँह फैलाकर पानी भर लेती है और फिर मुँह बन्द करके इसी छेद से पानी बाहर निकाल देती है, जिससे पानी तो निकल जाता है लेकिन उसमें की मछलियाँ मुँह के भीतर ही रह जाती हैं। लेकिन वास्तव में होता यह है कि तिमि जब ज़ोर से साँस बाहर निकालती है, तो उसके साथ कुछ पानी का हिस्सा और नाक वग़ैरह बाहर उड़ती है, जो पानी का फ़व्वारे सा जान पड़ता है। उत्तरी ध्रुव के पास की तिमि जब साँस बाहर निकालती है तो फेफड़े की अशुद्ध वायु, जो जल की भाप से पूर्ण रहती है, बाहर निकलते ही, शीत के कारण जम जाती है और ऐसा प्रतीत होता है है कि तिमि के नथुनों से जल की धाराएँ निकल रही हैं।

हवा में साँस लेनेवाली जीव होने पर भी तिमि को यदि पानी से बाहर निकालकर सूखे में रख दिया जावे, तो वह मर जावेगी क्योंकि हवा में साँस लेने में समर्थ होने पर भी इसका निचला भाग बहुत कोमल होता है और वह ऊपर का भारी बोझ नहीं सँभाल सकता। इसीलिए इस दबाव के कारण तिमि का दम घुट जाता है।

१—नीली-तिमि

The Great Indian Fin Whale or Rorqual
Balaenoptera indica

तिमि या ह्वेल के बारे में हमें प्रायः सभी ज़रूरी बातें तिमि वर्ग के वर्णन के साथ मिल जावेंगी। यहाँ तो केवल अपने देश की प्रसिद्ध ह्वेल का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है। जिससे हम इसे और ह्वेलों से पहचान सकें।

नीली-तिमि को अँगरेज़ी में फ़िन-ह्वेल Fin whale भी कहते हैं और रारकाल भी। यह फ़िन-ह्वेल इसलिए कही जाती है कि इसकी पीठ पर एक बड़ा सा सुफ़ना या फ़िन Fin रहता है। अपने नीले रंग के कारण इसका नाम नीली-तिमि रखा गया है।

नीली-तिमि हमारे देश के अरबसागर और बंगाल की खाड़ी में मिलती है। मालाबार समुद्र-तट के आस-पास इसके झुंड विशेष रूप से दिखाई पड़ते हैं।

यह हमारे यहाँ का ही नहीं सारे संसार का सबसे बड़ा जीव है जिसकी लम्बाई ९० फ़ुट से भी ज्यादा पहुँच जाती है। इतने बड़े शरीर के प्राणी का शायद स्थल में रहना संभव न होता लेकिन पानी में इसको ऐसा सहारा मिल जाता है कि इसको अपने इतने भारी शरीर की वजह से इधर-उधर जाने में कोई दिक़्क़त नहीं होती।

२—मोमी-तिमि

The Sperm Whale or Cachalot
Physeter macrocephalus

इस तिमि को मोमी-तिमि इसलिए कहा जाता है कि इसके माथे के तेल और चरबी से हमारी मोमबत्तियाँ बनती हैं।

इस ह्वेल के बारे में भी प्रायः सभी बातें इस वर्ग के वर्णन के साथ लिखी जा चुकी हैं। यहाँ तो इसके रंग-रूप और क़द वग़ैरह के बारे में ही लिखा जा रहा है।

मोमी-तिमि गरम समुद्रों में रहनेवाली ह्वेल हैं, जो ठंडे समुद्रों की ओर बहुत कम जाती हैं। ये हमारे यहाँ अरबसागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई हैं। जहाँ कुछ समय पहले इनका बहुत शिकार होता था।

नर मोमी-तिमि ज्यादा से ज्यादा ६० फ़ुट का पाया गया है लेकिन मादा की लम्बाई नरों से आधी ही रहती है।

इनका शरीर काला या कलछौंह होता है, जिसमें से कुछ का निचला हिस्सा सफ़ेदी मायल भी रहता है।

मोमी-तिमि यूथचारी जीव हैं, जिन्हें समुद्री तट के आस-पास रहना ज्यादा पसन्द नहीं आता। इनके झुंड पन्द्रह-बीस से लेकर सौ दो सौ तक के होते हैं। केवल बुड्ढे नर ही अकेले देखे जा सकते हैं।

ये तिमि काफ़ी दूर दूर तक का चक्कर लगाती रहती हैं और इनको पानी के भीतर काफ़ी देर तक रहने की शक्ति प्रकृति ने दे रखी है। ये दूसरी ह्वेलों की अपेक्षा तेज़ तो भाग ही लेती हैं साथ ही साथ ये पानी के भीतर काफ़ी गहराई तक चली जाती हैं।

मोमी तिमि के सर और चरबी से एक तरह का तेल मिला हुआ मोम निकलता है, जिससे मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं। इसको साफ़ करने के लिए पहले तेल अलहदा छान लिया जाता है, फिर मोम को कई बार खौलाकर उसकी सब गन्दगी दूर कर ली जाती है।

इस तिमि से एक और सुगन्धित पदार्थ भी निकलता है, जिसे अंबरग्रिस (Ambergris कहते हैं। यह इसकी अँतड़ियों में छोटी-छोटी गाँठों के रूप में जमा होता है और अकसर इसके रहने के स्थान पर पानी के ऊपर तैरता हुआ मिल जाता है। यह एक प्रकार का सिलेटी रङ्ग का पदार्थ है जो सुगन्धित चीजें बनाने में बहुत सहायक होता है।

३—सूस

The Gangetic Dolphin—Platanista gangetica

सूस पानी में रहनेवाला जीव है लेकिन यह न तो मछलियों की तरह हमेशा पानी के भीतर ही छिपा रहता है और न घड़ियाल और कछुओं की तरह, काफ़ी देर तक पानी में रहना ही इसे पसन्द है। इसे हम थोड़ी थोड़ी देर में पानी की सतह पर

आते जाते देख सकते हैं। यही कारण है कि जहाँ सूसें रहती हैं वहाँ इन्हें देखना ज़रा भी मुश्किल नहीं होता।

सूस वैसे तो ह्वेल के भाई-बन्धु हैं लेकिन अपने छोटे क़द के कारण इन दोनों में काफ़ी अन्तर हो गया है। इनकी अनेकों जातियाँ हैं, जिनमें से कुछ तो समुद्रों में रहती हैं और कुछ नदियों में। नदियों की सूस की भी कई जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं लेकिन इन सब की आदतें एक जैसी होने के कारण यहाँ केवल गंगा की प्रसिद्ध सूस का ही वर्णन दिया जा रहा है।
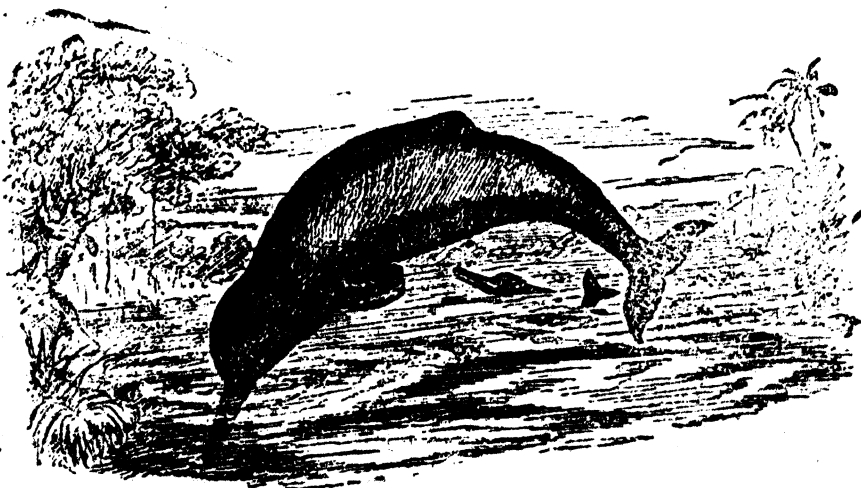
सूस

सूसों का सर गोल होता है जिसमें से इनका लम्बा थूथन बढ़ा हुआ रहता है। यह लम्बा थूथन बगल से चपटा होता है और इसके सिरे की बनावट चम्मच की शकल की होती है। इनके तैरने के लिए दोनों बगल मछलियों के सुफ़ने की तरह की पखनियाँ होती हैं, जो छोटी छोटी चौड़ी और तिकोनी होती हैं। इनका शरीर लम्बा और गोलाकार होता है। इनकी पीठ पर मछलियों की तरह के सुफ़ने नहीं होते लेकिन उसी जगह पर कुछ उभार सा ज़रूर रहता

है। इनकी गरदन धड़ से अलग नहीं ज़ाहिर होती लेकिन गरदन के पास का हिस्सा कुछ पतला ज़रूर रहता है।

सूस की आँखें बहुत छोटी होती हैं, जो जल्द देखी नहीं जा सकतीं। आठ फ़ुट लम्बी सूस की आँख मटर से बड़ी नहीं होती। इनके कानों का हाल इससे भी गया गुज़रा है। आठ फ़ुट सूस के कान के छिद्र सुई के छेद से बड़े नहीं होते।

गंगा की सूस का सर दोनों ओर चपटा और आगे की ओर कुछ उभरा उभरा सा रहता है। इसके थूथन के सूराख़ लम्बाई लिए होते हैं और आँखें इतनी छोटी होती हैं कि ज़ाहिर ही नहीं होतीं।

इसकी गरदन ज़रूर धड़ से अलग ज़ाहिर होती रहती है और बगल के सुफ़ने भी चौड़े होते हैं। इसकी पीठ पर उभार तो होता ही है, साथ ही साथ एक छोटा-सा पीठ का सुफ़ना Fin भी रहता है।

नर सूस मादा से छोटे ज़रूर होते हैं लेकिन इनका बदन उनसे भारी और गठीला होता है।

सूस का रंग कलछौंह या धुर काला होता है। पुराने सूसों के बदन पर कुछ हलके रंग की चित्तियाँ पड़ जाती हैं, जो सूख जाने पर मोती सी चमकती हैं।

ये सूस छः से आठ फ़ुट तक लम्बी होती हैं।

गंगा की सूस गंगा और उसकी सहायक नदियों में पाई जाती हैं, जहाँ इन्हें पहाड़ की तराई तक ही देखा जा सकता है। इसके अलावा यह ब्रह्मपुत्र और सिन्ध नदी में भी पाई जाती है। इसे मीठा पानी छोड़कर समुद्र में जाना क़तई पसन्द नहीं आता।

सूस ने खुश्की छोड़कर पानी को अपना घर ज़रूर बना लिया है लेकिन यह मछलियों की तरह अपना गलफड़ बनाने में अभी तक असमर्थ ही रही है। इसीलिए उसे अब भी हवा में साँस

लेने के लिए थोड़ी थोड़ी देर पर पानी की सतह से ऊपर आना पड़ता है। पानी की सतह से ऊपर जैसे ही इसका नथुना निकलता है, उसके छिद्र का ढकना खुल जाता है और पलक मारते ही यह साँस लेकर फिर पानी के भीतर चली जाती है। यह घड़ियाल की तरह अपना लम्बा थूथन निकालकर साँस नहीं लेती बल्कि इस तेज़ी से पानी की सतह पर सर निकाल कर गोलाई से पानी में घुस जाती है कि जैसे बिजली चमक गई हो। मछलियों का पीछा करते समय, यह अकसर छिछले पानी में चढ़ जाती है जहाँ इसका बदन काफ़ी दिखलाई पड़ने लगता है।

सूस का मुख्य भोजन मछलियाँ, घोंघे, कछुए वग़ैरह हैं। इसकी मादा ८-९ महीने में एक बच्चा देती है, जो अकसर अप्रैल से जुलाई तक पैदा होता है। बच्चा कुछ दिनों तक अपनी मा के साथ साथ उसका बग़ल का सुफ़ना पकड़कर चलता है।

सूस का मांस ज्यादा अच्छा नहीं होता और उसको प्राय: छोटी क़ौम के लोग ही खाते हैं। इसके बदन में बहुत ज्यादा चरबी निकलती है। जिससे तेल बनाया जाता है। यह तेल बहुत गर्म होता है और काफ़ी क़ीमत पर बिकता है। गठिया रोग के लिए लोग अकसर इसकी मालिश करते हैं। जलाने पर इस तेल की रोशनी भी काफ़ी तेज़ और चटक होती है।

सूस के दाँत छुटपन में तो बहुत तेज़ रहते हैं लेकिन ज्यों ज्यों इनकी उम्र बढ़ती जाती है, ये दाँत भी चौड़े होते जाते हैं। यहाँ तक कि इनकी क़ाफ़ी उम्र हो जाने पर, इनके ये दाँत एकदम घिस कर ग़ायब से हो जाते हैं।

९

समुद्रीधेनु वर्ग

Order Sirenia

इस वर्ग के जीव तिमि-वर्ग के जीवों के समान जल में रहने-वाले प्राणी हैं लेकिन वे उनकी तरह मांसाहारी न होकर शाकाहारी जन्तु हैं। इनमें और तिमि में उतना ही भेद है जितना खुरवाले शाकाहारी जानवरों और मांसभक्षी पशुओं में होता है। ये कभी मांस नहीं खाते बल्कि अपना पेट समुद्र के भीतर उगनेवाली घास आदि से भरते हैं।

इस वर्ग में वैसे तो दो परिवार हैं—

मैनिटी और ड्यूगांग (समुद्री गाय) लेकिन हमारे देश में केवल समुद्री गाय-परिवार के जीव पाये जाते हैं।

इन जानवरों की हड्डियाँ ठोस और भारी होती हैं क्योंकि इन्हें अपने घास-पात के भोजन के लिए समुद्र के तल के आस-पास ही रहना होता है और वहाँ का पानी का बोझ इतना ज्यादा होता है कि मामूली जीव वहाँ पहुँच जावे तो उसकी हड्डी-पसली टूट जावे। लेकिन समुद्री गाय की ठोस और भारी हड्डियाँ, जहाँ उन्हें जल में ग़ोता मारकर पानी के नीचे जाने में बहुत सहायक होती हैं वहीं वे उन्हें पानी के बोझ से भी उनको बचाती हैं, जो नीचे जाने पर निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

इनका सर गोल और आँखें छोटी छोटी होती हैं। कान का बाहरी हिस्सा नहीं होता, केवल कान के छिद्र भर रहते हैं। इनकी दुम सूस की तरह आड़ी आड़ी न होकर मछली की तरह खड़ी

खड़ी रहती हैं और इनकी खाल के नीचे चर्बी की एक बहुत मोटी तह रहती है।

मैनिटी Manatee हमारे देश में नहीं पाई जाती। इसका निवास-स्थान अमेरिका और अफ्रीका के समुद्र हैं। वहाँ इनका शिकार इनके मांस और चर्बी के लिए किया जाता है। इनका चमड़ा भी काफ़ी क़ीमती बिकता है।

मैनिटी की मादा को कुछ लोग मत्स्य-स्त्री Mermaid कहते हैं। क्योंकि उसकी शकल काल्पनिक मत्स्य-स्त्री से कुछ मिलती-जुलती रहती है। ऐसी कल्पना हमारे यहाँ की पुरानी कहानियों में भी मिलती है कि समुद्रों में मत्स्य-स्त्रियाँ रहती हैं जिनका ऊपरी आधा हिस्सा तो स्त्रियों की तरह होता है लेकिन निचला और पिछला हिस्सा मछलियों की तरह रहता है। इसी काल्पनिक कहानियों के आधार पर मैनिटी की मादा को अक्सर मत्स्य-स्त्री Mermaid कहा जाता है।

मादा मैनिटी की दुम तो मछली की तरह रहती है लेकिन ऊपरी हिस्सा मनुष्यों जैसा ज़रा भी नहीं होता। हाँ, इनके स्तन ज़रूर स्त्रियों जैसे होते हैं और बच्चों को दूध पिलाते समय ये पानी में दुम के सहारे सीधी खड़ी हो जाती हैं।

समुद्री गाय की दो जातियाँ हमारे यहाँ के समुद्रों में पाई जाती हैं। भारत की समुद्री गाय और आस्ट्रेलिया की समुद्री गाय। हमारे यहाँ की समुद्री गाय को 'माहातल्ला' भी कहा जाता है यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

१—समुद्री गाय

The Dugong—Halicore dugong

समुद्री गाय जैसा कि उसके वर्ग के वर्णन के सिलसिले में बता चुका हूँ समुद्र का जीव है, जो हमारे देश में धुर दक्षिण के समुद्री

तट के आस-पास पाया जाता है। लङ्का के आस-पास इन भद्दे जानवरों को देखना असंभव नहीं।

यह लगभग ७ फुट लम्बा जानवर है जो कभी कभी ८-९ फुट तक के भी पाये गये हैं। इनका रंग वैसे तो नीलापन लिये सिलेटी रहता है लेकिन कुछ का निचला हिस्सा सफ़ेदी मायल भी होता है।

समुद्री गाय

समुद्री गाय भद्दी तो होती ही हैं साथ ही साथ यह काहिल भी बहुत होती हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है और इसकी चरबी काफ़ी कीमत पर बिकती है।

पहले तो इनके सौ सौ के बड़े झुण्ड अकसर छिछली खाड़ियों में दिखाई पड़ते थे लेकिन जब से इनका काफ़ी शिकार होने लगा है, ये बहुत कम हो गई हैं और अब वह समय भी दूर नहीं जब ये शायद दिखाई ही न पड़ें।

समुद्री गायें छिछली खाड़ियों में तो आती ही हैं साथ ही साथ नदियों के दहानों में भी वहाँ तक चली आती हैं, जहाँ तक खारा

पानी रहता है लेकिन इन्हें मीठा पानी पसन्द नहीं है और इसी से हम इन्हें नदियों में कभी नहीं देखते।

समुद्री गाय समुद्र के भीतर की घास-पात खाकर ही अपना जीवन बिता देती है। मांस इसे किसी प्रकार का नहीं भाता।

इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है, जिसे वह अपने बगल के सुफने से दबाकर इधर-उधर घूमती रहती है।

७

तीक्ष्णदन्त वर्ग

Order Rodentia

इस वर्ग में वे जीव जन्तु जमा किये गये हैं, जिनके दाँतों को प्रकृति ने कठोर वस्तुओं तक को कुतर डालने के योग्य बनाया है। अपने इसी गुण के कारण ये तीक्ष्णदन्त अथवा कुतरनेवाले जन्तु कहलाते हैं।

इनके बारे में और कुछ जानने से पहले इनके दाँतों के बारे में कुछ जान लेना ज़रूरी है। इनके जबड़ों में चार तरह के दाँत न होकर केवल दो ही तरह के दाँत रहते हैं। कृंतक-दन्त और दाढ़ें। कृंतक दाँत लम्बे और मज़बूत होते हैं और उनके बाहरी हिस्से पर एक प्रकार की मज़बूत पालिश चढ़ी रहती है—जैसी तामचीनी के बर्तनों पर। इस पालिश या चिकनी तह के कारण इनके दाँत सामने की ओर से तो घिसने नहीं पाते लेकिन ऊपर और नीचे के दाँतों की रगड़ से भीतरी हिस्सा घिसता रहता है। ऐसा होने से उनके दाँत सदैव तेज़ और पैने बने रहते हैं। ये दाँत निरन्तर बढ़ते रहते हैं जिससे रगड़ खाने से दाँत का जितना हिस्सा घिसता है उतना फिर बढ़ आता है। हाँ, दिक्कत तब पड़ती है जब इनका कोई दाँत टूट जाता है क्योंकि तब दूसरे जबड़े क सामनेवाला दाँत बढ़ता चला जाता है और बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ जाता है कि दूसरे जबड़े में छेद कर देता है। कभी कभी इससे इन जानवरों की मौत तक हो जाती है।

इस वर्ग के सब प्राणी एक जैसे नहीं होते क्योंकि इसमें दौड़ने, तैरने और छलाँगें मारनेवाले जीवों के अलावा पेड़ों पर चढ़नेवाले जीव भी शामिल हैं। इनमें से अधिकांश के शरीर पर बाल होते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी हैं, जिनके शरीर पर के बालों की जगह काँटों ने ले ली है। उँगलियाँ ज़रूर क़रीब क़रीब सबके पाँच रहती हैं, जिसमें तेज़ नाख़ून होते हैं।

इन जानवरों का मुख्य भोजन, वैसे तो वृक्षों की छाल और जड़ें आदि हैं लेकिन कुछ प्राणी ऐसे भी हैं, जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है। इनके रहने का स्थान भी जुदा होता है। कुछ बिलों में रहते हैं और कुछ घोंसला बनाकर पेड़ों पर रहते हैं लेकिन बच्चों के मामले में ज्यादा फ़र्क नहीं होता। मादा साल में कई बार बच्चे देती है, जो संख्या में कई होते हैं।

इस वर्ग के जन्तुओं को चार परिवारों में बाँटा गया है, जो इस प्रकार है।

१—मूस-परिवार

२—गिलहरी-परिवार

३—ख़रगोश-परिवार

४—साही-परिवार

मूस-परिवार में हर क़िस्म के मूस और चूहे शामिल हैं जिनके परिचय की हमें ज्यादा ज़रूरत नहीं है। ये छोटे क़द के फ़ुर्तीले जानवर हैं, जो ज़मीन के भीतर अपना ज्यादा समय बिताते हैं। इनमें अक़्ल भी काफ़ी होती है, जिसका ज्यादा हिस्सा वे शायद हम लोगों का नुक़सान करने में बिताते हैं।

गिलहरी-परिवार में गिलहरी के अलावा उसी तरह के और भी कई जानवर हैं, जो प्रायः पेड़ों पर ही अपना ज्यादा समय बिताते हैं। ये बड़े फ़ुर्तीले और सफ़ाई-पसन्द जीव हैं जो बिल्लियों की

तरह अपना बदन चाटकर साफ़ करते रहते हैं। इनकी दुम लम्बी और झबरी होती है और इनके शरीर पर के बाल भी घने, कोमल और चमकीले होते हैं। इनका मुख्य भोजन फल-फूल, नाज और जड़ें हैं।

साही-परिवार के प्राणियों के शरीर पर तेज़ और कड़े काँटे होते हैं, जिससे उन्हें पहचानना कठिन नहीं होता। जब ये बचाव के लिए अपने शरीर के काँटे खड़े कर लेते हैं, तो आक्रमणकारी के लिए बड़ी आफ़त का सामना करना पड़ता है। इनका मुख्य भोजन फल-फूल और जड़ें हैं।

ख़रगोश-परिवार दो उप-परिवारों में बँटा है। पहले में ख़रगोश हैं और दूसरे में रंगदुनी।

ख़रगोश जाति के जीव बहुत डरपोक और चौकन्ने होते हैं। ये बिल नहीं खोदते लेकिन किसी घनी झाड़ी में अपने को इस ख़ूबी से छिपा लेते हैं कि जल्द उनका पता नहीं लगता। इनका कान ही बहुत बड़ा नहीं होता बल्कि सुनने की शक्ति भी बहुत तेज़ होती है। ये बहु-संतानी जीव हैं, जिनका मुख्य भोजन घास पात है।

रंगदुनी दूसरे उप-परिवार का प्राणी है, जो बिल खोदकर रहता है। यह भी डरपोक और बहुत बच्चे देनेवाला जीव है। इसका मुख्य भोजन घास-फूस वग़ैरह है।

१—सूरजभगत

The Large Brown Flying Squirrel
Pteromys oral

सूरजभगत हमारे देश की उड़नेवाली गिलहरियों में से एक है। वैसे तो हमारे देश में इन उड़नेवाली गिलहरियों की कई जातियाँ

पाई जाती हैं लेकिन इन सब की आदतों में एक प्रकार की समानता होने के कारण यहाँ केवल एक का ही वर्णन दिया जा रहा है।

सूरजभगत को मध्यप्रान्त की ओर उरल भी कहते हैं। यह हमारे देश में मध्य-भारत से लेकर दक्षिण-भारत तक के घने जंगलों

सूरजभगत

में पाया जाता है। इसकी एक और उप-जाति भी है जो हिमालय के जंगलों में फैली हुई है।

सूरज भगत का क़द १।। फ़ुट के लगभग होता है जिसके इसके इतनी ही बड़ी दुम भी होती है। इसके बदन पर के बाल काले, सफ़ेद और धुमैले रंग के होते हैं जिनके मेल से इसका रंग सिलेटी भूरा सा जान पड़ता है। पीठ का रंग गहरा होता है और पैर उससे भी गाढ़े रंग के होते हैं। कभी कभी इनका रंग काला भी रहता है। दुम कभी काली रहती है तो कभी गाढ़ भूरी या खैरी, जिसका सिरा काला रहता है। नीचे का सारा हिस्सा सफ़ेद रहता है। कभी कभी इस सफ़ेदी में कुछ राखीपन या भूरेपन की भी मिलावट रहती है।

सूरजभगत के दोनों अगले पैर दोनों पिछले पैरों से एक प्रकार की खाल या झिल्ली से जुटे रहते हैं, जिसके सहारे वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर हवा में तैरकर चला जाता है। इसी से इसको उड़नेवाली गिलहरी भी कहते हैं। ज़मीन पर तो यह उछल उछलकर चलता है और उसमें हमें अपनी गिलहरियों की तरह तेज़ी नहीं दिखाई पड़ती लेकिन जब इसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाना होता है तो यह पेड़ की किसी ऊँची डाल पर चढ़ जाता है और वहाँ से कूदकर हवा में तैरता हुआ दूसरे पेड़ पर पहुँच जाता है। इसकी यह उड़ान कभी कभी ६० गज़ तक लम्बी देखी गई है।

सूरजभगत रात्रिचर जीव है जो दिन को किसी पेड़ के सूराख़ या खोथे में पड़ा रहता है और शाम होने पर अपने खाने की फ़िक्र में बाहर निकलता है। इसे घास के मैदान पसन्द नहीं हैं और न ऐसे ही जंगल जिसमें झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ हों। यह तो ऐसे स्थान को ज्यादा पसन्द करता है जहाँ ऊँचे ऊँचे पेड़ोंवाले जंगल हों जिससे इसे अपनी उड़ान में सहूलियत हो सके। कभी कभी यह गाँव बस्ती के आस-पास के बाग़-बग़ीचों में भी चला आता है।

और कान का ऊपरी भाग भी शामिल है। या तो गाढ़ कत्थई रहता है या कलछौंह गाढ़ लाल कन्धे पर स्याही कुछ ज्यादा हो जाती है और ऐसा ही रंग पीठ के बिचले हिस्से और दुम का भी रहता है। कान के सामने से माथे के ऊपर तक एक हलके रंग की पट्टी रहती है। माथा ललछौंह भूरा या हलका कत्थई रहता है, जिसमें राखी मायल

जंगली गिलहरी

सफ़ेदी रहती है। सर का बग़ली हिस्सा और थूथन, हलका बादामी रहता है और एक कत्थई धारी, कान के पास से गरदन के बग़ल तक पड़ी रहती है। बदन का निचला हिस्सा हलका बादामी या पिलछौंह भूरा रहता है।

कराट जंगलों में रहनेवाली गिलहरी है। यह अपना सारा समय ऊँचे पेड़ों पर ही बिताती है और ज़मीन पर बहुत कम उतरती है। यह किसी घने पेड़ की ऊँची डाल पर टहनियों और पत्तियों का घोंसला बनाती है और उड़नेवाली गिलहरियों की तरह, बग़ल की झिल्लियाँ न होने पर भी, बीस-बीस फ़ुट तक एक डाल से दूसरी डाल पर कूद जाती है।

इसका मुख्य भोजन फल-फूल, बीज, नरम कल्ले और कलियाँ हैं। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़े और चिड़ियों के अंडे भी बड़े मज़े से खाती है। अपने भोजन को यह अगले दोनों पंजों से पकड़-कर कुतर-कुतरकर खाती है। यह दोपहर को कुछ देर के लिए आराम भले ही कर ले वैसे इसे हम सारे दिन अपनी ख़ूराक की तलाश में इधर-उधर फिरते देख सकते हैं।

मादा तीन-चार बच्चे जनती है, जो बड़ी आसानी से पाले जा सकते हैं। ये बच्चे बेवक़ूफ़ से होते हैं और इन्हें कुछ सिखाया नहीं जा सकता।

३—गिलहरी

The Palm Squirrel—Sciurus palmarum

गिलहरियों से हम सभी परिचित हैं। फिर हमारी यह धारीदार गिलहरी तो चूहों की तरह हमारे घरों में फिरा करती है। गाँव में या बाग़-बग़ीचों के बँगलों में इन गिलहरियों की ढिठाई से कभी कभी परेशान हो जाना पड़ता है।

इस गिलहरी को 'गिल्ली' या 'चिखुरा' भी कहते हैं। देहात में तो यह 'गुलकी' के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे देश में शायद ही कोई जगह हो जहाँ यह न पाई जाती हो। हाँ मालाबार-तट और बंगाल से पूरब की ओर यह नहीं दीख पड़ती। इसकी पश्चिमी सीमा भी सिन्ध तक है जहाँ यह उतनी बहुतायत से नहीं मिलती।

गिलहरी अपनी चंचलता और फुर्ती के लिए प्रसिद्ध है। दिन भर एक डाल से दूसरी डाल पर और ज़मीन पर भी इधर से उधर फिरना, यही जैसे इसके जीवन का मुख्य काम है। पेड़ों पर तो यह एक डाल पर से दूसरी डाल पर इस सफ़ाई से कूदती है कि शायद ही कभी इसे किसी ने ज़मीन पर गिरते देखा हो। ज़मीन पर जब यह ऊँची जगह से कूदती है तो फ़ौरन ही उठकर फुदकने लगती है जैसे इसे चोट ही न लगी हो।
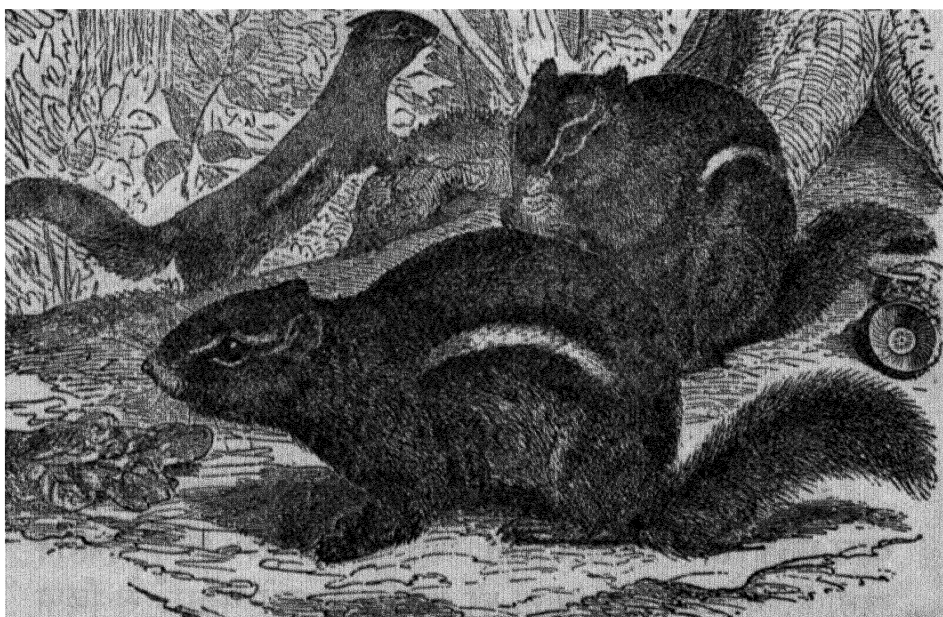
गिलहरी

हमारी यह धारीदार गिलहरी लगभग ६ इंच की होती है। इसकी झबरी दुम भी इससे कम नहीं रहती। इसके बाल बहुत मुलायम होते हैं।

इसकी पीठ का रंग भूरा या कलछौंह सिलेटी मायल भूरा रहता है जिस पर तीन सफ़ेद खड़ी खड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। बीच की धारी कुछ बड़ी होकर दुम की जड़ तक पहुँच जाती है। पीठ पर के

बाल कलछौंह रहते हैं लेकिन सर का और बग़ल का रङ्ग उससे हलका रहता है। नीचे का रंग सफ़ेद रहता है, जिसमें कभी कभी राखीपन भी झलकता रहता है। दुम कलछौंह या धुमैले रंग की होती है लेकिन बालों का कुछ हिस्सा सफ़ेद होने के कारण दुम ही नहीं बल्कि सारे बदन के रंग में कुछ सफ़ेदी सी दीख पड़ती है।

यह गिलहरी हमारे यहाँ की बहुत ही परिचित जीवों में से एक है, जो बस्तियों के पास ही रहना ज़्यादा पसन्द करती हैं। इसे अपने बदन की सफ़ाई बहुत पसन्द है और इसे हम अकसर बिल्लियों की तरह अपना बदन चाट चाटकर साफ़ करते देख सकते हैं।

कुतरनेवाले जीवों की श्रेणी में होने के कारण, इसके कृंतक दाँत बहुत तेज़ होते हैं, जिनसे यह कड़े से कड़े फलों के छिलकों को आसानी से कुतर डालती है।

इसका मुख्य भोजन फल-फूल, नाज और बीज वग़ैरह हैं लेकिन यह कीड़े मकोड़े भी खा लेती है। कीड़ों में इसे दीमक और पतिंगे जैसे ज़्यादा पसन्द आते हैं और मौक़ा पाने पर यह चिड़ियों के अंडों पर भी हाथ साफ़ कर देती है।

अन्य गिलहरियों की तरह अपने भोजन के मामले में यह भी बहुत सतर्क होती है और जिस ऋतु में खाने की चीज़ें इफ़रात रहती हैं, यह उन्हें कई स्थानों पर जमा करके बड़ी चतुराई से छिपा देती है। चींटियों जैसी यह आदत इसने कैसे सीख ली, इसका तो कुछ पता नहीं चलता लेकिन इसका नतीजा यह ज़रूर होता है कि इसे किसी मौसम में खाने की तकलीफ़ नहीं होती।

इसका घोंसला घास-फूस, ऊन और इसी प्रकार के अन्य पदार्थों का बना होता है जो काफ़ी बड़ा और भद्दा-सा होता है। इसके घोंसले पेड़ों के अलावा मकान के कार्निसों, सूराखों और खपड़ैल या छप्पर के नीचे भी देखे जा सकते हैं।

मादा एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है, जो बड़ी आसानी से पाले जा सकते हैं।

४—हिरना मूसा

The Indian Gerbille—Gerbillus indicus

हिरना मूसा को यह नाम इसके बेडौल पैरों की कृपा से मिला है, जिसके कारण यह भागते समय हिरन सी छलाँगें भरता है। इसकी पिछली टाँगें तो लगभग ६ इञ्च लम्बी होती हैं लेकिन अगले पैर एक इंच से बड़े नहीं होते। इससे देखने में यह कंगारू सा जान पड़ता है। कंगारू की एक और आदत इसमें होती है कि यह खड़े रहने र और छलाँगें मारने पर अपनी दुम का थोड़ा सहारा लेता है।
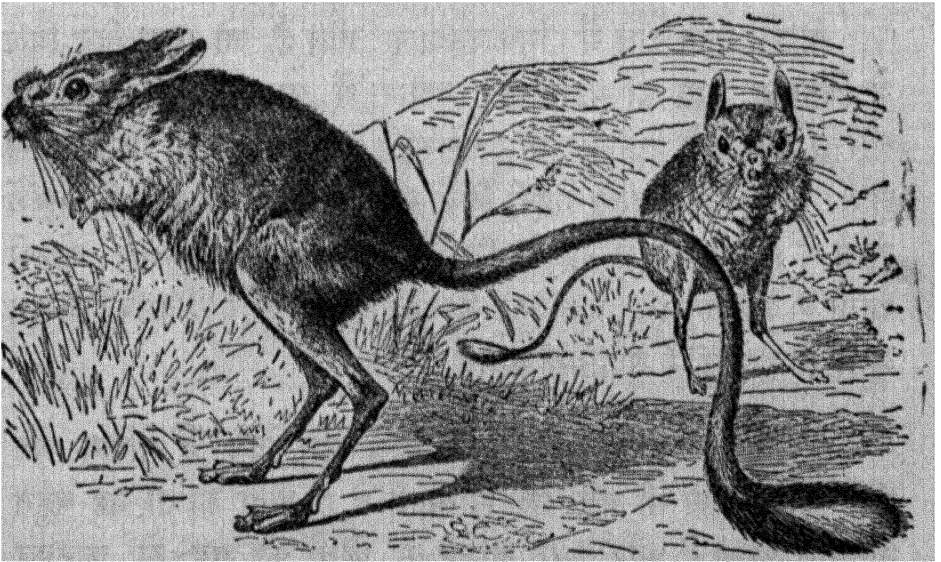
हिरना मूसा

इसकी एक एक छलाँग चार-पाँच गज़ की होती है और छलाँगें भरते समय ऐसा जान पड़ता है कि जैसे यह उड़ा जा रहा हो क्योंकि उस समय इसकी रफ़्तार तेज़ घोड़े से कम नहीं होती।

हिरना मूसा हमारे देश में प्रायः सब जगह उपयुक्त स्थानों

में पाया जाता है लेकिन बंगाल से पूरब में इसका पता नहीं चलता।

यह ६-७ इञ्च का छोटा सा जानवर है जिसकी लंबी दुम इसके शरीर से कुछ बड़ी होती है। स्थान-स्थान के हिरना मूसों में कुछ भेद रहता है लेकिन उनकी आदतें एक जैसी ही होती हैं।

इसके बदन का रंग हलका ललछौंह भूरा होता है, जिसमें कभी कुछ राखीपन की झलक भी रहती है। नीचे का हिस्सा सफ़ेद रहता है और पीठ के निचले हिस्से के कुछ बाल कलछौंह होते हैं। थूथन के पास आँख के कुछ पीछे और कान के पीछे का कुछ हिस्सा सफ़ेद रहता है। दुम के सिरे के बड़े बाल काले रहते हैं।

हिरना मूसा रात में निकलनेवाला जीव है, जो सारा दिन बिल में बिताकर रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलता है। इसे वीरान और ऐसे रेतीले स्थान पसन्द हैं जहाँ खेतों का पास-पड़ोस न हो। वहाँ यह बहुत गहरी बिलें खोद लेता है जिनमें कई सुरंगें होती हैं। हर एक सुरंग के सिरे पर एक छोटी सी गोल कोठरी रहती है जो लगभग एक फ़ुट लम्बी होती है और जिसको हिरना मूसा घास-फूस से मुलायम बनाये रहता है।

हिरना मूसा का मुख्य भोजन घास और जड़ें हैं लेकिन यह बीज और ग़ल्ला भी बड़े मज़े में खाता है। खेतों का तो यह बहुत नुक़सान करता है और ज्वार बाजरे के पौधों को जड़ से काटकर उनकी बालों को साफ़ कर डालता है। अन्य चूहों की तरह ग़ल्ला जमा करने की आदत हिरना मूसा में भी है। यह अपने बिलों में काफ़ी अनाज जमा किये रहता है।

इसकी मादा वैसे तो एक बार में ८ से १२ तक बच्चे देती है लेकिन कभी कभी बच्चों की संख्या इससे भी ज्यादा हो जाती है।

५—काला चूहा

The Common Indian Rat—Mus rattus

चूहे किस जगह से सारे संसार में फैल गए इसका कुछ ठीक ठीक पता नहीं चलता लेकिन इतना तो प्रत्यक्ष है कि आज सारी पृथ्वी पर मनुष्यों के बाद शायद इन्हीं का राज्य है। आज भूरे चूहे ने ज़रूर काले चूहे को हरा कर कई स्थानों से उसका अस्तित्व तक मिटा दिया है लेकिन एक समय ऐसा भी था जब काले चूहे का ही साम्राज्य हमारी पृथ्वी पर फैला था।
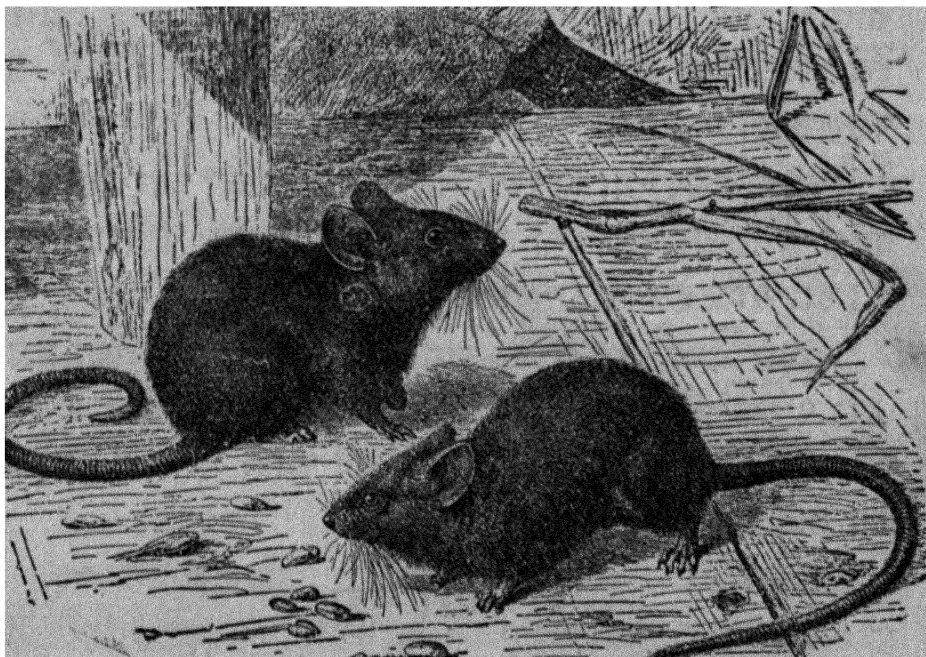
काला चूह

आज भी काले चूहे सारे संसार में फैले हुए हैं। हमारे देश में भी शायद ही कोई स्थान ऐसा हो जहाँ ये न पाए जाते हों। हाँ, ८००० फ़ुट से ज़्यादा ऊँची जगह पर ये नहीं दिखाई पड़ते।

इनका शरीर ५ से ८ इंच का होता है। इसके अलावा इनकी इतनी ही लम्बी दुम रहती है।

इस चूहे का रंग धुर काला नहीं होता—जैसा कि इनके नाम से जान पड़ता है। इनका ऊपरी हिस्सा प्राय: गाढ़ भूरा या खैरा होता है। कभी कभी ये कलछौंह या काले भी होते हैं। पेट का हिस्सा प्राय: सफ़ेद ही रहता है, लेकिन कभी कभी यह गन्दा सफ़ेद, राखी या भूरा भी रहता है।

काला चूहा हमारा बहुत परिचित जानवर है, जिससे शायद ही कोई घर ख़ाली हो। यह ज़मीन में बिल बनाकर तो रहता ही है साथ ही साथ यह पेड़ों पर घोंसला बनाकर भी रहता है। घरों में इसे अकसर छप्परों, खपरैलों और लकड़ी की छतों के बीच में रहना पसंद आता है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो फल, अनाज और तरकारियाँ वग़ैरह हैं लेकिन यह किसी हद तक सर्वभक्षी भी कहा जा सकता है। हाँ, माँस इसे और चूहों से कम पसंद है।

इसकी मादा साल में कई बार बच्चे देती है। हर एक झोल में ७ से ९ तक बच्चे रहते हैं। बच्चों की आँख पैदा होने के समय बंद रहती है और कुत्तों की तरह इनकी आँख खुलने में कई दिन लग जाते हैं।

६—भूरा चूहा

The BrownRat—Mus decumanus

भूरे चूहों का जन्म-स्थान चीनी मंगोलिया माना जाता है लेकिन अब तो ये सारे संसार में फैल गए हैं। हमारे देश में भी अब ये काले चूहों को परास्त करके फैलते जा रहे हैं और यद्यपि अभी ये बड़े शहरों, गाँवों, चौड़ी सड़कों और बड़ी नदियों के आसपास ही

ज्यादातर पाए जाते हैं लेकिन वह दिन दूर नहीं जब इनसे हमारे देश का कोई कोना खाली न बचेगा।

यह चूहा काले चूहे से कुछ बड़ा होता है। इसकी औसत लम्बाई ७ इंच की मानी गई है। वैसे ये इससे भी बड़े होते हैं। इसकी दुम भी ७ से ११ इंच तक रहती है।
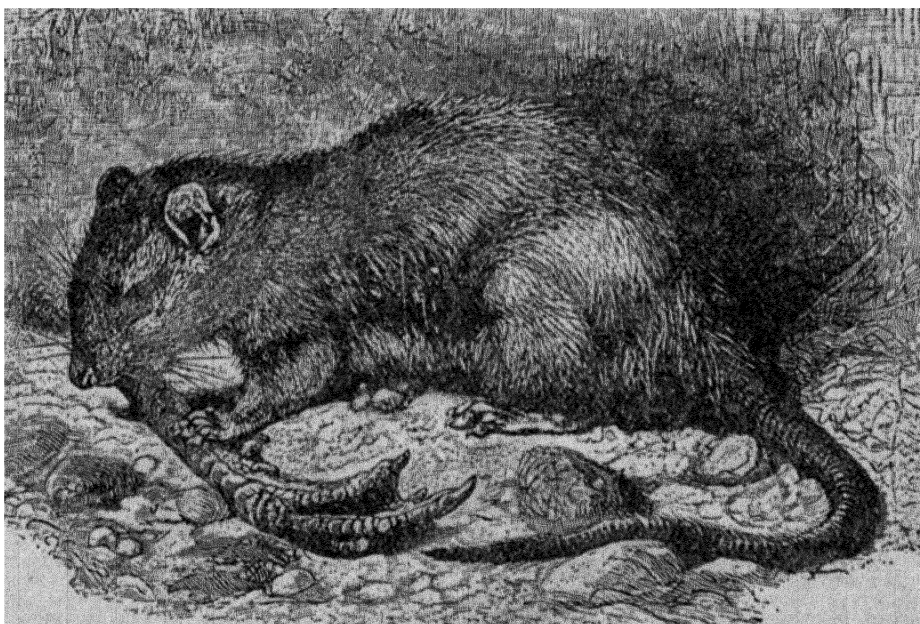
भूरा चूहा

इनके बाल कड़े और भूरे होते हैं। दुम, सर और धड़ से कुछ छोटी होती है और कान काले चूहे की तुलना में छोटे होते हैं।

इसका ऊपर का रंग भूरा होता है जो पीठ पर ज्यादा गहरा हो जाता है। नीचे का रङ्ग सफ़ेद, सफ़ेदी मायल भूरा या हलका भूरा रहता है।

भूरा चूहा बहुत अक्खड़ और सर्वभक्षी जीव है, जिसे आबादी के आस-पास रहना ही ज्यादा भाता है। यह घरों में और बाहर

खेतों के आस-पास बिल बनाकर रहता है और इससे मनुष्यों का काफ़ी नुक़सान होता रहता है।

भूरा चूहा बहु-सन्तानी जीव है, जिसकी मादा साल में कई बार बच्चे देती है। हर बार इन बच्चों की संख्या ४ से १२ या इससे भी ज्यादा होती है।

७—चुहिया

The Commou House mouse—Mus musculus

चुहिया तो हमारे घरों में गौरैया और कौओं की तरह ऐसी हिल मिल गई है कि जान पड़ता है कि यह हमारे घर के प्राणियों में से एक है।
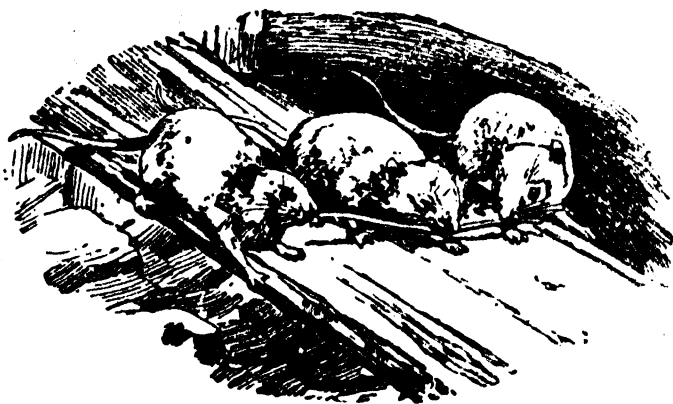
चुहिया

चुहिया हमारे यहाँ पञ्जाब, सिंध, राजपूताना और युक्तप्रान्त के कुछ पश्चिमी हिस्सों को छोड़कर सारे भारत में फैली हुई है।

हमारे यहाँ शायद ही कोई घर ऐसा होगा जहाँ वे न पहुँचती हों। घरों के अलावा ये घर के पास के खेतों और बाग़ों में भी चली जाती हैं, जैसे मूस खेत से घर में चले आते हैं लेकिन इनके रहने की मुख्य जगह हमारे घर ही हैं।

इनका क़द मूस की तरह २½–३ इञ्च का होता है लेकिन इनकी दुम अक्सर इनके शरीर से कुछ लम्बी रहती है। वैसे कभी कभी छोटी दुमवाली चुहिया भी पाई जाती हैं। इनके शरीर पर के बाल छोटे और मुलायम होते हैं और इनके कान बड़े और गोलाकार रहते हैं।

चुहिया के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका या गाढ़ भूरा और नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी होता है। नीचे का हिस्सा और चूहों की तरह कभी-कभी सफ़ेद भी पाया गया है।

चुहिया बहुत तेज़ और चालाक तो होती ही है साथ ही साथ यह मूस की तरह चढ़ने और कूदने में भी उस्ताद होती है। यह वैसे तो सर्वभक्षी जीव है लेकिन यह अपना पेट ज्यादातर गल्ला और मनुष्यों के बचे-खुचे जूठन से ही भरती है।

इसकी मादा साल में चार-पाँच बार बच्चे देती है, जिनकी आँखें पैदा होने के समय बन्द रहती हैं। एक बार में ये चार से आठ तक बच्चे देती हैं—जो साल भर पूरा होन से पहले ही बच्चे पैदा करने लगते हैं।

इनकी आदतें और रहन-सहन बहुत कुछ अन्य चूहों से मिलती-जुलती होती हैं। इससे उन्हीं बातों को यहाँ फिर स दुहराने की ज़रूरत नहीं जान पड़ती।

८—मूस

The Common Indian Field Mouse—Mus buduga

मूस भी हमारा कम परिचित चूहा नहीं है। वैसे तो यह खेत का चूहा है और ज्यादातर खेतों और बाग़-बग़ीचों में ही बिल खोदकर रहता है लेकिन कभी कभी यह हमारे खेत के पास के घरों में भी चला आता है। इसका क़द काले और भूरे चूहे से छोटा होता है। इससे इसको पहचानने में ज्यादा दिक्क़त नहीं होती।

मूस वैसे तो हिन्द प्रायद्वीप के निवासी हैं लेकिन थोड़ी बहुत सख्या में ये हमारे देश के और स्थानों में भी पाये जाते हैं। हाँ, पंजाब के पश्चिमी हिस्से और हिमालय की ओर ये नहीं मिलते।

मूस के बदन के बाल छोटे और घने होते हैं। इनकी दुम पतली और छोटी होती है। इनके कान औसत लम्बाई के, गोलाई लिए रहते हैं।
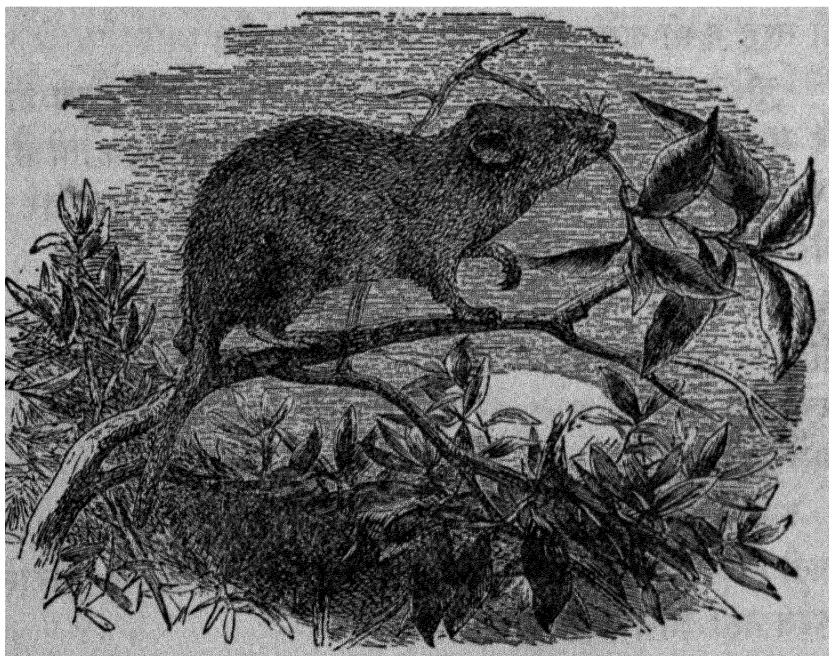
मूस

इनका रंग कभी पिलछौंह राखी और कभी सिलेटी भूरा रहता है लेकिन नीचे का हिस्सा हमेशा सफ़ेद ही रहता है। पीठ का दुम की ओर का आधा हिस्सा गहरा रहता है।

क़द में मूस, जैसा ऊपर बता आया हूँ, चूहों से छोटे होते हैं। इनके बदन की लम्बाई २॥ से ३ फ़ुट तक होती है, जिसमें इनकी २ से २॥ फ़ुट लम्बी दुम शामिल नहीं है।

मूस दरअसल खेत के चूहे हैं, जो खेतों में बिल खोदकर रहते हैं। ये जंगलों और बाग़ों में रहते हैं और ऐसी जगहों के निकट के मकानों में भी इनकी पहुँच हो जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि इन चूहों के बिल के मुँह पर अकसर छोटे कंकड़-पत्थरों का ढेर लगा रहता है। मूस कुतरने और कूदने में बहुत उस्ताद होते हैं और जिस घर में इनका प्रवेश हो गया, वहाँ की चीज़ों का बस सफ़ाया ही समझिए।

इनकी और बातें काले और भूरे चूहों से मिलती-जुलती होती हैं लेकिन इनकी मादा एक बार में तीन ही चार बच्चे देती है।

९—घूँस

The Bandicoot Rat—Nesocia bandicota

घूँस हमारे यहाँ का सबसे बड़ा चूहा है, जो खेतों में बिल बनाकर रहता है। इसकी बिलें अकसर आबादी के पास के खेतों में होती हैं, जहाँ से यह खेत और घर दोनों जगहों के गल्ले को नुक़सान पहुँचाता है।

हमारे यहाँ यह दक्षिण बंगाल, सिन्ध और पंजाब को छोड़कर सारे देश में फैला हुआ है। इसकी अधिक संख्या भारत के दक्षिणी हिस्से में पाई जाती है।

घूँस एक फ़ुट से सवा फ़ुट लम्बा चूहा है, जिसके क़रीब १ लम्बी दुम होती है। इसका वजन भी सेर, सवा सेर से कम नहीं होता।

इसके बदन का ऊपरी हिस्सा कलछौंह भूरा रहता है, जिसमें कभी कभी बादामी या सिलेटी झलक भी रहती है। यह झलक अकसर इसके बगली हिस्से की ओर रहती है। नीचे का हिस्सा भूरापन लिए राखी रहता है।

इसके शरीर पर के बाल कड़े होते हैं, जो किसी किसी स्थान पर दो तीन इंच तक लम्बे हो जाते हैं।

घूँस बस्ती के आस-पास के खेतों में तो रहता ही है, कभी कभी यह जंगलों में भी अपने बिल बनाता है। यह और चूहों की तरह तेज़ नहीं होता और अपने बड़े शरीर के कारण इसमें ज़्यादा फुर्ती भी नहीं होती। आलसी होने के साथ ही साथ यह डरपोक भी बेहद होता है और घेरे जाने पर यह सुअर की तरह घुरघुराने लगता है।

घूँस

मनुष्यों के लिए घूँस सब चूहों से ज्यादा हानिकारक है। ग़ल्ले-गोदामों में अगर इनकी पहुँच हो गई तो ये बहुत ज्यादा नुक़सान कर डालते हैं। इतना ही नहीं घूँस अक्सर पालतू चिड़ियों को भी नेवले की तरह काट डालता है।

घूँस का मुख्य भोजन ग़ल्ला है लेकिन उसके साथ ही साथ यह फल, फूल, मांस और अन्य चीज़ें भी खा लेता है।

इसकी मादा साल में कई बार बच्चे देती है, जिनकी संख्या हर बार ८ से १० तक रहती है। इसकी और बातें अन्य चूहों से मिलती जुलती रहती हैं।

१०—साही

The Indian Porcupine—Hystrix leucura

साही वैसे तो हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध और परिचित जीव है लेकिन रात्रिचर होने के कारण हम इसे देख नहीं पाते। अपने काँटों के कारण यह और जानवरों में छिप नहीं पाती और हम देखते ही इसे पहचान लेते हैं।
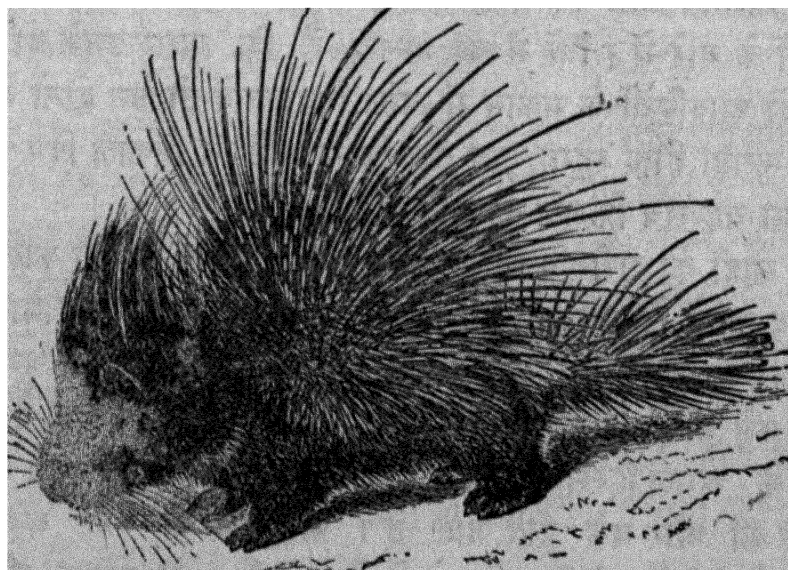
साही

साही दक्षिण बंगाल को छोड़कर सारे भारत में फैली हुई है। हिमालय के उत्तरी हिस्से में तो यह पहाड़ की तराइयों तक ही रहती है लेकिन पश्चिम की ओर यह पहाड़ों में भी कुछ दूर तक चली जाती है।

साही लगभग ३० इंच लम्बी होती है। इसका शरीर एक प्रकार के लम्बे और कड़े काँटों से ढका रहता है। दुम वैसे तो ४–५ इंच लम्बी रहती है लेकिन काँटों के साथ इसकी लम्बाई भी ७–८ इंच तक पहुँच जाती है। इसका वज़न १२ से १५ सेर तक होता है।

साही के काँटे इसकी आत्मरक्षा के लिए, इसके हथियार हैं जो देखने में बहुत भले लगते हैं। ये काँटे मोटे, पतले और छोटे तो होते ही हैं, साथ ही साथ इनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जो एकदम खोखले रहते हैं। जब साही पर कोई शत्रु आक्रमण करता है तो वह सारे बदन के काँटे खड़े कर लेती है और तब उसकी दुम के पास खोखले काँटे एक तरह की आवाज़ करने लगते हैं। साही के काँटों के बारे में गाँवों में यह प्रसिद्ध है कि अगर इनके दो काँटों को दो आदमियों के मकान में खोंस दिया जावे तो उन दोनों में तब तक झगड़ा होता रहेगा, जब तक कि ये काँटे न निकाल दिए जावें। लेकिन यह सब फिजूल की बातें हैं।

साही का शरीर कलछौंह भूरे रंग का होता है, जो काले और सफ़ेद काँटों से भरा रहता है। इसके सर पर बहुत कड़े बालों का गुच्छा सा रहता है, जो ८–१० इंच लम्बा होता है। थूथन भी घने कड़े बालों से भरा रहता है। आगे का हिस्सा, अगले पैर और पेट के अगले हिस्से में छोटे छोटे काँटे और बाल रहते हैं, जो पीछे की ओर बड़े होते जाते हैं। पीठ पर के काँटे बड़े और लचीले होते हैं—लेकिन पिछले हिस्से के काँटे छोटे होकर भी बहुत कड़े और नोकीले रहते हैं। ये कड़े काँटे बड़े काँटों के नीचे दबे रहते हैं और इन्हें उसी समय देखा जा सकता है, जब साही अपनी रक्षा के लिए काँटों को खड़ा कर लेती है।

इन काँटों का रंग मुख्तलिफ़ होता है। गले और गाल पर के काँटों के सिरे सफ़ेद रहते हैं, जिसके कारण साही के गरदन पर एक

सफ़ेद पट्टी सी जान पड़ती है। पीठ पर के काँटे काले होते हैं, जिन पर कई जगह सफ़ेद छल्ले पड़े रहते हैं। दुम के पास के काँटे एकदम सफ़ेद होते हैं।

साही उन रात्रिचर जीवों में से नहीं है, जो रात के अलावा अकसर दिन में भी दिखलाई पड़ जाते हैं। इसके बाहर निकलने का समय बहुत पक्का है और यही कारण है कि सारे भारत में फैले होने पर भी हम साही को देख नहीं पाते। यह अँधेरा होते ही अपने बिल से खाने की तलाश में निकलती है और सबेरा होने से पहले ही इधर-उधर का चक्कर लगाकर अपने बिल में लौट आती है। मैंने एक साही पाली थी, जो एकदम पालतू हो जाने पर भी रात होते ही घर से बाहर निकल जाती थी और सबेरा होने से पहले ही घर में फिर वापस चली आती थी।

साही बहुत सीधा जानवर है। इसी से शायद इतने तेज़ हथियारों के होते हुए भी, यह अकारण किसी पर आक्रमण नहीं करती। हाँ, शत्रु जब इस पर हमला करते हैं तो इसे मजबूरन अपने काँटों को खड़ा करके, अपना बचाव करना पड़ता है। ऐसे समय साही सामने से आक्रमण नहीं करती, बल्कि शिकारी की ओर अपनी दुम करके वह आगे बढ़ती है। कभी-कभी इसका हमला बगल की ओर से भी होता है क्योंकि एक तो इसी ओर इसके कड़े काँटे रहते हैं और दूसरे इसका सर बहुत नाज़ुक होता है। जिसको बचाना इसके लिए ज़रूरी हो जाता है।

साही बिल खोदकर रहनेवाला जीव है। इसके बिल काफ़ी लम्बे और कई शाखाओंवाले होते हैं। ये बिल प्रायः नदी-नालों के आस-पास के या अन्य जलाशयों के निकट के भीटों में होते हैं। कभी-कभी इनके बिल पानी से दूर के भीटों और नालों में भी रहते हैं।

यह शाकाहारी जीव है इसे जड़ें बहुत पसंद हैं। तरकारी के बाग़ की तो यह जानी दुश्मन है। वैसे इससे और फ़सलों का नुक़सान होता है लेकिन आलू, शकरकंद, गाजर, मटर, मूँगफली और इस प्रकार की चीज़ों के लिए तो यह अपनी जान पर खेलकर बाग़ों में घुस जाती है।

साही का मांस स्वादिष्ट होता है लेकिन उसमें कभी-कभी एक प्रकार की मिट्टी की सी खसखसाहट सी जान पड़ती है। इसकी मादा एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है जिनकी आँखें पैदा होते समय खुली रहती हैं। इन बच्चों के बदन पर छोटे और मुलायम काँटे रहते हैं, जो कुछ दिन पर कहीं जाकर बड़े और कड़े हो पाते हैं।

११—ख़रगोश

The Common Indian Hare—Lepus ruficaudatus

ख़रगोश वैसे तो हमारे देश में सभी जगह पाये जाते हैं लेकिन इनकी कई जातियाँ हैं जिन्होंने अपने अपने लिए देश का थोड़ा थोड़ा हिस्सा बाँट-सा लिया है। जिस हिस्से में एक जाति के ख़रगोश रहते हैं वहाँ दूसरी जाति के नहीं पाए जाते। इनकी सबसे प्रसिद्ध जाति, जिसका वर्णन यहाँ दिया जा रहा है, सिंध और पश्चिमी पंजाब को छोड़कर सारे भारत में फैली हुई है। दूसरी जाति, के ख़रगोश सिंध, पंजाब और राजपूताने की ओर पाये जाते हैं और तीसरी जाति ने अपना राज्य हमारे प्रायद्वीप में क़ायम कर रखा है।

ख़रगोश की लम्बाई १८ से २० इंच तक होती है। इसके अलावा इसके ३-४ इंच की छोटी दुम भी रहती है। वज़न में ये २—२॥ सेर के होते हैं और इनकी मादायें नर से बड़ी होती हैं।

इनके बदन का ऊपरी हिस्सा हलका खैरा होता है। जिसमें पीठ का कुछ हिस्सा कलछौंह रहता है। मुँह भी कलछौंह रहता है और सीने और टाँगों का रंग ललाई लिए भूरा रहता है। इनके गले का कुछ हिस्सा, ठुड्ढी और अगले पैर से नीचे का सारा हिस्सा, सफ़ेद रहता है।
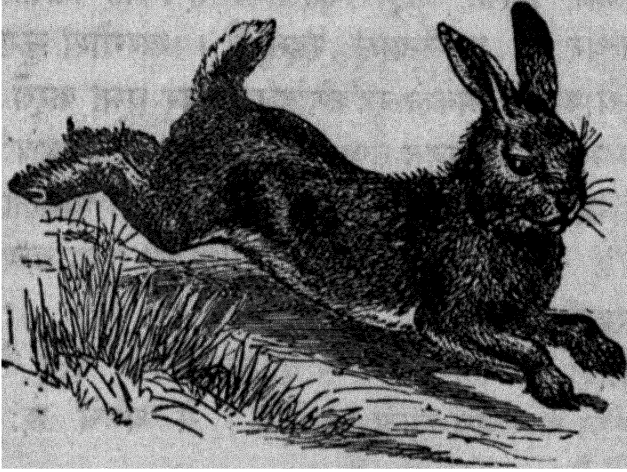
ख़रगोश

ख़रगोश के कई नाम हमारे यहाँ प्रचलित हैं। इन्हें खरहा, चौगड़ा, लमहा और ससा भी कहते हैं। हमारे यहाँ इनका शिकार पहले तो कुत्तों से लोग बहुत करते थे लेकिन अब ज्यादातर लोग इनको बन्दूक़ से मारते हैं। इनका गोश्त काफ़ी स्वादिष्ट होता है।

ख़रगोश तितरे-बितरे जंगलों, झाड़ियों या घास से भरे हुए मैदानों और नदियों के पास के नालों या कछारों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं क्योंकि इनका मुख्य भोजन घास या छोटे छोटे नरम पौधे हैं और ये सब चीजें इन्हें ऐसी जगह बहुतायत से मिल जाती हैं। ये फूल और तरकारी के बाग़ों का भी काफ़ी नुक़सान करते हैं और इनके उत्पात से कभी-कभी परेशान हो जाना पड़ता है।

हमारे यहाँ के ख़रगोश बिल खोदकर नहीं रहते। कभी-कभी कुत्तों के डर के मारे, ये भले ही किसी दूसरे जानवर के बिल में घुस जावें, वैसे ये हमेशा जमीन के ऊपर ही रहना पसन्द करते हैं। इनकी चराई का समय सबेरे, शाम और रात का है। दिन को ये किसी एक निश्चित स्थान पर रोज़ आकर आराम करते हैं। यह स्थान इनका अड्डा कहलाता है। यह किसी झाड़ी या घास या पत्थर के आस-पास रहता है। ख़रगोश झुण्ड में नहीं रहते बल्कि ये अकेले अकेले रहकर इधर-उधर घूमा करते हैं।

ख़रगोश भागने में बहुत तेज़ होते हैं। भागते समय ये लम्बी-लम्बी छलाँगें मारते हैं क्योंकि इनकी पिछली टाँगें अगली टाँगों से बड़ी होती हैं और इसीलिए इन्हें कंगारू की तरह छलाँग मारने में आसानी रहती है।

इनकी मादा हर महीने, एक से दो तक बच्चे देती है, जिनकी आँखें पैदा होने के समय खुली रहती हैं। ये बच्चे छः महीने के बाद ही बच्चे पैदा करने लगते हैं।

१२—रंगदुनी

The Himalayan Mouse Hare or Pika
Lagomys roylei

रंगदुनी हिमालय के निवासी हैं। वहाँ ये काश्मीर से लेकर धुर पूरब तक फैले हुए हैं। हमारे देश में हिमालय को छोड़कर ये और कहीं नहीं पाए जाते। वहाँ भी इनके रहने का स्थान १२ हज़ार फ़ुट से १४ हज़ार फ़ुट तक है। कभी-कभी ये इससे भी ऊपर चढ़ जाते हैं।

रंगदुनी ख़रगोश का ही भाई-बन्धु है इसे पहाड़ी ख़रगोश कह सकते हैं लेकिन इसके ख़रगोशों की तरह लम्बे कान नहीं होते। दुम तो इनके होती ही नहीं—उतनी छोटी भी नहीं, जितनी ख़रगोशों के होती है।

रंगदुनी को रंगरूट भी कहते हैं। यह ६–६॥ इंच का बिना दुम का जानवर है। इसका ऊपरी हिस्सा कत्थई भूरे रंग का होता है। इस रंग में कभी-कभी सिलेटी और कभी-कभी कलछौंह की मिलावट भी रहती है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का या सफ़ेदी मायल रहता है। पैर और दोनों बगली हिस्से भूरे रहते हैं।
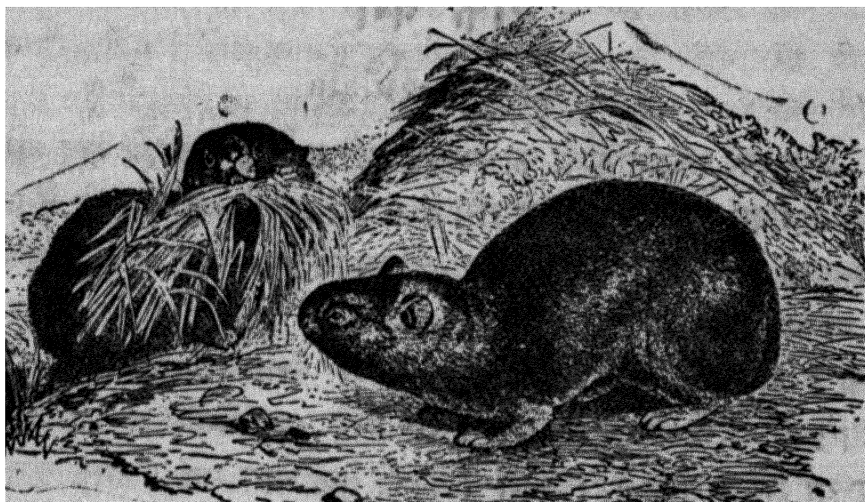
रंगदुनी

रंगदुनी गिरोह बाँधकर रहनेवाले जीव हैं जो अकसर ऐसे पथरीले मैदानों में रहते हैं, जहाँ वे आसानी से बिल बना सकें और पत्थरों के बीच में छिप सकें। हिमालय के पूर्वी हिस्से में ये ज़्यादा-तर चीड़ के ढलुवे जंगलों में रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये बहुत चौकन्ने जीव हैं, जो प्राय: अपने बिलों के आस-पास ही चरते हैं। किसी की आहट पाते ही ये फ़ौरन अपने बिल में घुस जाते हैं।

इनकी मादा एक बार में ३-४ बच्चे देती है लेकिन साल में कितनी बार ये बच्चे पैदा करती है, इसका अभी तक ठीक पता नहीं चल सका है।

८

शफ़ वर्ग

Order Uugulata

शफ़ वर्ग स्तनप्राणियों का सबसे बड़ा वर्ग है। इसमें सब खुर-वाले जानवर सम्मिलित किये गये हैं। ये प्राणी शाकाहारी हैं जो घास-पात और जड़ों पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इन्हें न तो मांसभक्षियों की तरह नोकीले और तेज़ कुकुरदन्त की ज़रूरत होती है और न बानरों की तरह लम्बी उँगलियोंवाले हाथ-पाँव की। इसी से प्रकृति ने उनके पैरों के सिरे पर उँगलियों की जगह खुर या सुम बनाये हैं, जिससे वे काफ़ी तेज़ भाग सकें। उनके कृंतक दाँत भी छेनी की तरह तेज़ धारवाले बनाये गये हैं, जिससे उनको घास-पात चरने में ज़रा भी दिक्क़त नहीं होती। कुकुरदन्त या तो होते ही नहीं और अगर किसी के हुए भी तो बहुत छोटे-छोटे और बेकार से। हाँ, इनकी दाढ़ें ज़रूर बहुत चौड़ी होती हैं।

उपरोक्त बातों में समानता होते हुए भी, इस वर्ग के जानवरों के क़द और शकल-सूरत में इतना भेद रहता है कि हमें जल्द इन्हें एक वर्ग का प्राणी मानने में हिचकिचाहट सी होती है। हाथी, हिरन, ऊँट और सुअर को भला कौन आसानी से एक वर्ग का प्राणी कहेगा, वैसे वे सब खुरदार प्राणी हैं। इसी दिक्क़त के कारण जीव-विज्ञान के विद्वानों ने पहले इस वर्ग को इस प्रकार दो उपवर्गों में विभाजित किया है। १—हाथी उपवर्ग या मोटी खालवाले जीव। २—गो उपवर्ग या जुगाली करनेवाले जीव। अब प्रत्येक उपवर्ग का

संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जा रहा है जिससे उनके अन्तर्गत जीवों के बारे में कुछ जानकारी हो जावे।

हाथी उपवर्ग—इस उपवर्ग के जीव अपनी मोटी खाल के कारण जुगाली करनेवाले जीवों से अलग हैं ही लेकिन एक और गुण जिससे ये उनसे अलग हैं, वह है इनके सर पर से सींगों का अभाव। इनके रोमंथकारियों की तरह सींग नहीं होते न वे उनकी तरह जुगाली ही करते हैं। ये सब शाकाहारी जीव हैं जिनमें से अधिकांश अपने स्थूल और भीमकाय शरीर के लिए प्रसिद्ध हैं। इनको निम्नांकित चार परिवारों में बाँटा गया है।

१—हाथी-परिवार

२—गैंडा-परिवार

३—घोड़ा-परिवार

४—सुअर-परिवार

हाथी-परिवार में हाथी अकेला ही है जो अपनी लम्बी सूँड़ के कारण और सब जानवरों से अलग कर दिया गया है। सूँड़ ही हाथी का हाथ है और वही उसकी स्पर्श और घ्राणेन्द्रिय है। इसी सूँड़ के सहारे वह डालों को तोड़ता है और खाने के लिए उसकी छाल बड़ी सफ़ाई से उधेड़ लेता है। इसी से उसको कृंतक दाँतों को इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं पड़ती और वे नर हाथियों में कई फ़ुट लम्बे बढ़कर उसकी सूँड़ के दोनों ओर बाहर निकले रहते हैं।

हाथियों की एक जाति और होती है जो अफ़्रीका के जंगलों में पाई जाती है। उसकी शकल-सूरत हमारे यहाँ के हाथियों से कुछ जुदा होती है। उसके कान तो बड़े होते ही हैं, क़द में भी वह यहाँ के हाथियों से बड़ा होता है। उसके नर और मादा दोनों के बड़े-बड़े दाँत बाहर निकले रहते हैं।

हाथी जंगलों में रहनेवाले यूथचारी या झुंड में रहनेवाले जीव

हैं। मनुष्य इन्हें जंगलों से पकड़कर पालतू कर लेते हैं और सवारी के अलावा सामान ढोने का काम लेते हैं। यह स्तनप्राणियों में सबसे बड़े क़द का जीव है। लेकिन इतना भारी शरीर पाकर भी यह आलसी ज़रा भी नहीं होता। दौड़ने में असमर्थ होने पर भी यह सौ दो सौ गज़ तक इतनी तेज़ी से झपटता है कि आदमी तेज़ दौड़कर भी इससे नहीं बच सकता।

गैंडा परिवार—गैंडे को हमने देखा भले ही न हो लेकिन उसका नाम भी न सुना हो यह संभव नहीं। इसकी नाक के ऊपर एक खाग या सींग होती है जो रोमंथकारियों की सींग की तरह हड्डी की नहीं होती बल्कि यह दरअसल उसके नाक के ऊपर के कड़े बाल हैं जो आपस में एक प्रकार के लसीले पदार्थ से एक ही में चिपककर इतने कड़े हो जाते हैं कि उसके आगे हड्डी क्या चीज़ है। यही चिपके हुए बाल, जिसे हम गैंडे की खाग या सींग कहते हैं, गैंडे के मुख्य अस्त्र हैं।

गैंडा बहुत सीधा जानवर है, जो बिना छेड़े किसी मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता। इसकी खाल क़रीब दो इंच मोटी और बहुत ही मज़बूत होती है, जो इसके शरीर पर ढीली ढीली लटकती रहती है।

घोड़ा-परिवार—घोड़ा-परिवार में घोड़े के अलावा गोरख़र और गदहे भी शामिल हैं। एक और जानवर को भी इसी परिवार में शामिल करना पड़ा है जिसे ख़च्चर कहते हैं। ख़च्चर नर गदहा और घोड़ी के संयोग से पैदा होता है और अपनी मज़बूती के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है। यह जहाँ घोड़े की तरह लम्बा और बलवान् होता है, वहीं गदहे की तरह बोझ ढोने में भी बेजोड़ होता है। इसके बारे में यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि ख़च्चर और ख़च्चरी से बच्चे पैदा नहीं हो सकते। नये ख़च्चर फिर गदहे और घोड़ी से ही पैदा हो सकते हैं।

इस परिवार के प्राणियों के खुर बीच से फटे हुए नहीं होते। इससे इन्हें एकशफ-प्राणी कहा जाता है। ये शाकाहारी जीव हैं। इनके होंठ इनके बड़े काम के हैं। यह इनकी स्पर्श इन्द्रियों में से एक हैं, जिससे ये घास वग़ैरह को पकड़कर बड़ी आसानी से अपने मुँह के भीतर खींच लेते हैं, जहाँ इनके तेज़ कृंतक दाँत उन्हें बड़ी सफ़ाई से कुतर लेते हैं। इनके जबड़ों में कुकुरदंत तो होते हैं लेकिन वे बहुत छोटे और इनके लिए बेकार ही रहते हैं।

इस परिवार के प्राणी अपनी तेज़ चाल और सुन्दर गठीले बदन के लिए तो प्रसिद्ध ही हैं लेकिन साथ ही साथ ये बुद्धिमान् भी किसी से कम नहीं होते। घोड़े की अक़्लमन्दी की अनेकों कहानियाँ हमने सुनी ही होंगी लेकिन गदहा—जिसे हम बेवक़ूफ़ समझते हैं—कम अक़्लमन्द नहीं होता। इसकी स्मरणशक्ति घोड़े से कम न होकर कुछ ज्यादा ही रहती है।

सुअर-परिवार—सुअर भी अपने परिवार में अकेला है। जैसे कोई इसके साथ रहने को राज़ी ही न हुआ हो। यह अपने उपवर्ग का सबसे छोटा प्राणी है। इसकी खाल बहुत मोटी होती है और उस पर कड़े बाल रहते हैं। इसका थूथन आगे की ओर चपटा रहता है जिसमें भीतर की ओर मुलायम हड्डी का एक चक्का सा रहता है जो थूथन को कड़ा बनाये रखता है। इसी थूथन के सहारे सुअर बड़ी आसानी से ज़मीन खोद डालता है और बड़े बड़े पत्थरों को सहज ही में उलट देता है।

इसके जबड़े के कृंतकदंत आगे की ओर बढ़े रहते हैं, जिससे यह जड़ों को आसानी से काट लेता है। ऊपर के कुकुरदंत तो बाहर की ओर निकलकर ऊपर की ओर घूम जाते हैं लेकिन नीचे के बड़े और सीधे होते हैं। जब सुअर जबड़ों को बन्द कर लेता है तो इसके ऊपर और नीचे के कुकुरदंत रगड़ खाते हैं, जिससे उनकी

नोक हमेशा तेज़ बनी रहती है। इनके ये दाँत इतने तेज़ होते हैं कि ये हमला करनेवालों का पेट तक इसी से फाड़ डालते हैं।

सुअरों के पैर चार हिस्सों में बँटे रहते हैं। जिसमें से आगे के दोनों हिस्से बड़े होते हैं और पीछे के छोटे। पीछेवाले छोटे खुर उसकी टाँग में पीछे की ओर लटके भर रहते हैं। और उनसे चलने में इन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती।

सुअरों की सूँघने की शक्ति बड़ी तेज़ होती है, जिससे ये ज़मीन के भीतर की स्वादिष्ट जड़ों का पता लगा लेते हैं। जड़ें और फल-फूल को ही इनका मुख्य भोजन कहा जा सकता है। वैसे तो ये आलू, गन्ना, नाज के अलावा कीड़े-मकोड़े, गिरगिट वग़ैरह भी चट कर डालते हैं।

गो-उपवर्ग—इस उपवर्ग में वे रोमंथकारी जीव हैं, जो अपने जुगाली करने की आदत से मोटी खालवाले जानवरों से अलग कर दिये गये हैं। ये जानवर हाथी उपवर्ग की तरह चार परिवारों में विभक्त कर दिये गये हैं जो इस प्रकार है।

१—गो-परिवार

२—बारहसिंहा-परिवार

३—कस्तूरा-परिवार

४—ऊँट-परिवार

इस उपवर्ग के विभाजन में मोटी खालवालों की तरह ज्यादा दिक्क़त नहीं पड़ी क्योंकि इसमें उतने बेमेल जानवर नहीं हैं। ये सब शाकाहारी जीव हैं, जो पहले जल्दी जल्दी घास वग़ैरह चर लेते हैं, फिर बाद को किसी निरापद स्थान में बैठकर जुगाली करते हैं। जुगाली करते समय पहले की चरी हुई घास छोटे छोटे गोले की शकल में इनके पेट से इनके मुँह तक आ जाती है और उन्हें वे फिर से चबाकर निगल जाते हैं। जब यह दुबारा चबाया हुआ खाना

इनके पेट के भीतर पहुँचता है, तब कहीं पाचन-क्रिया आरम्भ होती है।

जुगाली करने का यह ढंग विचित्र तो जान पड़ता ही है लेकिन इसकी शुरूआत की कथा भी काफ़ी दिलचस्प है।

बहुत समय पहले जब पृथ्वी पर बड़े-बड़े जंगलों के साथ ही साथ काफ़ी हिंस्र जीव थे, इन अहिंसक जीवों को अपनी जान बचाने के लिए आज से भी ज्यादा सतर्क रहना पड़ता रहा होगा। उस समय उन्हें इतना समय नहीं मिलता रहा होगा कि वे निडर होकर घास-पात चर सकें, इसलिए उन्होंने अपने पाकाशय या उदर का ऐसा विकास किया कि वह कई हिस्सों में बँट गया। जिसका फल यह हुआ कि एक खाने में ये पहले जल्दी जल्दी घास वग़ैरह भर लेते हैं फिर जब इनको अवकाश मिलता है तो उसे फिर मुँह तक लाकर और अच्छी तरह चबाकर फिर खा लेते हैं। इसी क्रिया को हम जुगाली करना कहते हैं।

इन जानवरों के नीचे के जबड़े में प्राय: ६ कृंतक दाँत होते हैं जो आगे की ओर झुके रहते हैं। कुकुरदंत प्राय: होते ही नहीं, यदि हुए भी तो बहुत छोटे छोटे रहते हैं। हाँ दोनों ओर ६–६ चौड़ी दाढ़ें ज़रूर होती हैं, जो इनके लिए बहुत उपयोगी हैं। इस उपवर्ग में ऊँट को छोड़कर किसी के भी ऊपरी जबड़े में कृंतक दाँत नहीं होते लेकिन दंतहीन होने पर भी उनके मसूड़े इतने कड़े और कठोर हो गये हैं कि उनसे दाँतों का काम भली भाँति चल जाता है।

इन पशुओं के खुर बीच से फटे रहते हैं—जिससे इन्हें 'द्विशफ' भी कहा जाता है। खुर बीच से फटे रहने के कारण इनकी चाल में लचक तो आ ही जाती है, साथही साथ इनको कीचड़ और गीली मिट्टी में चलना बहुत आसान हो जाता है क्योंकि कीचड़ में पड़ते ही ये फटे खुर फैल जाते हैं और बीच से कीचड़ निकल जाती है। इनमें से कुछ के खुरों के बीच में एक ग्रंथि होती

है, इससे एक प्रकार का चिकना पदार्थ निकलता रहता है जो खुरों को चिकना बनाये रखता है। ये सब तेज़ भागनेवाले प्राणी हैं जिनकी सूँघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। अब इनमें से प्रत्येक परिवार का अलग अलग थोड़ा वर्णन दिया जा रहा है।

गो परिवार—गो-परिवार बहुत विस्तृत है। इससे इसको तीन मुख्य भागों में विभक्त कर दिया गया है।

१—पहला भाग गो-उपपरिवार कहलाता है—जिसमें गाय-भैंस आदि जानवर शामिल हैं।

२—दूसरे भाग में सब जाति के हिरण आते हैं। यह हिरण-उपपरिवार कहलाता है।

३—तीसरा भाग भेड़ और बकरियों का है। जिसमें हर तरह की भेड़-बकरियाँ शामिल की गई हैं। यह बकरा-उपपरिवार कहलाता है।

इन सब के सींग बारहसिंघों की तरह हर साल गिर नहीं जाते बल्कि ये सदैव उसी तरह बने रहते हैं। इनका भीतरी हिस्सा ठोस हड्डी का रहता है जिस पर खोखली सींग चढ़ी रहती है। गो-परिवार के प्राय: सभी जातियों के नर-मादा सींगदार होते हैं। इनके जबड़ों में कुकुरदंत नहीं होते और इनकी आँख के नीचे एक गड्ढा सा रहता है जिसमें से बहुतों के एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है। ये पूर्णरूप से शाकाहारी जीव कहे जा सकते हैं, जिनमें से बहुतों को मनुष्यों ने पालतू कर रखा है।

यहाँ सुविधा के लिए तीनों उपपरिवारों का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

गो-उपपरिवार में हमारी गाय और भैंस शामिल हैं। इसमें जहाँ एक ओर गाय-बैल के सम्बन्धी गौर और सुरागाय हैं, वहीं अरना भैंसा भी है, जो हमारी पालतू भैंसों का बहुत नज़दीकी

रिश्तेदार है। इनके बारे में हमको ज्यादा परिचय की जरूरत नहीं है।

हरिण-उपपरिवार में मृग, चिकारा, नीलगाय आदि जीव हैं जो अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ की सींगें काफ़ी बड़ी होती हैं लेकिन उनमें बारहसिंघों की तरह शाखें नहीं फूटी रहतीं।

बकरा उपपरिवार पहले दोनों उपपरिवारों से कुछ बड़ा है। इसमें तीन तरह के जानवर शामिल किये गये हैं। (१) हिरन की शक्ल के बकरे। (२) बकरे और (३) भेड़।

इन सब प्राणियों के जबड़ों में कुकुरदंत नहीं होते। इनके नर-मादा दोनों सींगदार होते हैं और मादा के प्रायः दो ही थन होते हैं। हिरण जैसे बकरों के सींग गोल, छोटे और पीछे की ओर घूमे घूमे-से रहते हैं लेकिन भेड़ों के सींग भारी और तिकोने होते हैं जो नीचे की ओर घूमे रहते हैं। ये सब शाकाहारी जीव हैं, जो दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर बड़ी तेजी से चढ़ते-उतरते रहते हैं।

बारहसिंघा-परिवार—बारहसिंघे अपनी सुन्दर और शाखदार बड़ी सींगों के कारण अन्य हिरणों से अपना अलग व्यक्तित्व रखते हैं। अपने परिवार में ये अकेले ही हैं, जिनकी कई जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं। इनमें प्रायः सभी जातियों के नरों के लम्बी-लम्बी सींगें होती हैं। जिनमें अनेकों शाखें फूटी रहती हैं। ये सींग हर साल या कई साल में एक बार गिर जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे नये सींग निकल आते हैं। नये सींगों की बाढ़ इतनी तेजी से होती है कि तीन-चार महीने के भीतर ही ये पहले जैसे हो जाते हैं। शुरू में नए सींग मुलायम रहते हैं और उनकी सतह मख़मल जैसी होती है। लेकिन बाढ़ पूरी हो जाने पर यह खाल सूखकर चमड़े जैसी कड़ी हो जाती है। इस समय इनमें बड़ी खुजलाहट

उठती है। और तब बारहसिंघे पेड़ की डालों से अपने सींग रगड़कर इस खाल को छुड़ा डालते हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध के बर्फ़ीले देश के रेनडियर Reindeer नामक बारहसिंघे को छोड़कर, बाक़ी सब बारहसिंघों में केवल नर के ही सींग रहती है। मादायें क़द में भी नर से कुछ छोटी होती हैं। बारहसिंघे भारी क़द के होते हुए भी बहुत तेज़ भाग लेते हैं और शायद इसी परिश्रम की वजह से उनका शरीर इतना सुन्दर और सुगठित हो गया है।

कस्तूरा-परिवार—यह परिवार वैसे तो बहुत छोटा है लेकिन इसको दो हिस्सों में बाँटना पड़ा है। पहले में कस्तूरा है और दूसरे में पिसूरी।

कस्तूरा वैसे तो प्रायः सभी बातों में बारहसिंघे से मिलता-जुलता होता है लेकिन उसके सर पर सींग नहीं होते। दूसरी ख़ास बात इसमें यह होती है कि नर के दुम के नीचे एक थैली या ग्रन्थि रहती है जिसमें से एक प्रकार का गाढ़ा पदार्थ निकलता है। यही हमारी कस्तूरी या मुश्क है।

पिसूरी अपने परिवार का ही नहीं बल्कि अपने वर्ग का भी सबसे छोटा प्राणी है जो लगभग एक फ़ुट ऊँचा होता है। यह घने जंगलों में रहनेवाला प्राणी है जिसकी बहुत कुछ आदतें कस्तूरा से मिलती-जुलती रहती हैं।

ऊँट-परिवार—ऊँट अपने परिवार का अकेला प्राणी है इसकी एक जाति एशिया और दूसरी अफ़्रीका में पाई जाती है। घोड़ों की तरह ये भी इस तरह सब के सब पालतू कर लिए गये हैं कि इनकी जंगली जाति संसार में कहीं भी नहीं पाई जाती। मनुष्यों के लिए ये बहुत ही उपयोगी जीव हैं और जैसे रेगिस्तान में ही सफ़र करने के लिए इनको प्रकृति ने बनाया है।

घोड़े की तरह ऊँट का ऊपरी होंठ भी उसकी मुख्य स्पर्शेन्द्रिय कही जा सकती है। यह दो हिस्सों में बँटा रहता है। इसके कूबड़ की बनावट भी कम आश्चर्यजनक नहीं होती। यह वास्तव में चर्बी का एक पिंड है जिसमें चर्बी जमा रहती है। ऊँट जब रेगिस्तान का लम्बा सफ़र करते हैं तो उनको कभी-कभी हफ़्तों भोजन नहीं प्राप्त होता। उस समय उनके कूबड़ या कुहाने में जमा चर्बी उनके शरीर का पोषण करती है। इसी से लम्बे सफ़र के बाद ऊँट के कुहाने काफ़ी छोटे हो जाते हैं। लम्बे सफ़र में इनकी भूख की समस्या तो बहुत कुछ इनका कूबड़ सुलझा देता है लेकिन प्यास के मामले में तो वह कुछ भी मदद नहीं कर सकता। इससे ऊँट ने अपने पेट में जल संग्रह करने के लिए क़रीब आठ सौ छोटी-छोटी थैलियों का विकास किया है। जिनमें वह अपने सफ़र के लिए काफ़ी पानी भर लेता है।

ऊँट की सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है और यह बहुत दूर से पानी का पता सूँघकर लगा लेता है। भालू की तरह चलते समय इसकी एक ओर की दोनों टाँगें एक साथ उठती हैं, जिससे इसकी चाल अजीब-सी जान पड़ती है। इतना ही नहीं इसकी पीठ पर चढ़नेवालों को इस विचित्र चाल के कारण काफ़ी झटका लगता रहता है।

एशियाई ऊँट की एक क़िस्म और भी होती है जो 'बैक्टीरिया' के ऊँट कहलाते हैं। इनकी पीठ पर एक के बजाय दो कूबड़ होते हैं। ये हमारे यहाँ के ऊँटों से—जो वास्तव में अरब के ऊँट हैं—क़द में बड़े होते हैं। इनका निवासस्थान मध्य-एशिया के कुछ प्रान्त हैं।

६

१—हाथी

The Indian Elephant—Elephas indicus

हाथी हमारे यहाँ का बहुत ही परिचित जानवर है। इस पर चढ़ने का मौक़ा भले ही कुछ लोगों को न हुआ हो लेकिन ऐसा शायद ही कोई होगा, जिसने इस प्रसिद्ध जीव को निकट से न देखा हो।

इसके बारे में यह क़िस्सा भी कम मशहूर नहीं है कि एक बार एक हाथी एक गाँव में गया, जहाँ चार अन्धे रहते थे। हाथी का आना सुनकर उन चारों को भी हाथी देखने का शौक चर्राया। लेकिन आख़िर हाथी देखते तो कैसे देखते? क्योंकि उनके आँखें तो थीं नहीं। उन लोगों ने सोचा, चलो हाथ से ही देखकर सन्तोष कर लेंगे। चारों जब हाथी के पास पहुँचे तो उन्होंने हाथ से टटोलकर हाथी को देखा। घर लौटने पर जब लोगों ने उनसे पूछा कि भाई हाथी कैसा है, तो पहले अन्धे ने जिसने हाथी का पैर छुआ था बोला, 'हाथी तो खम्भे जैसा होता है। दूसरे अन्धे ने ऐसा ही प्रश्न किये जाने पर कहा, 'हाथी तो अजगर की तरह होता है। क्योंकि उसने हाथी की सूँड़ पकड़ी थी। तीसरे से जब पूछा गया तो उसने कहा, 'हाथी तो रस्से जैसा होता है।' क्योंकि इसके हाथ में हाथी की पूँछ ही आई थी इसी प्रकार चौथे ने हाथी को सूप जैसा बताया क्योंकि उसका हाथ हाथी के चौड़े कान तक पहुँचा था।

इस क़िस्से में हाथी के डील-डौल के बारे में बहुत अच्छा इशारा किया गया है।

हाथी उन जानवरों में से हैं जो पालतू तो कर लिये गये हैं लेकिन जिनकी बहुत बड़ी संख्या अब भी जंगली हालत में वनों में घूमा करती है। यहीं से हर साल हाथी पकड़कर लाये जाते हैं और इनको कुछ दिन में सिखाकर पालतू कर लिया जाता है।
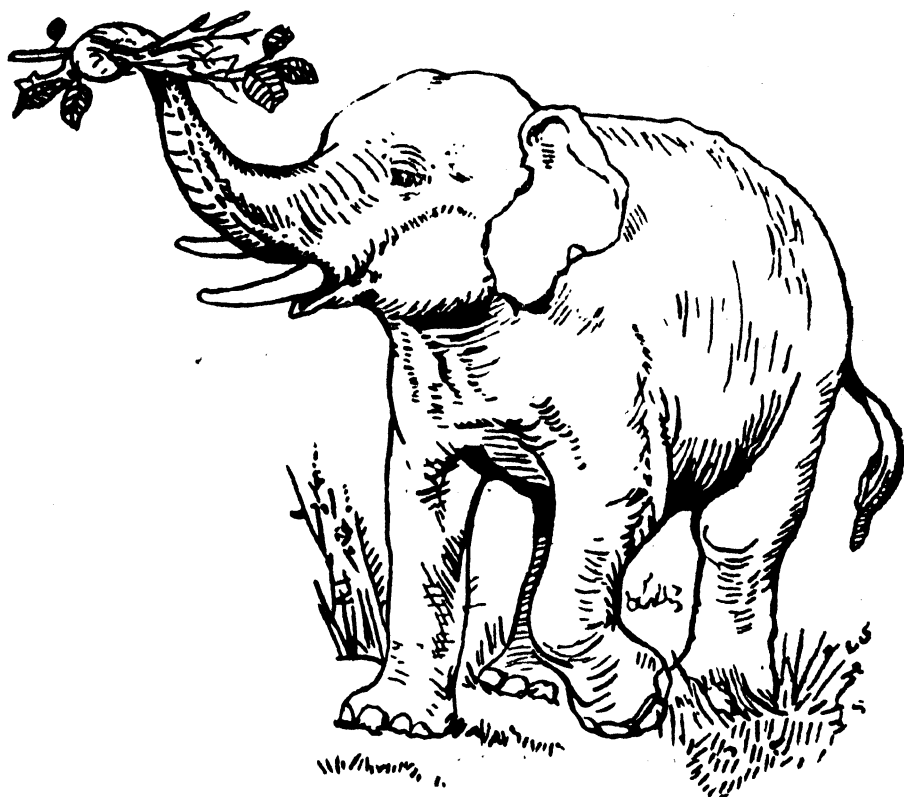
हाथी

हमारे देश में हाथी ज्यादातर तो हिमालय की तराई के घने जंगलों में ही पाये जाते हैं लेकिन इसके अलावा ये मध्यप्रान्त, दक्षिण भारत और लङ्का के जंगलों में भी मिलते हैं। हिमालय की तराई में ये देहरादून से भूटान की तराई तक मिलते हैं और आसाम में गारो पहाड़ी पर भी इनकी थोड़ी बहुत संख्या तो पाई ही जाती है। ये

पहाड़ पर ज़्यादा ऊँचाई पर नहीं जाते और अपना ज़्यादा समय तराई के घने जंगलों में ही बिताते हैं।

नर हाथी लगभग ९ फ़ुट ऊँचे होते हैं और हथिनियाँ क़रीब ८ फ़ुट। लेकिन नर हाथी १० फ़ुट के भी अकसर दिखाई पड़ते हैं। ऊँचे से ऊँचा हाथी क़रीब १२ फ़ुट का पाया जाता है। इनकी दुम के सिरे से सूँड़ के सिरे तक की लम्बाई, इनकी ऊँचाई से तिगुनी तो नहीं होती लेकिन उससे कुछ ही कम रहती है। इनका वज़न भी कुछ कम नहीं होता। १० फ़ुट ऊँचा हाथी वज़न में लगभग ८० मन का होता है।

अफ़्रीका के हाथियों की तरह हमारे यहाँ के नर-मादा दोनों के बड़े बड़े दाँत नहीं होते। यहाँ तो केवल नर के दो बड़े-बड़े दाँत आगे की ओर निकले रहते हैं। मादा के ये दाँत बहुत छोटे होते हैं जो सूँड़ के दोनों बगल चिपके से रहते हैं। दाँतवाले नर हाथी 'दँतैले' कहलाते हैं। इन दाँतों की लम्बाई वैसे तो अलग-अलग होती है लेकिन बड़े से बड़ा ८ फ़ुट लम्बा और एक मन से कुछ ज़्यादा ही वज़न का मिला है। लंका के नर हाथियों के दाँत बहुत छोटे होते हैं। इससे उनको 'मकुना' कहा जाता है। हमारे यहाँ भी कभी-कभी मकुना हाथी दिखाई पड़ जाते हैं।

हाथी के शरीर का रंग कलछौंह सिलेटी होता है लेकिन इनके माथे पर, कान पर और गरदन के ऊपरी हिस्से पर कभी-कभी प्याज़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

इनके बदन पर बाल नहीं होते। हाँ, दुम के सिरे पर बहुत कड़े बालों की दो कतार रहती है। इनके अगले पैरों में अकसर पाँच सुम या नाख़ून होते हैं लेकिन पिछले पैरों में इन नाख़ूनों की संख्या चार ही रहती है।

इनकी आँख इनके क़द को देखते हुए काफ़ी छोटी होती है और

कान का बाहरी हिस्सा पंखे जैसा होता है। जिसे ये मक्खियाँ उड़ाने के लिए हिलाते रहते हैं।

हाथी ऐसे घने जंगलों में रहना ज्यादा पसन्द करता है, जिसमें बाँस बहुत हों क्योंकि बाँस के नरम पोरं इनको बहुत ही पसन्द हैं। ये कभी-कभी जंगलों से बाहर निकलकर ऊँचा घास से ढके हुए मैदानों में भी घूमते रहते हैं।

हाथी यूथचारी या झुण्ड में रहनेवाले जीव हैं, जो बड़े-बड़े झुण्ड में रहते हैं। लेकिन जब ये भोजन की तलाश में घूमते हैं तब ये छोटे-छोटे गरोहों में बँट जाते हैं। नर हाथी प्राय: अकेले ही घूमते हैं। इस प्रकार इनका बड़ा गरोह रोज़ इधर-उधर फैलकर फिर एक साथ हो जाता है। एक बात ताज्जुब की ज़रूर देखी गई है कि इन गरोहों की सरदारी किसी दँतैले हाथी को न मिलकर हमेशा किसी हथिनी को ही मिलती है।

हाथियों का मुख्य भोजन घास-पात, पत्तियाँ, पेड़ की छाल और बाँस के नरम कल्ले हैं। इन्हें बरगद, पीपल, पाकर आदि दूधवाले पेड़ों की छाल और पत्तियाँ अन्य पेड़ों से ज्यादा पसन्द आती हैं। पालतू हाथी रोटी, ग़ल्ला और अन्य चीज़ें भी खाते हैं। गुड़ तो इन्हें बहुत ही पसन्द है लेकिन यह सब तो इन्हें थोड़ी ही मिक़दार में मिलता है और ये अपना पेट यहाँ भी उसी छाल और पत्तियों से भरते हैं। इसके लिए हम मनुष्यों को दोष भी नहीं दे सकते क्योंकि इनके पेट भरने के लिए रोज़ क़रीब ४० मन ख़ुराक भी तो चाहिए।

हाथी दिन में सुबह और शाम दो ही बार पानी पीते हैं। जिसके लिए इन्हें अपनी सूँड़ का सहारा लेना पड़ता है। ये सूँड़ में पानी भरकर मुँह के भीतर सारा पानी उड़ेल देते हैं और इस प्रकार थोड़ी ही देर की मेहनत से इनका बड़ा पेट भर जाता है। पेड़ की पत्तियाँ या छाल भी ये इसी सूँड़ के सहारे बड़ी आसानी से उधेड़कर मुँह में भर लेते हैं। यही नहीं छोटी-छोटी चीज़ों को भी ये इसी सूँड़ के

सिरे से, इस आसानी से उठा लेते हैं कि देखकर बहुत आश्चय होता है।

जंगली अवस्था में हाथी दिन और रात दोनों वक्त अपने भोजन की तलाश में घूमते रहते हैं। इनके आराम करने का समय दोपहर और आधी रात को कुछ घण्टे तक रहता है। ये अन्य जानवरों की तरह लेटकर सोते हैं लेकिन पालतू हाथी अकसर खड़े ही खड़े झपकी ले लेते हैं।

हाथियों को पानी में नहाना बहुत पसन्द है। गरमियों में ये घण्टों पानी या कीचड़ में पड़े रहते हैं और अपनी सूँड़ में पानी भरकर सारे बदन को तर करते रहते हैं। गरमियों की तेज़ धूप में जब इन्हें पानी नहीं मिलता तो ये अपनी सूँड़ को मुँह में डालकर थूक से उसे भर लेते हैं और उसी से अपने बदन को ठण्ढा करते रहते हैं। जब थूक भी बाक़ी नहीं बचता, तो ये अपने बदन पर धूल फेंककर ही थोड़ी-बहुत गरमी शान्त कर लेते हैं।

हाथियों की सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है लेकिन इनकी सुनने और देखने की शक्ति मामूली ही रहती है।

हाथी दौड़ते नहीं; ये छलाँग भी नहीं मारते और न ये कूद-कूदकर ही चलते हैं। इनके चलने का एक ही तरीक़ा है जिसे हम सबने देखा होगा। उसी चाल से ये लुढ़कते हुए काफ़ी तेज़ चल लेते हैं। हाँ, ये घोड़े की तरह सरपट कभी नहीं भाग सकते। इतना बड़ा शरीर होते हुए भी हाथी छः-सात फ़ुट चौड़ी नाली नहीं फाँद सकते लेकिन काफ़ी खड़े ढाल पर ये बड़ी आसानी से चढ़-उतर सकते हैं। उस समय जिस सावधानी से ये पहले अपने पैर से ज़मीन को दबा-दबाकर आगे बढ़ते हैं, उसे देखकर ताज्जुब होता है।

हाथी के पिछले पैरों के बारे में यह जान लेना ज़रूरी है कि इनके पिछले पैर घोड़े की पिछली टाँगों की तरह बाहर की ओर नहीं मुड़ते बल्कि ये भीतर की ओर मुड़ते हैं। इसी लिए बैठते

समय हाथी पहले अपनी पिछली टाँगों को तोड़ते हैं फिर अगली टाँगों को। और इसी तरह उठते समय, ये पहले अगले पैरों पर खड़े होते हैं, उसके बाद पिछली टाँग उठाते हैं।

हाथी तैरने में बहुत उस्ताद होते हैं। पानी में रहनेवाले जानवरों की तो बात ही दूसरी है लेकिन ख़ुश्की पर रहनेवाले जानवरों में हाथी का, तैरने में कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता। ये पानी में लगातार ५-६ घण्टे या उससे भी ज़्यादा देर तक तैर सकते हैं।

हाथी बोलते नहीं चिग्घाड़ते हैं। यह चिग्घाड़ 'बिगुल' की तरह काफ़ी तेज़ होती है। डर या तकलीफ़ के समय ये एक अजीब तरह की गरज की सी आवाज़ करते हैं। ग़ुस्सा होने पर ये गले से एक तरह की गुड़गुड़ाहट सी करते हैं, जो इनका क्रोध साफ़ ज़ाहिर करती है। इसके अलावा किसी ख़तरे को नज़दीक देखकर ये अपनी सूँड़ को ज़मीन पर पटककर एक बहुत तीखी आवाज़ करते हैं, जो ख़तरा या इनकी तीव्र अनिच्छा प्रकट करती है। शेर की मौजूदगी में अकसर हाथी की यह आवाज़ शिकारियों को सुनाई पड़ती है।

हाथी वैसे तो डरपोक और सीधे जानवर हैं लेकिन कुछ नर और बच्चोंवाली मादाएँ हमला भी कर बैठती हैं। हमला करते समय ये अपनी सूँड़ को लपेट लेती हैं। फिर हथिनियाँ पैरों से और हाथी पैरों के अलावा अपने बड़े दाँतों से बड़ा भयंकर आक्रमण करते हैं। अगर उस समय दुश्मन इनके लपेट में आ गया तो उसे ये रौंदकर मार ही डालते हैं।

हाथियों के बारे में यह बहुत प्रसिद्ध है कि ये जानवरों में सबसे बुद्धिमान् हैं, लेकिन वास्तव में बात ऐसी है नहीं। बिल्लियाँ, कुत्ते, बन्दर और यहाँ तक कि घोड़े भी हाथी से ज़्यादा अक़्लमन्द होते हैं। हाँ, आज्ञापालन में ये सचमुच बहुत आगे कहे जा सकते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि थोड़े पालतू हाथी जङ्गल में फिर भाग गए लेकिन कुछ समय बाद जब उन्हें जङ्गल में देखा गया और महावतों

ने उन्हें डाँटकर रुकने और बैठने को कहा, तब ये तुरन्त रुककर पालतू कुत्ते की तरह वहीं बैठ गए। पशु-संसार में शायद ही कोई ऐसा जानवर होगा जो बड़ा होने पर भी हाथियों की तरह इतनी जल्द पालतू करके सिखाया जा सके।

हाथियों के पकड़ने का तरीक़ा बहुत रोचक है लेकिन स्थानाभाव से, यहाँ उसके बारे में विस्तार से नहीं लिखा जा सकता। इनके झुण्ड को एक बड़े हाते में हाँककर फँसा लिया जाता है, जिसे 'खेदा' कहते हैं। यह हाता पेड़ के मोटे-मोटे तनों से बनाया जाता है, जिसके बाहर जाना हाथियों के लिए सम्भव नहीं होता। इसमें घिर जाने के बाद पालतू हाथियों के सहारे महावत एक एक को पकड़कर रस्सों में बाँध लेते हैं। कभी-कभी नर हाथियों से और पालतू हाथियों से काफ़ी लड़ाई होती है लेकिन उसी समय जङ्गली हाथी के पैर जकड़ दिए जाते हैं।

खेदा के अलावा, पहले हाथियों को गड्ढे में गिराकर फँसाया जाता था लेकिन अब वह तरीक़ा बन्द कर दिया गया है।

पकड़े जाने के बाद हाथियों के सिखाने का काम शुरू होता है। वह भी कम दिलचस्प नहीं है। पहले हाथी को दो मज़बूत पेड़ों के बीच में बाँध दिया जाता है फिर उसे कुछ लोग बड़े बड़े बाँसों से पीटते हैं और काफ़ी शोर मचाते हैं। कुछ दिनों तक इसी प्रकार करने पर हाथी की भड़क छूट जाती है और वह पालतू सा हो जाता है। ऐसी हालत को पहुँच जाने पर, वह सूँड़ लपेटकर कर चुपचाप खड़ा रहता है और आदमियों की परछाईं तक देखकर डरने लगता है। इसके बाद उसके रस्सा कसा जाता है और उसकी गरदन पर महावत बैठने लगता है। यह क्रिया भी जब हो चुकती है तो हाथी को दो पालतू हाथियों के बीच में करके थोड़ी दूर तक रोज़ टहलाया जाता है। फिर वह धीरे-धीरे अकेले भी आने-जाने लगता है।

इसके बाद हाथी को महावत की बोली समझने का अभ्यास कराया जाता है। रुकने के लिए 'धत्' कहने के साथ ही साथ उसको बरछी मारी जाती है। इसी प्रकार बैठने, उठने, चलने और किसी चीज़ को उठाने के लिए महावत बर्छी की नोंक से अपनी बोली उसे सिखा देते हैं। दाहिनी ओर मोड़ने के लिए बाएँ पैर के अँगूठे से और बाईं ओर मोड़ने के लिए दाहिने पैर के अँगूठे से कान के ऊपरी हिस्से की जड़ के पास महावत इशारा करता है। पहले इस इशारे के साथ वह अपने अंकुश को भी हाथी के माथे पर गड़ाता है लेकिन फिर इसकी ज़रूरत नहीं रहती और हाथी का इतना बड़ा शरीर महावत के छोटे से अँगूठे के इशारे से ही दोनों ओर घूमने लगता है।

हाथी को बैठाने या लेटाने के लिए उसे क़रीब ५ फ़ुट गहरे पानी में ले जाते हैं। वहाँ ले जाकर जब उसके सर पर अंकुश मारा जाता है, तब वह पानी के भीतर बैठ या लेट जाता है और फिर उस पर अंकुश का वार नहीं करते। इसी प्रकार उसे ज़मीन पर से छोटी छोटी चीजें उठाने का अभ्यास कराया जाता है। इसके लिए उसके माथे पर से एक काठ का टुकड़ा रस्सी में बाँधकर लटका दिया जाता है। जब हाथी चलता है तो वह काठ का टुकड़ा उसकी सूँड़ और अगले पैरों में लड़ता है। हाथी इससे ऊबकर उसे अपनी सूँड़ में उठाकर चलने लगता है। इस प्रकार वह शीघ्र ही आज्ञा पाने पर छोटी चीजें उठाने का अभ्यासी हो जाता है।

हाथियों के मद और गजमुक्ता के बारे में बहुत क़िस्से हैं। कुछ नर हाथियों के मस्तक में एक प्रकार का गंदा पिलछौंह रङ्ग का हड्डी जैसा कड़ा पदार्थ बन जाता है जिसे लोग 'गजमुक्ता' के नाम से पुकारते हैं। बहुत कम संख्या में मिलने के कारण यह बहुत क़ीमती माना जाता है। मद के बारे में भी इतना ज़रूर सही है कि कुछ नर हाथियों के, कभी-कभी कनपटी के पास से एक प्रकार का

चिकना तरल पदार्थ बहने लगता है। ऐसे समय हाथी बहुत मस्त रहता है और अकसर लोगों पर हमला भी कर बैठता है। इसके अलावा इसके मद की और कहानियाँ केवल कहानियाँ ही हैं।

हथिनियाँ १८ से २० महीने के बाद एक बच्चा जनती हैं लेकिन कभी-कभी जोड़वा बच्चे भी देखे गए हैं। ये बच्चे ज्यादातर सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर में पैदा होते हैं लेकिन और महीनों में भी हथिनियाँ बच्चे देती हैं।

हाथी के बच्चे पैदा होने पर क़रीब ३ फ़ुट ऊँचे और लगभग २½ मन भारी होते है। शुरू में इनकी सूँड़ छोटी और कम लचीली होती है और ये कुछ महीनों तक माँ का दूध ही पीते हैं।

हाथी २५ वर्ष में जवान होता है और उसकी उम्र लगभग १०० वर्ष की मानी जाती है। यह उम्र पालतू हाथियों की है जङ्गल के हाथी तो इससे भी ज्यादा दिनों तक जीते हैं।

२—गोरखर

The Asiatic Wild Ass—Equus hemionus

गोरखर या जङ्गली गदहे वास्तव में मध्य और पश्चिमी एशिया के निवासी हैं। हमारे देश में तो ये बहुत थोड़ी संख्या में हैं और इनका निवास भी सिन्ध, बीकानेर गुजरात और जैसलमेर तक ही सीमित है।

ये जङ्गली गदहे मामूली गदहों से कुछ ऊँचे होते हैं। इनकी ऊँचाई पौने चार से चार फ़ुट तक होती है। मादा, नरों से कुछ छोटी होती है।

गोरखर की शक्ल सूरत तो गदहों से बहुत मिलती-जुलती रहती है लेकिन इनकी दुम गदहों जैसी न होकर घोड़ों के दुम के

ज़्यादा नज़दीक होती है। इनकी गरदन पर अयाल रहते हैं और इनके कान गदहों की तरह बड़े होते हैं।

गोरख़र का रङ्ग गदहों जैसा सिलेटी या कलछौंह न होकर, पिलछौंह राखी रहता है। जिस पर थोड़ी ललाई की भी झलक रहती है। थूथन, सीना, पेट और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफ़ेद रहता है।
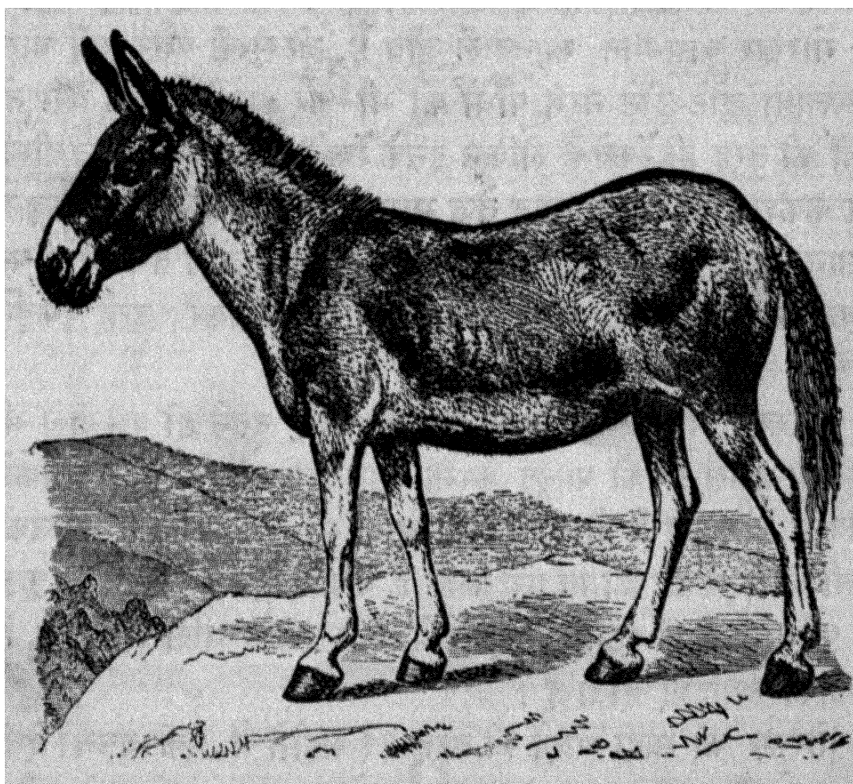
गोरख़र

अयाल की जड़ से दुम की जड़ तक एक गहरे खैरे रङ्ग की पट्टी चली जाती है। जो कंधे के पास कभी एक और कभी दो जगह इसी रङ्ग की धारी से कट जाती है। इसके पैर पर भी कभी-कभी इसी तरह की धारियाँ रहती हैं। अयाल और दुम के बाल गाढ़ कत्थई या काले रहते हैं और इनके खुरों या सुमों के ऊपर एक गाढ़ रङ्ग की धारी

पड़ी रहती है। इनके कान का भीतरी हिस्सा सफ़ेद रहता है लेकिन उसके किनारे काले रहते हैं।

गोरखर झुण्ड में रहनेवाले प्राणी हैं जो ज्यादातर हमारे यहाँ के रेगिस्तानों या खुले हुए ऊसरी मैदानों में इधर-उधर फिरा करते हैं। इनका गरोह ४-५ से लेकर २०-२५ तक का होता है लेकिन कभी-कभी इनके गरोहों में इससे भी ज्यादा गोरखर दिखाई पड़ते हैं।

गोरखर घास-पात खानेवाले जीव हैं, जो सूखी और हरी घास के अलावा छोटे-छोटे नरम पौधों को भी चर डालते हैं। ये वैसे तो गदहों की तरह ही रेंकते हैं लेकिन इनके रेंकने की आवाज़ बहुत तीखी और कर्कश होती है। ये बहुत तेज़ भागनेवाले जीव हैं, जिन्हें पकड़ना आसान नहीं होता। इनको पकड़ने के लिए सवार लोग तेज़ घोड़ों पर चढ़कर इनका पीछा करते हैं और बच्चों को थकाकर उन्हें पकड़ने में किसी तरह कामयाब हो पाते हैं।

गोरखर भागने में जितने तेज़ होते हैं, उतने ही शरमीले भी होते हैं। इससे इनको पालतू करना बहुत मुश्किल होता है। पकड़े जानेवाले गोरखरों में से आधे से ज्यादा मर ही जाते हैं। इनको बलूची लोग अच्छी क़ीमत पर बेचते हैं क्योंकि इनके पकड़ने में कुछ कम परेशानी नहीं उठानी पड़ती। वे लोग इनका मांस भी खाते हैं जो काफ़ी स्वादिष्ट होता है।

गोरखर की मादा घोड़ों की तरह ११ महीने में एक बच्चा देती है। बच्चा पैदा होने का समय जून से अगस्त तक रहता है।

३—घोड़ा

The House—Equus Callabus

घोड़ा शायद मनुष्या का सबसे पुराना साथी है। मानव सभ्यता में इसका सबसे बड़ा हाथ है और आज इस मशीन के युग में भी इसकी उपयोगिता कम नहीं हुई है। हमारे सभी प्रकार के कामों में घोड़ा अब भी वही महत्त्व रखता है।

यही नहीं, सुन्दरता और शरीर की गठन में भी घोड़े को कोई जानवर पा नहीं सकता। उसका एक एक अंग जैसे साँचे में ढला हुआ जान पड़ता है।

घोड़े को मनुष्य ने कब पालतू किया इसका कोई लेखा नहीं मिलता। मनुष्यों का इतिहास जब से मिलता है तब से घोड़ा उनके साथ एक आज्ञाकारी सेवक की तरह मौजूद है।
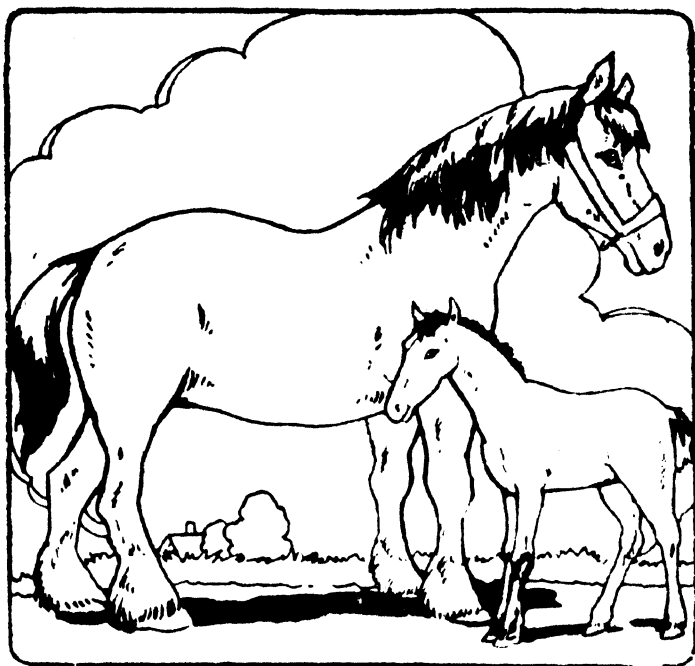
घोड़ा

ऊँट की तरह घोड़ा भी जङ्गली अवस्था में नहीं मिलता। ये अपनी उपयोगिता के कारण, जान पड़ता है, मनुष्यों के द्वारा सबके सब पालतू कर लिये गए। दक्षिण अफ़्रीका में कुछ घोड़े जङ्गली अवस्था में जरूर पाए जाते हैं लेकिन प्राणिशास्त्र के विद्वानों का मत है कि वे दरअसल जङ्गली घोड़े न होकर, उन पालतू घोड़ों की सन्तान हैं, जो किसी घटनावश अपने मालिकों से बिछुड़कर जङ्गलों

में रहने लगे होंगे। वे घोड़े वैसे तो वहाँ एक हज़ार तक के झुण्ड में देखे गए हैं लेकिन ज्यादातर ये छोटे-छोटे गरोह बनाकर रहते हैं, जिसमें एक नर और कई मादाएँ होती हैं।
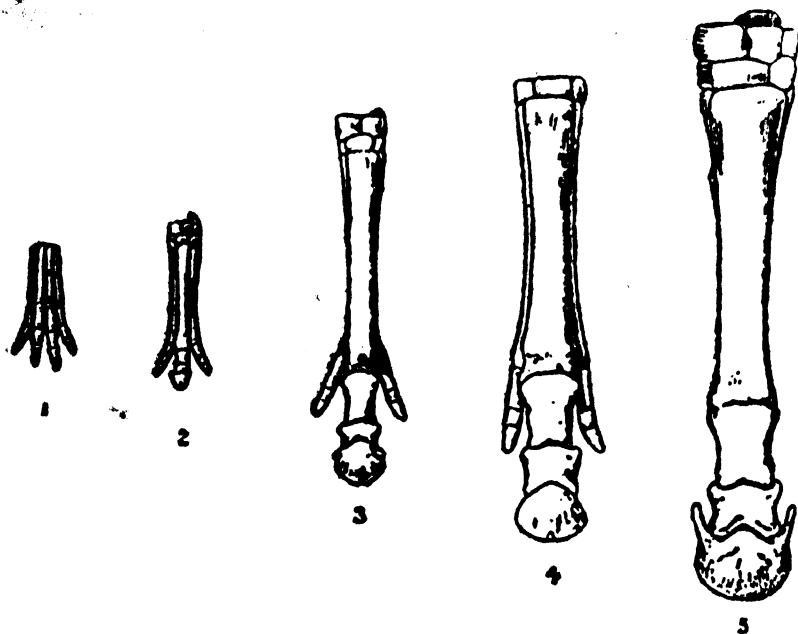
घोड़े के पैर का विकास

घोड़े की शरीर-रचना में सबसे आश्चर्य-जनक उसके खुर या 'सुम' होते हैं। सारे स्तनप्राणी समूह में यही एक ऐसा जानवर है जिसके पैरों में न तो फटे हुए खुर होते हैं और न उँगलियाँ ही हैं। इसकी बड़ी रोचक कथा है।

घोड़े के पूर्वज किसी युग में ख़रगोश के बराबर के प्राणी थे तब। उनके पैरों में उँगलियाँ थीं लेकिन धीरे-धीरे उसका किस प्रकार से क्रमिक विकास हुआ वह साथ के चित्र से ज्ञात होगा।

इस प्रकार की उन्नति के उपरान्त आज जहाँ उनकी उँगलियों की जगह कड़े सुम हो गये हैं, वहीं उनका छोटा कद भी आज इतना

बड़ा और सुडौल हो गया है। लेकिन इस परिवर्तन में हज़ारों नहीं बल्कि लाखों वर्ष का समय लगा होगा।

घोड़ा शाकाहारी जीव हैं जो अपने होठों से घास पत्ती को पकड़-पकड़कर, बड़ी सफाई से खाता है। इसके होठों में गज़ब का स्पर्श-ज्ञान प्रकृति ने दिया है।

इसकी वैसे तो कई नस्लें पृथ्वी पर फैली हुई हैं लेकिन इनमें अरब का घोड़ा सबसे उत्तम माना जाता है।

हमारे देश में काठियावार के टाँघन प्रसिद्ध हैं जो क़द में छोटे लेकिन बहुत मज़बूत होते हैं। हमारे यहाँ रंग के हिसाब से इनको बाँटा गया है जैसे मुश्क़ी, सब्ज़ा, कुम्मैद, सुरंग, नुक़रा समंद आदि। ज्यादातर लोग इन्हें उनके रंग के हिसाब से ही पुकारते भी हैं।

४—गदहा

The Donkey—Equus asinus

गदहे का नाम, हममें कौन ऐसा है, जिसने न सुना हो। यह घोड़े का भाई-बन्धु होकर भी, हमारे देश में बहुत ही अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। इसके बारे में सबसे बड़ी ग़लतफ़हमी यह फैली हुई है कि यह बहुत ही मूर्ख होता है। लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यह अपनी जाति के पशुओं में क़रीब-क़रीब सबसे अधिक बुद्धिमान् प्राणी है।

गदहा सीधा, परिश्रमी और सहनशील तो होता ही है, साथ ही साथ, वह भारी बोझ उठाने में अपना सानी नहीं रखता। इसके और घोड़ी के मेल से पैदा हुआ 'खच्चर' बोझ उठाने में इससे भले ही बढ़ जावे लेकिन इसके बराबर क़दवाला कोई भी पशु, इसके बराबर बोझा नहीं उठा सकता।

हमारे यहाँ तो धोबी ही गदहे को पालते हैं लेकिन फ़ारस, अरब और मिस्र आदि देशों में गदहे का बड़ा आदर है। वहाँ इस

उपयोगी पशु का लोग आदर करना जानते हैं और यही कारण है कि इन देशों में इसकी कई अच्छी-अच्छी नस्लें बनाई गई हैं।
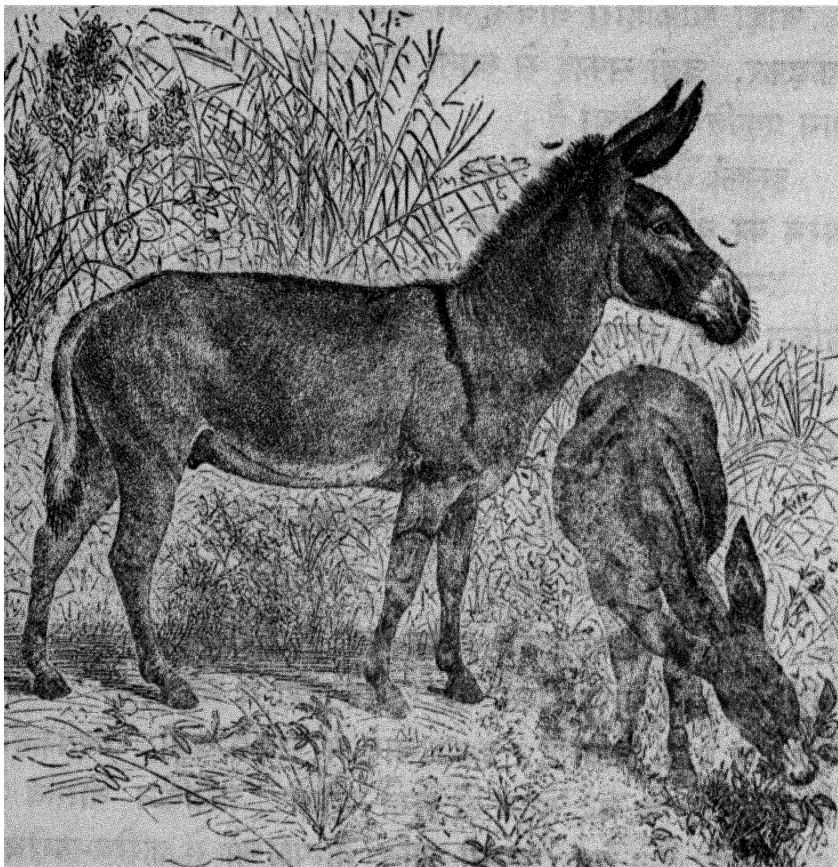
गदहा

हमारे यहाँ का गधा छोटे क़द का जानवर है जिसे हम सब ने देखा होगा। यह घोड़े की जाति का पशु है जिसका भोजन, रहन-सहन और अन्य बातें बहुत कुछ घोड़ों से मिलती-जुलती होती हैं।

५—गैंडा

The Rhinoceros—Rhinoceros unicornis

गैंडे कुछ शताब्दियों पहले तक तो सारे उत्तरी भारत में फैले

हुए थे लेकिन अब ये आसाम के जङ्गलों और नैपाल की तराई में ही रह गए हैं। वहाँ भी ये जिस तेज़ी से कम हो रहे हैं, उसे देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कुछ दिनों बाद ये हमारे देश से भी लोप हो जावेंगे।
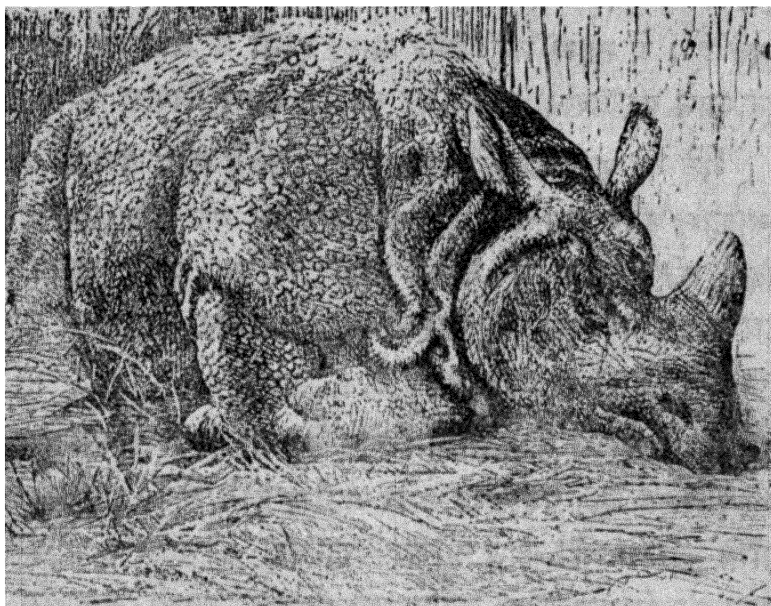
गैंडा

गैंडा हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध जानवर है। इसकी मोटी खाल की, पुराने वक्त में ढालें बनती थीं जो अपनी मज़बूती के लिए मशहूर थी। हमारे यहाँ इनकी वैसे तो तीन जातियाँ पाई जाती हैं लेकिन जिस गैंडे का यहाँ वर्णन दिया जा रहा है उसके थूथन पर एक सींग की शकल का खाग रहता है। यह गैंडा क़द में भी और दोनों गैंडों से बड़ा होता है।

गैंडे का क़द लगभग साढ़े दस फ़ुट लम्बा होता है, जिसमें उसकी २½ फ़ुट लम्बी दुम शामिल नहीं है। ऊँचाई में यह ५ से पौने ६ फ़ुट तक का पाया गया है। इसके थूथन पर का खाग

क़रीब १ फ़ुट का रहता है लेकिन कभी-कभी इसकी लम्बाई इससे भी बढ़ जाती है।

ये खाग दर असल इसके सींग नहीं हैं जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं बल्कि ये तो इसके कड़े बालों के आपस में चिपक जाने से एक प्रकार की सींग की शकल ग्रहण कर लेते हैं जो बहुत कड़े हो जाते हैं। ये खाग नर और मादा दोनों के होते हैं और एक बार टूट जाने पर उसके स्थान पर दूसरा खाग निकल आता है।

गैंड का रङ्ग कलछौंह सिलेटी रहता है और इसकी मोटी खाल पर कान और दुम को छोड़कर कहीं भी घने बाल नहीं होते। इसके बदन की खाल में जगह-जगह शिकन पड़ी रहती है। इसके कारण इनका बदन कई हिस्सों में बँटा-बँटा सा जान पड़ता है, जो देखने में ढाल से जान पड़ते हैं।

इसके पैर में तीन नाख़ून होते हैं, जो हाथी के नाख़ून से मिलते-जुलते रहते हैं। पैर छोटे और गठीले होते हैं। इसका सर बड़ा, आँखें छोटी और कान औसद लम्बाई के रहते हैं। इसकी मोटी खाल की सिकुड़न के नीचे का हिस्सा काफ़ी मुलायम रहता है जिसके नीचे अकसर बहुत से कीड़े अपना घर बना लेते हैं और इनको बहुत काटते हैं। इन्हीं कीड़ों से परेशान होकर गैंडे कीचड़ में अपना बदन रगड़ते हैं और तब इनको किसी प्रकार जाकर कुछ आराम मिलता है।

गैंडा घास के मैदान में रहनेवाला जीव है, जिसे ऊँचे पहाड़ पसन्द नहीं आते। यह तराइयों की २०-२० फ़ुट ऊँची घास के बीच में अकेला घूमता रहता है। कभी-कभी एक ही जगह दो-चार गैंडे भी दिखाई पड़ जाते हैं। इसका शिकार बहुत ख़तरनाक होता है क्योंकि वैसे तो यह बहुत शान्त और सीधा जानवर है लेकिन घायल हो जाने पर यह बड़े वेग से हमला करता है।

उस समय यदि हाथी भी सामने पड़ जाय तो भी यह कुछ परवाह नहीं करता और अपने निचले दाँतों से सुअर की तरह बड़ी करारी चोट करता है।

गैंडा घास-पात खानेवाला जीव है, जो सुबह शाम भोजन की तलाश में इधर-उधर घूमता है। यह दिन भर पड़ा सोता रहता है। यह हाथी की तरह तेज़ भाग ही नहीं लेता बल्कि घोड़े तथा अन्य खुरवाले जानवरों की तरह दुलकी और पोई भी चल लेता है और सरपट भी भाग लेता है।

गैंडे की उम्र काफ़ी होती है। यह सौ साल तक जीते हुए देखा गया है। चिड़ियाख़ानों में गैंडे ५०, ६० वर्ष तक ज़िन्दा रहे हैं। इनका गोश्त खाने में स्वादिष्ट होता है।

गैंडे की एक आदत अजीब है कि जहाँ यह एक बार पाखाना करता है फिर रोज़ उसी जगह जाकर विष्ठा करता है। इससे शिकारियों को इसके रहने का पता चल जाता है और इसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

मादा १७-१८ महीने में एक बच्चा पैदा करती है जो देखने में बहुत प्यारा लगता है।

६—बनैला सुअर

The Wild Boar—Sus indicus

जङ्गली सुअर को बड़ैल, बनैल, बनैला और बरहा भी कहते हैं। हमारे यहाँ ये सारे देश में फैले हुए हैं और इनकी काफ़ी बड़ी संख्या हिमालय में भी १२,००० फ़ुट से कुछ ऊपर तक मिलती है।

ये सुअर देखने में बहुत कुछ हमारे देशी सुअरों से मिलते-जुलते होते हैं। फ़र्क थोड़ा-बहुत इनकी दुम में होता है। इन जङ्गली सुअरों के नरों के बड़े और नोकीले दाँत बढ़े रहते हैं।

बनैल लगभग ५ फ़ुट लम्बा होता है, जिसके क़रीब १ फ़ुट लम्बी दुम होती है। इसका मुँह लम्बा, थूथन चपटा और गोल रहता है। ऊँचाई में यह २ से ३ फ़ुट तक का होता है और इसका वज़न तीन चार मन से कम नहीं होता। नर, मादा से बड़े और ऊँचे होते हैं और इनके दो निचले दाँत क़रीब ५-६ इंच बाहर की ओर निकले रहते हैं। इन्हीं दाँतों से यह बड़ा भयंकर हमला करता है और अपने से बड़े जानवरों का भी पेट फाड़कर रख देता है।

बनैला सुअर

इसका रङ्ग वैसे तो काला होता है लेकिन उसमें कुछ कत्थई और कभी-कभी कुछ सफ़ेदी की भी झलक रहती है। पट्ठों का रङ्ग भूरा-पन लिए रहता है लेकिन पुराने सुअर कुछ सिलेटी मायल हो जाते हैं। बच्चे हलके भूरे रङ्ग के होते हैं जिन पर खड़ी-खड़ी गाढ़ भूरी पट्टियाँ पड़ी रहती हैं।

बनैले के ऊपरी हिस्से पर गुद्दी से लेकर सारी पीठ तक कड़े-कड़े बालों की एक पंक्ति रहती है। इसके सारे बदन के बाल भी कड़े

रहते हैं। सारी दुम नंगी रहती है सिर्फ सिरे पर कुछ कड़े बालों की कतारें रहती हैं।

जङ्गली सुअर जङ्गलों में ही नहीं बल्कि घास के मैदानों, कछारों, और झाड़ियों से भरे हुए नालों और ऊँची-नीची जगहों में भी रहता है। फसल तैयार होने पर इनके झुन्ड अक्सर खड़ी फसलवाले खेतों में घुसे रहते हैं। गेहूँ और गन्ने के खेत तो इनके रहने के लिए जैसे घर से बन गए हैं।

ये दिन में घनी झाड़ियों में पड़े रहते हैं लेकिन सुबह शाम और रात को इनका १०-१२ का झुण्ड चरने के लिए निकल पड़ता है। इस गरोह में अक्सर मादाएँ और बच्चे भी रहते हैं और नर अलग अकेला ही घूमता रहता है। बनैला वैसे तो रात्रिचर जीव है लेकिन यह साही की तरह अपने वक्त की पाबन्दी उस सख्ती से नहीं करता। इसे सुनसान जगहों में दिन चढ़ने पर भी घूमते देखा जा सकता है।

सुअरों को कीचड़ में लोटना भी कम पसन्द नहीं है। जङ्गलों के बीच किसी निरापद स्थान में यदि कीचड़ हुआ तो वहाँ अक्सर सुअर दिखाई पड़ेंगे। इनका मुख्य भोजन शाकाहार और जड़ें हैं, जिसकी तलाश में ये नरम ज़मीन को चाल सा डालते हैं। फ़सल को तो शायद इनसे ज्यादा कोई जङ्गली जानवर नुक़सान नहीं पहुँचाता कन्दमूल के अलावा कभी-कभी ये मरे हुए जानवरों का मांस भी खा लेते हैं।

ये भागने में बहुत तेज़ होते हैं लेकिन इनकी यह रफ़्तार थोड़ी ही दूर तक के लिए होती है। तेज़ घोड़े से ये थोड़ी ही दूर में पकड़े जा सकते हैं। पहले तो इनका शिकार अक्सर घोड़े पर चढ़कर लोग बल्लमों से करते थे लेकिन अब इसका रिवाज़ धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। अब तो इनको अक्सर लोग बन्दूकों से ही मारते हैं। इनका मांस बहुत ही स्वादिष्ट होता है।

बनैला सुअर वैसे तो शान्त जीव है और आहट पाने पर हमला करने से ज्यादा भाग जाना ही पसन्द करता है लेकिन घायल हो जाने पर इसका आक्रमण इतना भयंकर होता है कि शिकारियों के जान के लाले पड़ जाते हैं। इसकी और शेर की लड़ाई प्रसिद्ध है और अकसर यह देखा गया है कि इसके मारने में शेर को भी अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है। कभी-कभी तो सुअर घायल हो जाने पर, हाथी तक पर हमला कर बैठता है और इसके तेज़ दाँतों की मार बड़ी भयंकर होती है।

इनकी मादा साल में दो बार बच्चे जनती है जो संख्या में ४ से ६ तक होते हैं। मादा बच्चों के लिए घास काटकर एक सायेदार जगह बना देती है, जहाँ बच्चे आराम से रहते हैं।

हमारे देशी सुअर इन्हीं जङ्गली सुअरों से पालतू किये गए हैं।

७—सानो बनैल

The Pigmy Hog—Sus salvanius

सानो बनैल नेपाल का निवासी है। यहाँ यह तराई के जङ्गलों में काफ़ी संख्या में पाया जाता है। इसके अलावा हमारे देश में शिकम और भूटान को छोड़कर यह और किसी स्थान में नहीं मिलता।

यह दो सवा दो फ़ुट का कलछौंह भूरे रंग का छोटा सुअर है, जो एक फ़ुट से ज्यादा ऊँचा नहीं होता। इसकी दुम बहुत छोटी क़रीब १॥ ईंच की रहती है और वज़न में यह क़रीब आठ-नौ सेर का होता है। इसके बच्चों का रङ्ग गाढ़ भूरा रहता है, जिन पर खड़ी-खड़ी कत्थई पटरियाँ पड़ी रहती हैं। बनैले की तरह इनकी गुद्दी से लेकर सारी पीठ पर कड़े बालों की क़तार नहीं रहती लेकिन उसी

तरह के कड़े और बड़े बाल इसकी गरदन और बीच पीठ पर कुछ दूर तक रहते हैं।
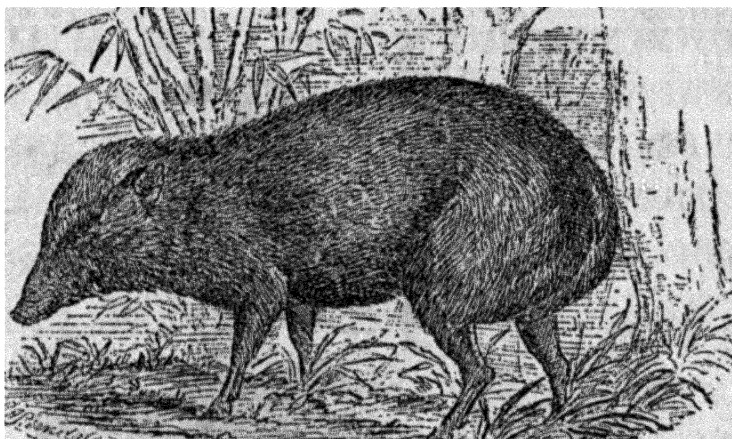
सानो बनैल

सानो बनैल की और आदतें जङ्गली सुअर से मिलती-जुलती होती हैं। इससे उन्हें यहाँ दुहराने की जरूरत नहीं जान पड़ती। यह ऊँची घास में गरोह बाँधकर रहनेवाला शाकाहारी जीव है, जिसके गरोह ५ से लेकर २० तक के होते हैं। कुछ तो अपने छोटे क़द के कारण और कुछ रात में निकलने के कारण, सानो बनैल बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं और यही कारण है कि हम इनके बारे में ज्यादा नहीं जान सके हैं।

८—सुअर

The Pig—Sus domestica

सुअरों की वैसे तो अनेकों जातियाँ हैं और संसार में शायद ही कोई ऐसी जगह होगी जहाँ सुअर न होते हों लेकिन हमारे यहाँ पालतू सुअर की एक ही जाति पाई जाती है।

सुअर

ये सुअर न विदेशी सुअरों की तरह चर्बी से लदे हुए होते हैं और न उनकी तरह इनका रंग ही सफेद होता है। इनका रंग-रूप तो बहुत कुछ बनैले सुअरों से मिलता जुलता रहता है। जिन्हें दोनों का भेद नहीं मालूम वे जल्द इन दोनों को पहचान भी न सकेंगे।

हमारे यहाँ के ये सुअर प्रायः वे लोग पालते हैं, जिन्हें हम नीची जाति के कहते हैं। मुसलमान लोग तो इन्हें छूना हराम समझते ही हैं, हिन्दू लोग भी इनको छूना या इनका मांस खाना नहीं पसन्द करते। लेकिन विदेशों में यह बात नहीं है। वहाँ लोग इन्हें केवल इनके बालों के लिए नहीं पालते बल्कि इनका मांस वहाँ इस कसरत से खाया जाता है कि हजारों सुअर वहाँ बड़े शहरों में नित्य काटे जाते हैं। यही कारण है कि वहाँ पालतू सुअरों की अनेकों नस्लें तो बना ही ली गई हैं, साथ ही साथ उनको मोटा और चर्बीला बनाने के लिए हर प्रकार के उद्योग किए जाते हैं। वे सुअर इतने मोटे हो जाते हैं कि उनको चलने में भी कष्ट होता है और उनका शरीर मांस का बड़ा पुलिंदा सा दीख पड़ता है।

हमारे यहाँ के सुअर गंदे कलछौंह रंग के जानवर हैं, जो क़द में बनैले सुअरों के बराबर ही होते हैं। इनकी शकल-सूरत बनैले सुअरों जैसी होती है लेकिन दुम में थोड़ा फ़र्क़ रहता है। इनकी आदत भी बहुत कुछ जंगली सुअरों की तरह होती है लेकिन इनके न उनकी तरह बड़े दाँत होते हैं और न वे उनकी तरह खूँखार और फुर्तीले ही होते हैं। इनमें पाखाना खाने की ऐसी गंदी आदत होती है जिसके कारण ये बड़ी घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं।

ये बनैले सुअरों की तरह निष्ठुर तो होते ही हैं, साथ ही साथ ये बहुत ही हठी और बेवक़ूफ़ जानवर माने जाते हैं।

इनकी मादा साल में दो बार बच्चे देती है और हर बार बच्चों की संख्या चार से दस तक देखी गई है।

इनके विषय में ख़ास ख़ास बातें इस वर्ग के वर्णन के साथ दी जा चुकी हैं और बहुत कुछ बातें जंगली सुअरों जैसी होने के कारण, उनको फिर से लिखना, उन्हीं बातों को दुहराना ही होगा।

९—गौर

The Gaur—Bos Gaurus

गौर का दूसरा नाम बोदा भी है। कुछ लोगों का यह ख़्याल है कि हमारी पालतू गाएँ इन्हीं बोदों से निकली हैं—लेकिन बात ऐसी है नहीं। गौर तो अभी तक पालतू ही नहीं किए जा सके हैं। एक नहीं अनेकों बार इसकी कोशिश की गई लेकिन सब बेकार। दो तीन साल से ज़्यादा ये जिन्दा ही न रह सके और फिर मजबूरन इनको पालतू करने का इरादा लोगों ने छोड़ दिया।

हमारे देश में गौर वैसे तो प्रायः सभी घने पहाड़ी जंगलों में फैले हुए हैं लेकिन उनके रहने के मुख्य स्थान हिन्द प्रायद्वीप के घने जंगल और हिमालय की तराई का पूर्वी हिस्सा हैं।

गौर काफी ऊँचे क़द का सुडौल और सुन्दर जानवर है—जिसके कंधे के पास की ऊँचाई ६ फ़ुट तक पाई गई है। वैसे औसतन ये ५ से पौने ६ फ़ुट तक के ऊँचे होते हैं। मादा ५ फ़ुट से ज़्यादा ऊँची नहीं होती। लम्बाई में नर लगभग ९ फ़ुट के और मादा क़रीब ७ फ़ुट की होती है।

इनका रंग वैसे तो भूरा होता है लेकिन पुराने नर क़रीब क़रीब काले हो जाते हैं। मादा और पट्ठों के रंग में कुछ ललाई रहती है। इनके नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है और ख़ुर के ऊपर से घुटने के कुछ ऊपर तक का हिस्सा सफ़ेद रहता है। सर पर आंखों के पीछे से गुद्दी तक का हिस्सा राखी रहता है, जो किसी-किसी में गंदे सफ़ेद में भी बदल जाता है। सींगों का रंग गंदा हरा या पिलछौंह रहता है और सींग के सिरे काले रहते हैं।

गौर हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध जानवर है, जिसका भारी भरकम शरीर देखने में बहुत रोबीला जान पड़ता है। इसके पैर और दुम, इसके शरीर को देखते हुए छोटे मालूम होते हैं लेकिन इसके कान बहुत बड़े होते हैं।
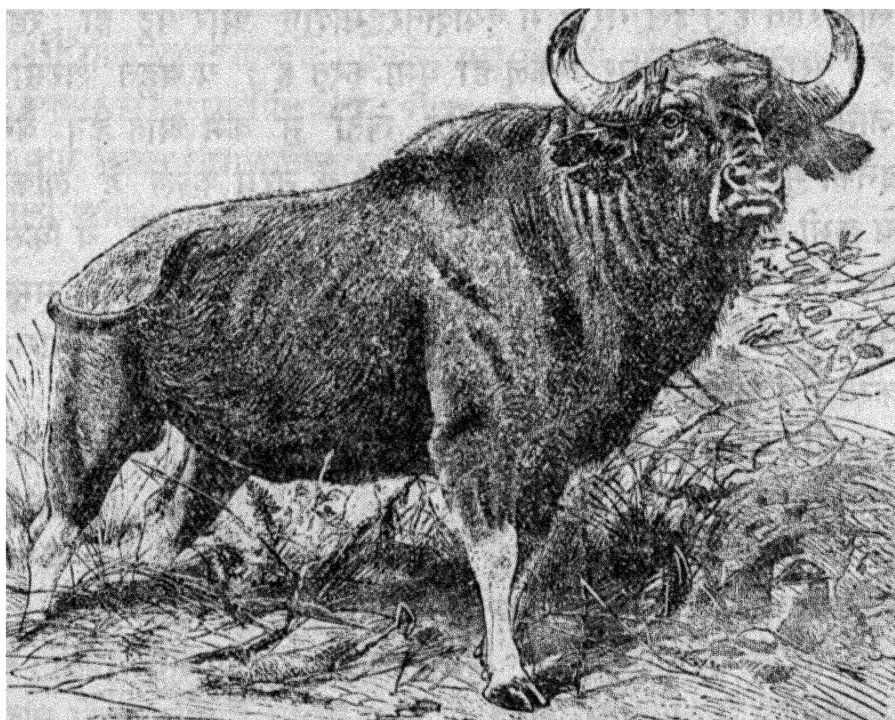
गौर

गौर ज्यादातर घनी घास अथवा जंगलों में रहना पसन्द करते हैं—वैसे ये खड़े पहाड़ों पर बड़ी आसानी और तेजी से चढ़-उतर लेते हैं लेकिन इन्हें ऐसे स्थान ज्यादा नहीं भाते। दक्षिण की ओर यह जरूर ५-६ हज़ार फ़ुट तक की ऊँचाई पर चला जाता है लेकिन हिमालय की ओर यह इतने ऊँचे तक नहीं चढ़ता।

गौर सीधा और डरपोक जानवर है। यह ख़तरा नज़दीक देखकर हमला करने से ज़्यादा भागना ही पसन्द करता है। कुछ

अकेले रहनेवाले गौर जरूर अकारण ही हमला कर बैठते हैं, नहीं तो वैसे ये जब तक घायल नहीं होते तब तक मनुष्यों पर आक्रमण नहीं करते।

ये गरोह में रहनेवाले जानवर हैं जो ५ से लेकर २० तक एक साथ रहते हैं। इस गरोह में ज्यादातर मादाएँ और पट्ठे ही रहते हैं। पुराने नर अकसर अकेले ही घूमा करते हैं। ये बहुत शरमीले जानवर हैं और आबादी के क़रीब खेतों में कम आते हैं। वैसे इनका मुख्य भोजन घास-पात और बाँस के नरम कल्ले हैं लेकिन ये कभी-कभी खेतों को भी चर डालते हैं। इतना ही नहीं, ये किसी पेड़ की छाल भी बड़े स्वाद से खाते हैं। इनके चरने का समय सुबह-शाम है। दिन को और रात को ये अकसर लेटकर आराम करते हैं। इनके पानी पीने का समय दोपहर है।

गौर या बोदा का शिकार बहुत होता है और काफ़ी दिलचस्प होता है। गौर की सुनने की शक्ति गज़ब की होती है। इस कारण इसके शिकार में बहुत खामोशी अख़्तियार करनी पड़ती है। घायल हो जाने पर बोदा बहुत भयंकर हमला करता है।

गौर के बच्चा देने का समय बहुत कुछ पालतू गायों से मिलता है। ये ज़्यादातर जाड़ों में जोड़ा बाँधते हैं और इनकी मादा अगले अगस्त और सितम्बर तक बच्चे देती हैं।

१०—गयाल

The Gayal—Bos frontalis

गयाल को गौर का छोटा स्वरूप कह सकते हैं। शकल सूरत ही नहीं, रंग रूप में भी यह बहुत कुछ गौर से मिलता-जुलता होता है। सबसे बड़ा फ़र्क जो इन दोनों में कहा जा सकता है, वह यह है कि गौर को पालतू करने में मनुष्यों को सफलता नहीं मिली है लेकिन गयाल काफ़ी संख्या में पालतू कर लिए गए हैं।

गयाल 'मिथन' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये हमारे यहाँ आसाम में, ब्रह्मपुत्रा के पूर्वी पहाड़ी हिस्सों में पाए जाते हैं। इसके अलावा ये त्रिपुरा की पहाड़ियों और चिटगांग के आस-पास भी मिलते हैं।

ये क़द में गौर से कुछ छोटे होते हैं और इनके नर मादा दोनों का रंग गाढ़ भूरा रहता है। इनके चारों पैरों के घुटने से ऊपर तक का हिस्सा सफ़ेद या पिलछौंह रहता है। सींग कलछौंह होती है। कुछ पालतू गयाल चित्तीदार भी होते और कुछ सफ़ेद भी लेकिन जंगली अवस्था में इनका रंग गाढ़ भूरा ही रहता है।
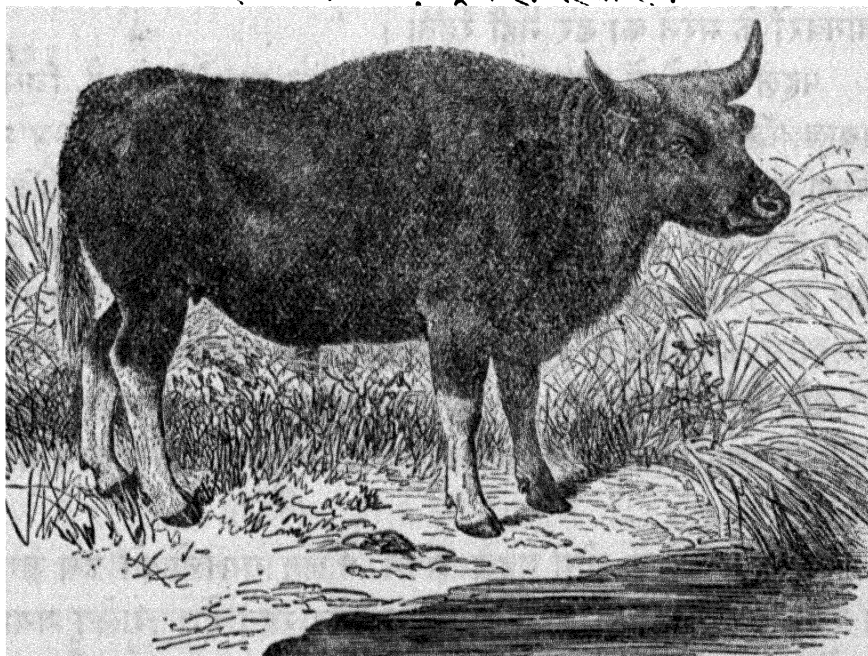
गयाल

गयाल, गौर से भी सीधे जानवर हैं। इसी कारण इनको पालतू करना, इतना आसान हो गया है। आसाम की सीमा पर के निवासियों के लिए ये बहुत ही उपयोगी जानवर हैं। इनसे यद्यपि खेत वग़ैरह नहीं जुतवाए जाते लेकिन इनका स्वादिष्ट मांस और दूध

वहाँ के लोगों के लिए बहुत कीमती वस्तुएँ हैं। गयाल को हमारे यहाँ के ऊँट-घोड़ों की तरह इस तरह पालतू नहीं बना लिया गया है कि उनका सिलसिला ही उनके जंगली भाई-बंधुओं से काट दिया गया हो। वे तो हाथियों की तरह पालतू किए गए हैं और हर साल उतनी ही संख्या में जंगली गयाल जंगलों से पालतू करने के लिए पकड़े जाते हैं जितनों की वहाँ के निवासियों को ज़रूरत रहती है। इनको पकड़ने के लिए दो तरीक़े इस्तेमाल किए जाते हैं। एक आसान और जल्दी का है लेकिन उसमें बहुत से जानवर मर जाते हैं और दूसरा मुश्किल और देर का है लेकिन उसमें जानवरों के मरने का डर नहीं रहता।

पहले तरीक़े में लोग एक बड़ा मज़बूत बाड़ा घेरते हैं, जिसमें गयाल फँसा लिए जाते हैं। फिर एक ओर एक पतला सा रास्ता खोला जाता है, जिसके आगे एक फंदा लटकता रहता है। फंदे के आगे कुछ खाने की चीज़ें रख दी जाती हैं। भूखा गयाल जैसे ही उस ओर सर निकालता है, उसका सर फंदे में चला जाता है। फंदा मज़-बूत रस्सी का होता है, जिसे फ़ौरन कस लिया जाता है। फिर गयाल को बाँधने में ज़्यादा देर नहीं लगती। लेकिन अकसर यह होता है कि फंदा ज़्यादा कस जाने से गयाल को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

दूसरे तरीक़े में लोग पहले अपने पालतू गयालों को उस जगह ले जाकर छोड़ देते हैं, जहाँ जंगली गयाल रहते हैं। पालतू गयाल उनमें मिल जाते हैं। फिर वहाँ के लोग मिट्टी, नमक, रुई और कुछ और चीज़ें मिलाकर आदमी के सर के बराबर के गोले बनाते हैं, जिन्हें वे जंगलों में फेंक आते हैं। पालतू और जंगली दोनों गयाल इन गोलों को चाटते हैं और रोज़ उन्हीं के लालच से उसी जगह आने लगते हैं। वहाँ के निवासी धीरे-धीरे उनके सामने आने लगते हैं और क़रीब एक महीने के भीतर उनके इतने निकट

पहुँच जाते हैं कि जंगली गयाल उनसे ज़रा भी नहीं भड़कते। १५-२० दिन तक इसी प्रकार उनके साथ रहने के बाद, एक दिन वे अपने पालतू गयालों के साथ इन्हें भी अपने गाँवों की ओर हाँक लाते हैं और ये जंगली गयाल भी पालतू गयालों के साथ गाँवों में आकर रहने लगते हैं। दिन में पालतू गयालों को उनके मालिक चरने के लिए खोल देते हैं और वे इतने हिलमिल जाते हैं कि सारे दिन जंगलों में चरने के बाद शाम होते ही अपने मालिक के घर पर लौट आते हैं।

११—गाय-बैल

The Oxen—Bos indicus

हमारे देश में जो पालतू गाय-बैल हैं, वे कूबड़वाले कहलाते हैं क्योंकि इनके कन्धे पर कूबड़ सा उठा रहता है लेकिन योरोप के गाय-बैल बिना कूबड़ के होते हैं।

कूबड़वाले गाय-बैलों की बहुत सी नसलें हमारे देश में पाई जाती हैं लेकिन इनके पूर्वज या तो भेड़ों की तरह खो गए हैं या वे सब पकड़कर ऊँटों की तरह पालतू कर लिए गए हैं। विदेशों के लिए भेड़ जितनी उपयोगी हैं, उससे कहीं ज्यादा उपयोगी, हमारे लिए गाय-बैल हैं क्योंकि हमारे कृषि-प्रधान देश में नब्बे फ़ीसदी लोगों का पेट इन्हीं की मेहनत से भरता है।

अपनी गायों के बारे में हम खुद ही इतना ज्यादा जानते हैं कि उसे यहाँ दुहराना फ़िजूल ही होगा। वह तो हमारे घर की एक प्राणी की तरह हो गई है। लेकिन उसकी शरीर-रचना तथा कुछ ख़ास-ख़ास बातों के बारे में संक्षेप में यहाँ लिखना जरूरी है।

जैसा ऊपर बता आया हूँ, हमारे यहाँ के गाय-बैल कूबड़वाले कहलाते क्योंकि इनके कन्धे पर एक कूबड़ सा निकला रहता है। इनके कान बड़े और गिरे से रहते हैं और इनकी गरदन के निचले

हिस्से की खाल लहरदार होकर लटकती रहती है, जो घेघी कहलाती है। इनके नर-मादा दोनों की सींग क़रीब-क़रीब बराबर ही होती है। इनके क़द के बारे में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमारे देश में इनकी एक नहीं अनेकों जातियाँ हैं, जो छोटी-बड़ी सभी तरह की होती हैं। इनमें मान्टगोमरी, माहीवाल, हिसार, हरियाना, खैरीगढ़, गीर, काँकरेज, थार्परकर और सिन्धी प्रसिद्ध नस्लें हैं। यही हाल इनके रंग के बारे में भी है। ज्यादातर गाय-बैलों का रंग सफ़ेद रहता है जिसमें कुछ राखीपन की झलक रहती है। वैसे ये भूरे, काले, या धुर सफ़ेद भी मिलते हैं।
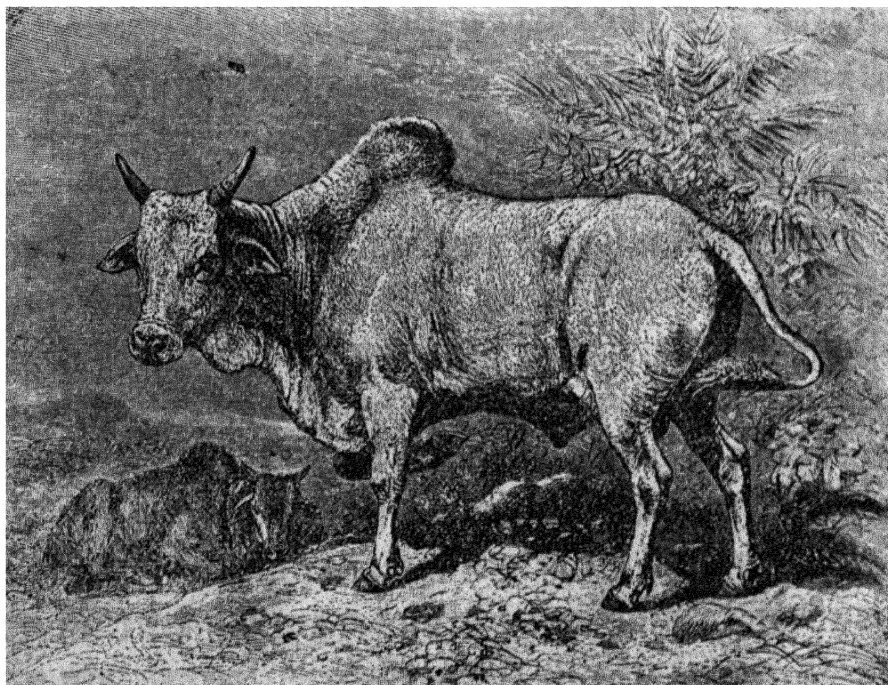
गाय-बैल

बैल बहुत ही सुन्दर जानवर है लेकिन संसार भर में शायद यही ऐसा प्राणी है जिसकी मादा को इतना आदर और नर को इतनी मेहनत करनी पड़ती है। खेती के कामों के अलावा बैल को गाड़ी

भी खींचनी पड़ती है और सामान भी ढोना पड़ता है लेकिन यह सब कष्ट बड़े धैर्य से सहता है। यह अपने गठे हुए शरीर में बहुत भोला जान पड़ता है। इसकी दुम लम्बी होती है जिसके सिरे पर बालों का गुच्छा सा रहता है।

हमारे देश में कई जगह जंगली गाय-बैल पाए जाते हैं। जो 'बनया' या 'बनगैली' कहलाते हैं। बहुत लोग यह खयाल करते हैं कि यही शायद हमारे पालतू गाय-बैलों के पूर्वज हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। ये जंगली गाय-बैल तो हमारे वे ही पालतू गाय-बैल हैं जो किसी कारणवश जंगल में रहने लगे हैं और धीरे-धीरे वहीं बच्चे पैदा करके उन्होंने अपनी संख्या बढ़ा ली है। जंगल में पैदा होनेवाले बच्चे यद्यपि काफ़ी जंगली हो गए हैं लेकिन पकड़े जाने पर वे थोड़े ही दिनों में फिर पालतू हो जाते हैं और अपना जंगलीपन भूलकर पालतू जानवरों की तरह काम करने लगते हैं।

गाय-बैल बहुत शान्त स्वभाव के पशु हैं। इन्हें वैसे तो भैंस की तरह पानी पसन्द नहीं है लेकिन ये तैरने में उस्ताद होते हैं। अपने बल और पौरुष के लिए तो ये प्रसिद्ध ही हैं। ये इतना भारी बोझा खींच लेते हैं जो घोड़ों के मान का नहीं। इनकी सूँघने और सुनने की शक्ति जितनी तेज़ होती है, उतनी देखने की शक्ति नहीं होती।

इनका मुख्य भोजन, घास-पात और नरम कल्ले हैं। इसके अलावा ये पानी के पौधे और काई तथा गल्ला बड़े स्वाद से खाते हैं। इन्हें नमक बहुत पसन्द है, जिसे खाने के बाद ये चाटते रहते हैं।

गाय अकसर एक लेकिन कभी-कभी दो बच्चे भी देती हैं, जो जल्द ही माँ के साथ चलने-फिरने लगता है।

१२—सुरागाय

The Yak—Bos grunniens

सुरागाय हमारे यहाँ के उन प्रसिद्ध जानवरों में से है जिसका साहित्य में बहुत वर्णन मिलता है। वैसे अँगरेज़ी में इसे 'याक' कहते हैं क्योंकि तिब्बत के निवासी जहाँ का यह रहनेवाला है, इसे इसी नाम से पुकारते हैं। हमारे यहाँ यह 'सुरागाय' या 'बनचौर' कहलाता है और संस्कृत-साहित्य में तो इसका 'चमरी' नाम बहुत ही प्रसिद्ध है।

सुरागाय को शायद ही हम लोगों ने देखा हो क्योंकि यह १५ से २० हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर रहनेवाला जानवर है। हाँ, इसकी दुम के बने मोरछल हम लोगों ने ज़रूर देखे होंगे। याक वैसे तो तिब्बत के ऊँचे पठार का निवासी है लेकिन हमारे देश में यह उत्तरी लद्दाख़ Ladak में पाया जाता है। इसके अलावा यह हमारे इतने बड़े देश में कहीं नहीं मिलता।

सुरागाय काफ़ी कद्दावर जानवर है, जिसका कंधा ऊँचा, पीठ चौरस और पैर छोटे और गठीले होते हैं। इसके कान छोटे होते हैं लेकिन खुर बड़े और गोलाई लिए हुए रहते हैं। इसकी पीठ और बगल के बाल तो छोटे रहते हैं लेकिन नीचे के हिस्से के, पैरों के ऊपरी हिस्से के और सीने पर के बाल काफ़ी लम्बे होते हैं।

सुरागाय वैसे तो हमारे पालतू कूबड़वाले बैलों से क़द में कुछ छोटा ही होता है लेकिन अपने ऊँचे कंधे और बड़े बालों के कारण यह देखने में ज़्यादा रोबीला जान पड़ता है। यह ६ फ़ुट ऊँचा और सवा सात फ़ुट लम्बा जानवर है, जिसके क़रीब सवा तीन फ़ुट लम्बी दुम होती है। इसके नर का वज़न लगभग २५ मन के होता है। मादा कुछ छोटी और हलकी होती है।

सुरागाय के सारे बदन का रंग कलछौंह, गहरा भूरा या क़रीब-क़रीब काला कहा जा सकता है, जिसमें थूथन के पास का कुछ हिस्सा सफ़ेद रहता है। पुराने नरों के सर और गरदन पर का कुछ हिस्सा सिलेटी और पीठ पर का कुछ हिस्सा ललछौंह होता है।

याक या सुरागाय शायद सबसे अधिक ऊँचाई पर रहनेवाले जानवर हैं, जिन्हें घने और दुर्गम पहाड़ी स्थानों में रहना पसन्द आता है। गर्मियों में मादाएँ और बच्चे इकट्ठे होकर १५-२० का गोल बना लेते हैं। लेकिन नर या तो अकेले रहते हैं और या ३-४ का गोल बनाकर मादाओं से अलग रहते हैं। जोड़ा बाँधने के समय प्रत्येक नर तीन-चार मादाओं को अलग करके अपना छोटा सा गरोह बना लेता है और उन्हीं के साथ रहता है।

सुरागाय का मुख्य भोजन घास-पात है। इन्हें तिब्बत की एक प्रकार की कड़ी घास बहुत पसन्द है, जिसे ये बड़े चाव से चरते हैं। इनकी चराई का समय सुबह और शाम है। दिन को ये किसी निरापद स्थान पर आराम करते हैं। ये पानी बहुत पीते हैं और जाड़ों में ये बर्फ़ खाकर पानी की कमी पूरी करते हैं।

सुरागाय वैसे तो सीधे और डरपोक जानवर हैं लेकिन घायल होने पर ये बड़ा भयंकर हमला कर बैठते हैं। इनकी देखने और सुनने की शक्ति तेज़ नहीं होती लेकिन इनकी सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है जिससे ये काफ़ी दूर की चीज़ों का सूँघकर ही पता लगा लेते हैं।

कुछ याकों को वहाँ के निवासियों ने पकड़कर पालतू बना लिया है। बहुत समय से पालतू हो जाने के कारण इनका क़द भी छोटा हो गया है और गयालों की भाँति इनके रंग में भी तब्दीली आ गई है। इनमें से बहुत से चितकबरे या सफ़ेद हो गए हैं। हमारे यहाँ इन्हीं की सफ़ेद गावदुम, चँवरी या मोरछल बिकने के लिए आती है। याक को पालकर, वहाँ के लोग इनसे गयाल की तरह केवल दूध

अरना के बदन पर बहुत छोटे और कम बाल रहते हैं। पुराने जानवरों के शरीर पर तो और भी कम बाल रह जाते हैं। इनका रङ्ग गाढ़ सिलेटी या काला रहता है लेकिन इनके पैरों में कुछ सफ़ेदी रहती है। कुछ पालतू भैंसों के तो चारो पैर गौर या गयाल की तरह घुटने से ऊपर तक सफ़ेद रहते हैं।
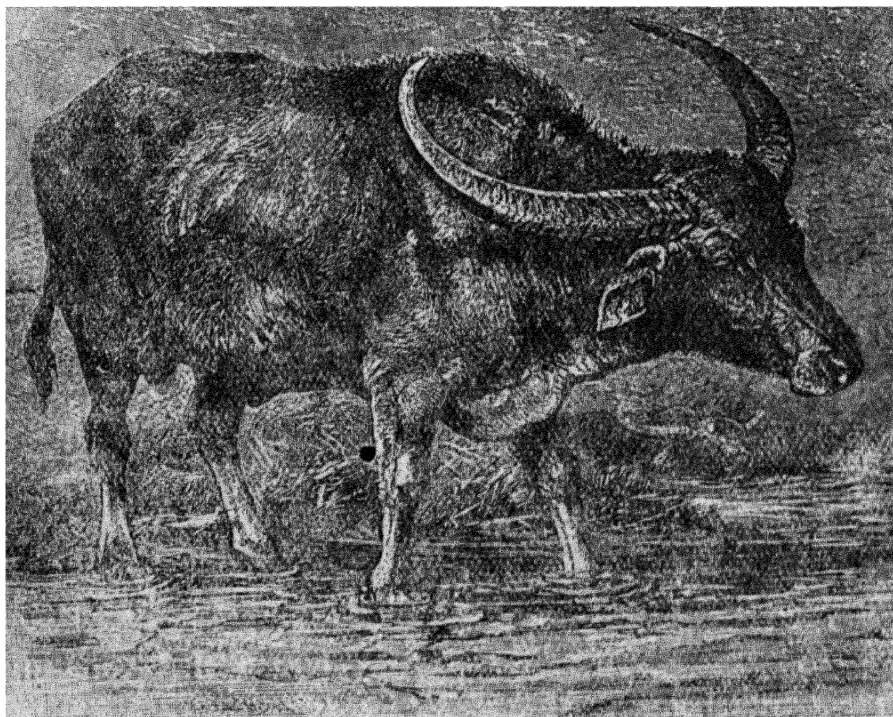
अरना-भैंसा

अरना को न तो जङ्गल ही पसन्द आता है और न पहाड़ ही। इसे तो घास के मैदानों में ही रहना अच्छा लगता है। फिर अगर इन मैदानों में दलदल हुए, तो क्या पूछना। ऐसे स्थान को छोड़कर अरनों का झुण्ड कहीं जाना ही नहीं पसन्द करेगा। कीचड़ और पानी में पड़े रहने की यह आदत हम अपने पालतू भैंसों में

भी देख सकते हैं। अरना-भैंसे हमेशा घास या नरकुल के जङ्गलों में ही घुसे रहते हों, सो बात नहीं है। ये अकसर खुले मैदानों में भी घूमते हैं क्योंकि खुरवाले जानवरों में शायद अरना से ज्यादा निडर और बहादुर और कोई दूसरा जानवर नहीं होता।

ये प्रायः छोटे-बड़े सभी प्रकार के गरोह बनाकर रहते हैं। कभी-कभी तो इनके झुण्ड में ५० से भी ज्यादा जानवर देखे गए हैं। इनका मुख्य भोजन घास है। सुबह-शाम और रात को ये चराई पर निकलते हैं। दिन को ये आराम करते हैं और कीचड़ या पानी में लेटकर अपना वक्त काटते हैं। ये खेतों का भी बहुत नुकसान करते हैं और कभी-कभी इनका नर, इस तरह किसी खेत पर क़ब्जा कर लेता है कि जैसे खेत उसी का हो।

अरना बहुत ढीठ और निडर जानवर है। यह जंगल में भी आदमियों को देखकर और जानवरों की तरह, फौरन नहीं भाग खड़ा होता। वैसे यह सीधा जानवर है और बिना घायल हुए आदमियों पर आक्रमण नहीं करता लेकिन कभी-कभी इनके पुराने नर अकारण ही हमला कर बैठते हैं। अकसर यह भी होता है कि इनका पूरा गरोह, जिसमें मादा और पट्ठे भी शामिल रहते हैं, किसी दुश्मन की आहट पाकर उस पर एक साथ ही हमला करते हैं। ऐसे हमले का मतलब यद्यपि दुश्मन को मारना नहीं बल्कि उसे भगाना ही रहता है लेकिन यह इतना भयंकर हो जाता है कि इससे शेर तक के छक्के छूट जाते हैं और उसको भागते ही बनता है। घायल होने पर तो अरना जैसे डरना ही नहीं जानता। वह हाथी तक पर हमला कर बैठता है।

इनके बच्चा देने का समय पालतू गायों की तरह करीब १० महीने का है, जब मादा एक या दो तक बच्चे जनती है।

१४—नीलगाय

The Nilgai—Boselaphus tragocamelus

नीलगाय हमारे यहाँ के उन प्रसिद्ध जानवरों में से है जो अपनी ढिठाई के कारण घने जंगलों में ही नहीं बल्कि छोटे छोटे, तितरे-बितरे जंगलों, घास और झाड़ियों के मैदानों, कछारों और यहाँ तक कि खेतों और ऊसरों तक में घूमते हुए दिखाई पड़ जाते हैं।
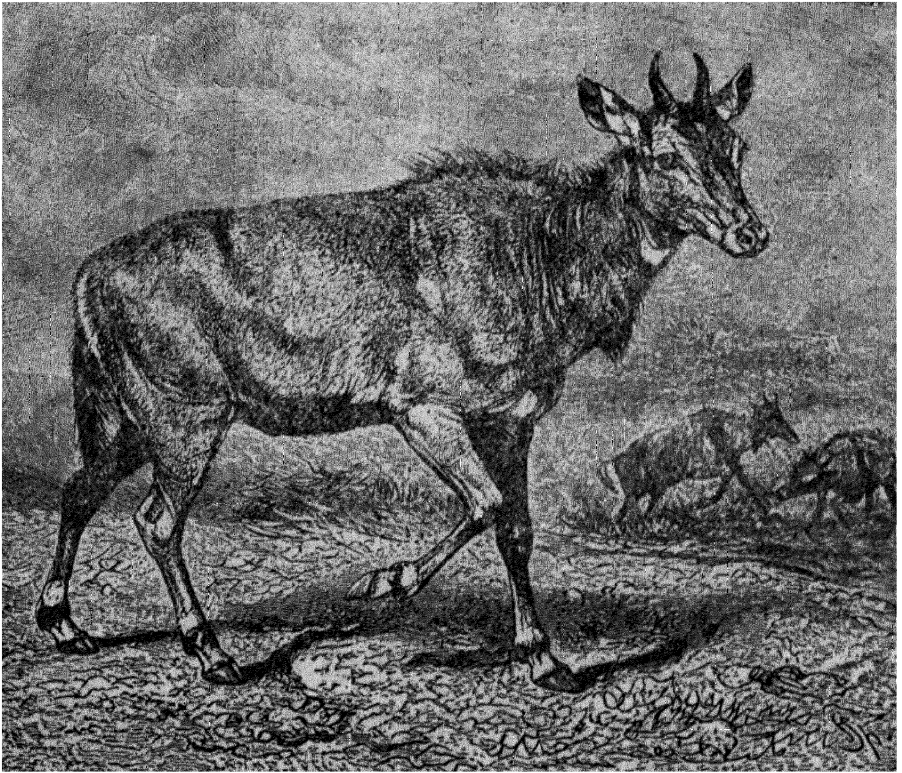
नीलगाय

नीलगाय हमारे देश में हिमालय की तराई से मैसूर के दक्खिन तक पाये जाते हैं। पच्छिम की ओर ये पंजाब के पूर्वी हिस्से

तक मिलते हैं और पूर्व की ओर इन्हें बंगाल और आसाम में देखना संभव नहीं।

नीलगाय काफी ऊँचे और भारी शरीरवाले जानवर हैं, जिनसे हम सभी परिचित हैं। इनके नर जो जवान हो जाने पर निलछौंह काले हो जाते हैं, "लिल" या सांड कहलाते हैं। इनकी लम्बाई लगभग ७ फ़ुट होती है। ऊँचाई में नर ५ फ़ुट से थोड़े ही छोटे होते हैं। इनकी दुम की लम्बाई क़रीब दो फ़ुट होती है। नर की सींग ८-९ इंच तक होते हैं। मादा के सींग नहीं होते। वे क़द में भी नर से छोटी रहती हैं। नर के गले पर बालों का एक गुच्छा सा रहता है और नर मादा दोनों के कंधों पर अयाल या बालों की कतार सी रहती है।

नीलगाय के पिछले पैर अगले पैरों से कुछ छोटे होते हैं। इससे उसका अगला हिस्सा उठा सा रहता है। बचपन में नीलगाय भूरे रंग के रहते हैं लेकिन जवान होने पर मादाएँ तो भूरी की भूरी रह जाती हैं लेकिन नर का रंग भूरे से बदलकर गाढ़ सिलेटी हो जाता है, जो उमर के साथ ही साथ निलछौंह सिलेटी होता जाता है।

इनके अयाल और सामने के गुच्छेदार बाल काले रंग के होते हैं। कान का आधा ऊपरी हिस्सा और दुम का सिरा भी काला ही रहता है। गले पर का कुछ हिस्सा, ओठ, ठुड्ढी, कान का भीतरी हिस्सा, पेट और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। दोनों गालों पर एक-एक सफ़ेद चित्ते रहते हैं।

नीलगाय को 'रोझ' भी कहते हैं। हमारे प्रान्त में इनके नाम के साथ गाय लग जाने के कारण हिन्दू लोग इन्हें भले ही न मारें लेकिन मध्य-भारत की ओर जहाँ इन्हें रोझ कहा जाता है, इनका ख़ूब शिकार होता है। जैसा ऊपर बता आया हूँ नीलगाय को खुले मैदानों

और खेतों में काफ़ी आसानी से देखा जा सकता है क्योंकि इन्हें एक तो घने जंगल पसन्द नहीं हैं, दूसरे न मारे जाने के कारण ये इतने ढीठ हो गए हैं कि इनके झुण्ड बिना किसी डर के खेतों में घुसे रहते हैं और जिस खेत में इनका गरोह पहुँच जाता है उसे साफ़ ही समझना चाहिए।

नीलगाय झुण्ड में रहनेवाले जीव हैं, जो प्राय: १५-२० का गोल बनाकर रहते हैं। नर वैसे तो अकेले ही रहते हैं लेकिन कभी-कभी ये चार-पाँच मादाओं का गरोह बनाकर भी घूमते दिखाई पड़ जाते हैं। कभी-कभी केवल चार-पाँच पुराने नरों का भी गरोह नज़र आ सकता है।

नीलगाय का मुख्य भोजन घास-पात है। ये खेतों और बाग़ों का बहुत ज़्यादा नुकसान करते हैं। इनके चरने का समय सारा दिन और रात है, जो इनके पास-पड़ोस की परिस्थिति के मुताबिक़ बदलता रहता है। दिन को ये किसी निरापद स्थान पर बैठकर आराम करते हैं और एक ही स्थान पर रोज़ जाकर विष्ठा करते हैं। इनकी इस आदत के कारण इनकी लेंड़ियों (विष्टा) को देखकर इनके रहने के स्थान का पता बड़ी आसानी से लग जाता है। नीलगाय ढीठ हो जाने के कारण भले ही आदमियों को देखकर न भागें लेकिन मौका पड़ने पर ये घोड़े की तरह सरपट भागते हैं। कुछ लोग इनका शिकार घोड़ों पर चढ़कर बरछों से करते थ लेकिन अब ये ज़्यादातर बन्दूक़ों से मारे जाते हैं। इनका मांस मामूली क़िस्म का होता है और उसे बहुत कम लोग खाते हैं।

नीलगाय बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं लेकिन नर अकसर बड़े होने पर बहुत उत्पाती हो जाते हैं। इनके बच्चे देने का समय ८-९ महीना है, जब मादा प्राय: एक या दो बच्चे जनती है।

१५—चौसिंगा

The Four-horned Antelope—Tetracerus quadricornis

चौसिंगा चार सींगोंवाला हिरन है, जैसा कि इसके नाम से ज़ाहिर है। लेकिन ख़ैरियत इतनी ही है कि इसके सींग बहुत छोटे होते हैं और वह भी केवल नरों के। मादाएँ नीलगाय की मादाओं की तरह बिना सींग के ही रहती हैं।

चौसिंगा हमारे देश में हिमालय की तराई में पंजाब से नैपाल तक पाया जाता है। इसके अलावा इनकी काफ़ी संख्या सिन्ध, बाम्बे प्रेसीडेन्सी, मध्य-भारत और राजपूताना के जंगली हिस्सों में पाई जाती है। उड़ीसा और बंगाल की ओर ये बहुत कम या बिलकुल नहीं दिखाई पड़ते।

चौसिंगा क़रीब ३॥ फ़ुट लम्बा जानवर है जिसकी ऊँचाई २॥ फ़ुट से कुछ कम ही होती है। दुम ५-६ इंच से ज्यादा लम्बी नहीं होती और वज़न में यह लगभग आधे मन का रहता है। मादा इससे भी छोटी और हलकी होती है।

चौसिंगे के नर-मादा एक ही रंग के होते हैं। हाँ, नर सींगवाले होते हैं और मादा के सींग नहीं होते। इनके बदन का रंग बादामी भूरा होता है, जिसमें पीठ पर एक प्रकार की ललाई मिली रहती है। नीचे का हिस्सा सफ़ेद रहता है और टाँगों पर गाढ़े रंग की एक पट्टी पड़ी रहती है। कान के बाहरी हिस्से और थूथन गाढ़ रंग के होते हैं।

चौसिंगा जैसा ऊपर बता आया हूँ, तितरे-बितरे पहाड़ियों तथा जंगलों का निवासी है। इसे घने जंगल और ऊँचे पहाड़ पसन्द नहीं आते। यह अपनी शकल-सूरत में ही नहीं बल्कि

अपनी आदतों में भी हमारे यहाँ के और हिरनों से निराला होता है। ये झुण्ड में कभी नहीं रहते और दो से ज्यादा बहुत ही कम एक साथ दिखाई पड़ते हैं। इसे पानी बहुत पसन्द है। इसी कारण यह जलाशयों के आस-पास ही रहता है। इसके चलने का ढंग भी अजीब सा है। इसके चलते समय या भागते समय ऐसा जान पड़ता है जैसे इसको झटका सा लग रहा हो।
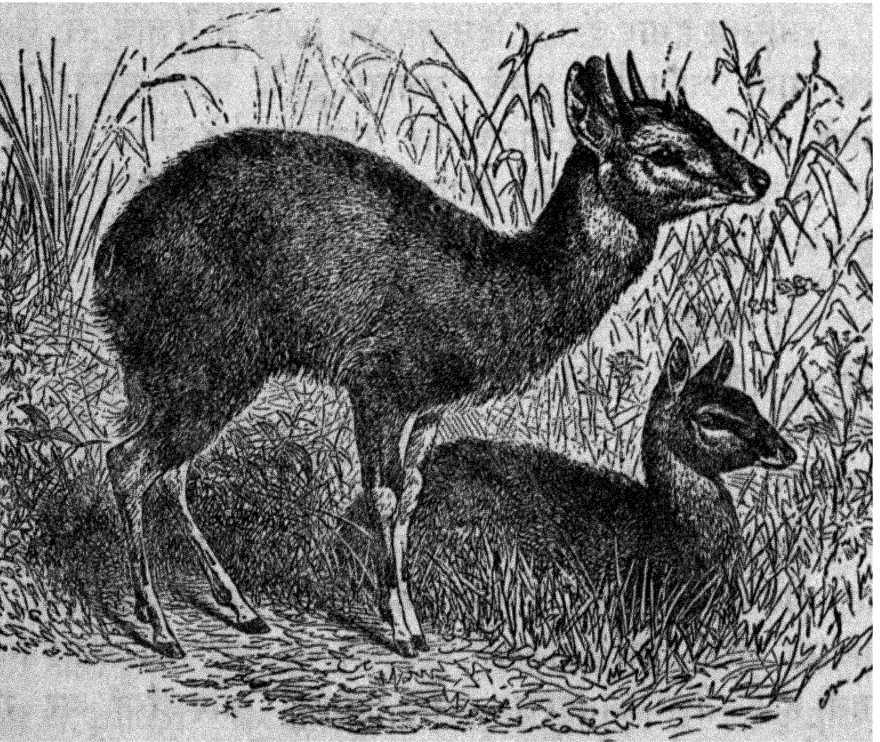
चौसिंगा

चौसिंगा छोटा सा शरमीला जानवर है जो छुटपन में पकड़े जाने पर बड़ी आसानी से पालतू हो जाता है। चौसिंगे का मांस रूखा और स्वादिष्ट होता है।

इसके बच्चा देने का समय क़रीब ६ महीने का है जब मादा एक से दो तक बच्चे पैदा करती है। बच्चे अकसर जनवरी और फ़रवरी में पैदा होते हैं।

१६—मृग

The Black Buck—Antelope cervicapra

मृग हमारे यहाँ के हिरनों में सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि लोग और हिरनों को तो अलग-अलग नाम से पुकारने लगे हैं लेकिन इसको हिरन ही कहा जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह भी है कि यह सबसे अधिक संख्या में हमारे देश में पाया जाता है।

मृग भारतवर्ष में, हिमालय की तराई से धुर दक्खिन तक और पंजाब से आसाम तक, खुले मैदानों में फैले हुए हैं। अपनी सुविधा के अनुसार इन्होंने कुछ ख़ास-ख़ास जगहों को अपने रहने का अड्डा बना लिया है। इन्हें न तो पहाड़ ही पसंद है और न ऊँची घास के मैदान या घने जंगल ही। इनका समय तो ऐसे खुले मैदानों में बीतता है, जहाँ इन्हें ख़ूब चौकड़ी भरने की सहूलियत मिली हो।

मृग क़रीब ३०-३२ इंच ऊँचा होता है। इसकी लम्बाई भी चार फ़ुट से कम नहीं होती। दुम ६-७ इंच की होती है लेकिन सींगों की लम्बाई १८-२० इंच तक की रहती है। ये सींग घरारीदार तो होते ही हैं, साथ ही साथ इनमें घुमाव भी होता है। मादाएँ बिना सींग के ही रहती हैं। वज़न में मृग एक मन से कुछ ज्यादा ही होते हैं।

मृग के बच्चों और मादाओं के बदन का ऊपरी और पैर का बाहरी हिस्सा पिलछौंह भूरा या बादामी होता है लेकिन नीचे

का कुछ हिस्सा धुर सफ़ेद रहता है। नर ज्यों-ज्यों पुराने होते जाते हैं, उनका ऊपरी भूरा हिस्सा कलछौंह होता जाता है। यहाँ क कि तबहुत पुराना हो जाने पर, वह एकदम काला हो जाता है। सर के ऊपरी हिस्से या गुद्दी पर का थोड़ा हिस्सा जरूर काला
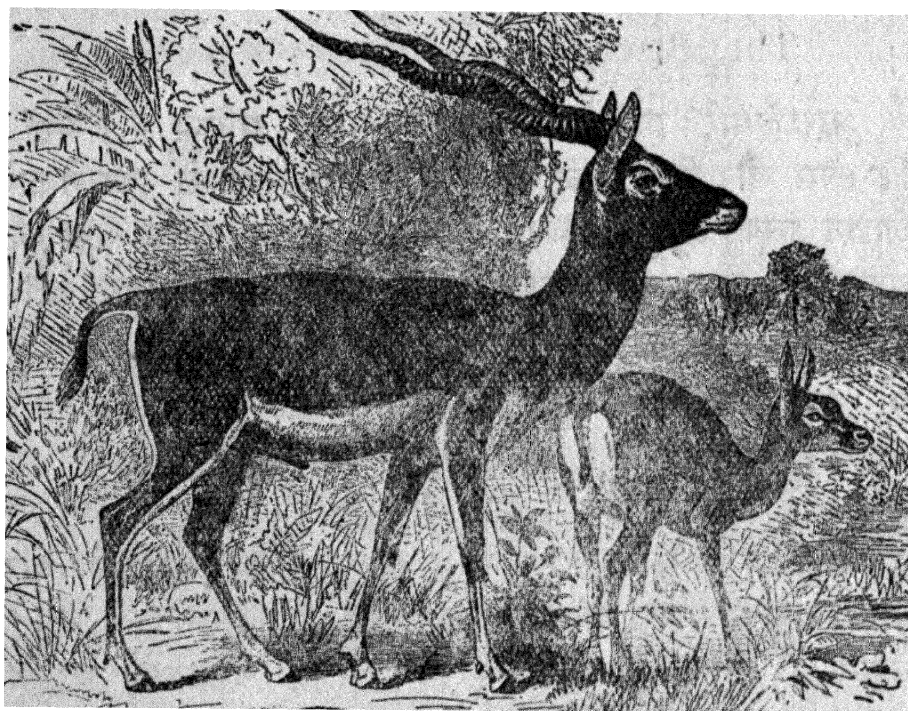
मृग

नहीं होता लेकिन वह भी धीरे-धीरे खैरा हो जाता है। गरदन के बगल और सामने का हिस्सा और चेहरे का रंग कलछौंह भूरा रहता है लेकिन आँख के चारों ओर एक स्पष्ट सफ़ेद घेरा सा रहता है। ये काले मृग, 'कालिया' या 'कृष्णसार' कहलाते हैं।

मृग जैसा ऊपर बता आया हूँ खुले मैदानों में रहनेवाले जीव हैं। ये ऊबड़-खाबड़ या चौरस दोनों तरह के मैदान पसंद करते हैं। खुले मैदानों का तो कहना ही क्या! लेकिन अगर छोटे-छोटे

घास के मैदान भी रहते हैं तो भी इन्हें भागने में कोई दिक्कत नहीं होती। मृगों की रफ्तार बहुत ही तेज होती है। भागते समय ये बड़ी लम्बी-लम्बी छलाँगे मारते हैं जिसे चौकड़ी भरना कहते हैं। तेज ताज़ी कुत्ते भी, इन्हें आसानी से नहीं पकड़ पाते और बहुत तेज घोड़े को भी, इन तक पहुँचने में दाँतों पसीना आ जाता है।

मृग गरोह बाँधकर रहते हैं। सुरक्षित स्थानों में कभी-कभी तो ये गरोह हज़ारों की संख्या तक पहुँच जाते हैं लेकिन ज्यादातर इनके १० से ४० तक के छोटे-छोटे गरोह ही अकसर दिखाई पड़ते हैं। इन गरोहों के साथ प्रायः एक पुराना काला मृग होता है, जो झुंड कुछ अलग रहता है। पट्ठे नर बड़े होने पर काले मृग द्वारा खदेड़ दिये जाते हैं जो अकसर अपना अलग झुण्ड बनाए रहते हैं।

हिरन बहुत भड़कनेवाले जानवर नहीं हैं। जहाँ इन पर बन्दूकें चलती हैं, वहाँ की तो बात ही दूसरी है। लेकिन जहाँ इनका शिकार कम होता है वहाँ वे काफी ढीठ हो जाते हैं। इन्हें अकसर लोग पालते भी हैं। ये छुटपन से पालने पर इतने हिल जाते हैं कि कुत्ते की तरह मालिक के पीछे-पीछे घूमते रहते हैं।

खतरा सर पर आया देखकर, मृग, खरगोशों की तरह छिपने से ज्यादा भागना ही पसंद करते हैं लेकिन कभी-कभी सामने मैदान न पाकर ये ऊँची घास या खेत में बड़ी सफाई से छिप भी जाते हैं। घायल मृग तो अकसर छिपने की कोशिश करता है।

मृगों की चराई का कोई खास समय निश्चित नहीं है। खुले मैदानों में रहने के कारण ये अपनी सुविधा के अनुसार हर समय चरते रहते हैं। ये पानी पीते हैं या नहीं इसके बारे में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हो सका है। इन्हें अकसर नहरों और जलाशयों के निकट देखकर यह अनुमान होता है कि ये पानी पीते हैं लेकिन इनका वहाँ जाना पानी के किनारे की घास के लिए भी हो सकता

है। ये पानी के बिना भी रह सकते हैं यह तो साबित हो चुका है क्योंकि उड़ीसा के चिलका ताल (Chilka Lake) और समुद्र के बीच की रेतीली पट्टी में ये काफ़ी संख्या में हैं लेकिन वहाँ सिवा कुएँ के और कहीं भी पानी देखने को नहीं मिलता।

मृग दिन को कुछ देर के लिए आराम करते हैं और प्राय: एक ही स्थान पर विष्ठा करते हैं। इनके जोड़ा बाँधने का समय वैसे तो फ़रवरी और मार्च है लेकिन इनके छोटे बच्चे प्राय: हर महीने दिखलाई पड़ते हैं।

इनका मांस कुछ रूखा लेकिन बहुत स्वादिष्ट होता है।

१७—चेरू

The Tibetan Antelope or Chiru—Pantholops hodgsoni

चेरू तिब्बत के पठार का निवासी है जो उत्तरी लद्दाख, कमाऊँ, शिकम और तिब्बत के भी उत्तरी भागों में १२ हज़ार से १८ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर रहता है।

यह मृग के बराबर होता है लेकिन इसके सींग मृग के सींग से बड़े और घरारेदार रहते हैं। मादाओं के सींग नहीं होते।

चेरू के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका ललछौंह बादामी या भूरा होता है, जिसमें थोड़ी सी राखी झलक भी रहती है। नीचे का हिस्सा सफ़ेद रहता है। चेहरे का रंग गाढ़ भूरा या काला रहता है। नरों के अगले पैरों पर इसी रंग की एक पट्टी सी रहती है। इनके बदन के बाल बहुत घने और मोटे रहते हैं जो खड़े खड़े रहते हैं।

चेरू को तिब्बत का मृग कह सकते हैं लेकिन यह हमारे मृगों की तरह ढीठ और तेज़ न होकर बहुत शरमीला और काहिल होता है। वैसे तो यह झुण्ड में रहनेवाला जीव है लेकिन कभी-कभी यह अकेला भी दिखाई पड़ता है। वैसे तो इसके तीन-चार के छोटे-छोटे गरोह दिखाई पड़ते हैं लेकिन कभी-कभी सौ दो सौ चेरू भी एक साथ दिखाई पड़ जाते हैं।

चेरु

चेरू, मृगों की तरह दिन भर नहीं चरते बल्कि इनकी चराई का समय सुबह और शाम है। ये खुले मैदानों और घाटियों में ज्यादातर रहते हैं, जहाँ इनको अक्सर घास के मैदानों में चरते हुए देखा जा सकता है। चेरू दिन में आराम करते हैं और मैदानों में कुछ गड्ढा सा बना लेते हैं, जिसमें लेटने या बैठने पर ये दिखाई नहीं पड़ते।
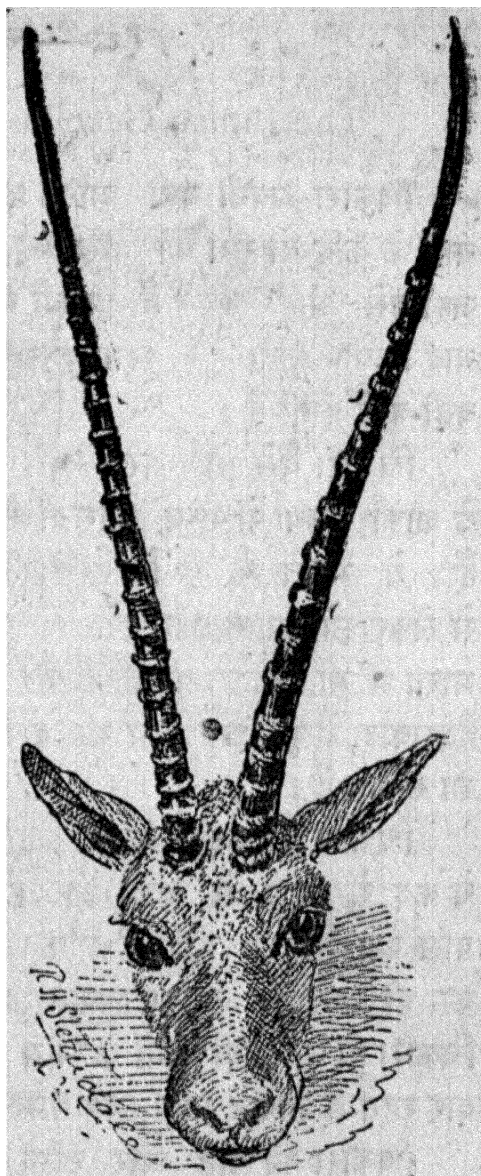
चेरू जाड़ों में जोड़ा बाँधते हैं और मादा ६ महीने बाद एक बच्चा जनती है।

चेरू का मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

१८—चिकारा

The Indian Gazelle—Gazella bennetti

चिकारा अपनी बड़ी आँखों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ के कवि तो मृग की आँखों की मिसाल देते हैं लेकिन फ़ारस में जहाँ इसे 'आहू' कहते हैं, आँखों की उपमा के लिए चिकारा ही याद किया जाता है। सचमुच इसकी आँखें बहुत सुन्दर और बड़ी-बड़ी होती हैं।

चिकारा वैसे तो सारे उत्तरी भारत में पाया जाता है लेकिन ये काफ़ी संख्या में मध्य और दक्षिणी भारत की ओर फैले हुए हैं; ये भारत के पूर्वी हिस्से की ओर नहीं मिलते। युक्तप्रान्त से लेकर सीमाप्रान्त तक और बम्बई प्रान्त, मध्यप्रान्त और मध्य-भारत में भी चिकारा काफ़ी तादाद में मिलते हैं। इसके अलावा हैदराबाद, मैसूर आदि में भी इन्हें किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर देखा जा सकता है।

चिकारा को कहीं चिंकारा, कहीं छिकरा या छिगार कहते हैं। ये कद में मृग से कुछ छोटे होते हैं। नर की ऊँचाई कंधे के पास २६ इंच तक होती है लेकिन लम्बाई में ये ढाई फुट से कुछ कम ही रहते हैं। इनका वज़न क़रीब २०-२५ सेर का होता है। चिकारा के नर-मादा दोनों के सींग होते हैं। नर के सींग घरारीदार रहते हैं लेकिन मादा सादे और छोटे सींगोंवाली होती हैं।

चिकारा की पीठ और टाँगों का बाहरी हिस्सा, हलके खैरे रंग का होता है। ठुड्ढी, सीना और नीचे का हिस्सा धुर सफ़ेद रहता है। दुम क़रीब-क़रीब काली होती है, जिससे इसको कहीं कहीं "कलपुंछ" भी कहते हैं। चेहरे पर दोनों ओर एक एक सफ़ेद धारी रहती है और चेहरे का, सींग की जड़ से नाक तक का आधा हिस्सा गाढ़ कत्थई रंग का होता है।

चिकारा हमारे मृगों की तरह बड़े झुण्ड बनाकर नहीं रहते। इसके झुण्ड में अकसर ४ से ६ तक, चिकारे रहते। कभी-कभी १५-२० चिकारे भी एक साथ दिखाई पड़ जाते हैं।
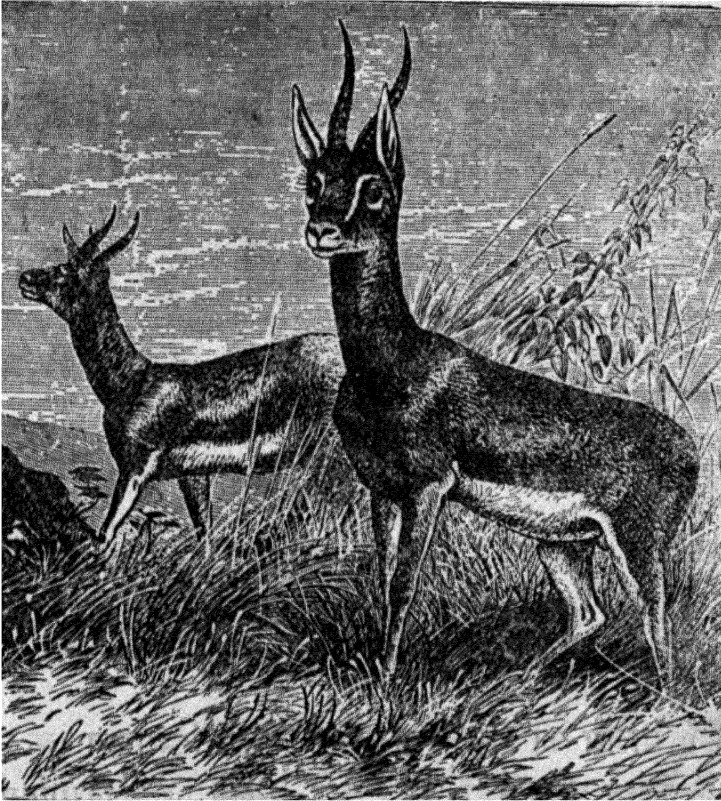
चिकारा

चिकारे को साफ़ सुथरे मैदानों से ज़्यादा ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पसंद है। यह घाटियों और ऊँची-नीची ज़मीनों के आसपास ही रहना ज़्यादा पसंद करता है। खेतों के आस-पास यह कम दिखाई पड़ताहै और मृगों की तरह इससे फसल को ज़्यादा नुक़सान भी नहीं पहुँचता। वैसे तो इसे तितरे-बितरे जंगल और झाड़ी के मैदान

पसंद हैं लेकिन उससे भी ज्यादा इसे रेतीले मैदान पसंद आते हैं। ऐसे मैदानों में ये ज्यादा संख्या में रहते हैं।

अन्य हिरनों की तरह चिकारा का मुख्य भोजन भी घास-पात है लेकिन पानी के मामले में मृगों की तरह, इनके बारे में भी लोगों का यही ख़याल है कि ये पानी नहीं पीते।

चिकारे बहुत ही तेज़ दौड़नेवाले जानवर हैं, जिन्हें पकड़ना, तेज़ से तेज़ कुत्तों और घोड़ों के लिए भी कठिन होता है। ख़तरा नज़दीक आने पर, ये एक प्रकार की तेज़ सिसकारी-सी भरते हैं और अकसर अपने अगले पैरों को ज़मीन पर पटकते हैं। मृग की तरह ये भी एक ही स्थान पर विष्ठा करते हैं।

इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

१९—थेर

The Thar—Hemitragus jemlaicus

थेर हिमालय का जंगली बकरा है, जिसे हिमालय के घने ऊँचे जंगलों के सिवा हम कहीं नहीं देख सकते। यह हिमालय में पीर पंजाल से शिकम तक के ऊँचे जंगलों में पाया जाता है।

थेर, मृग से वैसे भी बड़ा होता है, फिर अपने बड़े बालों के कारण यह उससे कहीं ज्यादा भारी जान पड़ता है। इसके नर की ऊँचाई ३ से ३। फ़ुट और लम्बाई क़रीब ४॥ फ़ुट की होती है। दुम ६ इंच से कुछ ज्यादा ही रहती है और सींग १०-१२ इंच से कम लम्बे नहीं होते। ये पीछे की ओर भेड़ की तरह मुड़े रहते हैं, जिनका निचला हिस्सा चौड़ा रहता है। मादाएँ क़द में

नर से काफ़ी छोटी होती हैं। उनकी सींग भी उतने बड़े नहीं होते।

थेर के सर पर के बाल तो छोटे ही होते हैं लेकिन उसके शरीर पर के बाल काफ़ी बड़े रहते हैं। पुराने जानवरों की गरदन, कंधे और सीने पर के बाल तो उमर पाकर इतने बढ़ जाते हैं कि घुटने तक लटकने लगते हैं।

थेर

थेर का रंग, गहरा भूरा या कत्थई रहता है, जो उम्र के साथ ही साथ गहरा होता जाता है। इनके बदन के लम्बे बालों का सिरा तो भूरा रहता है लकिन नीचे का हिस्सा हलका। इसके पैरों के अगले हिस्से बहुत गाढ़ रंग के होते हैं। जो दूर से काला जान पड़ते हैं। पुराने नरों के पीठ पर एक धुँधली काली पट्टी सी

जान पड़ने लगती है। पट्ठों का रंग सिलेटीपन लिये भूरा होता है लेकिन बच्चे हलके रंग के रहते हैं।

थेर की आदतें बहुत कुछ बकरों से मिलती-जुलती होती हैं लेकिन उनके बकरों जैसी दाढ़ी नहीं होती। यह घने जंगलों का रहनेवाला जीव है, जिसे खड़ी पहाड़ियाँ बहुत पसंद हैं। इसके रहने का स्थान ऐसा विकट होता है, जहाँ आदमियों के चढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ती लेकिन इन खड़ी पहाड़ियों पर थेर इतनी आसानी से उतरता-चढ़ता रहता है, जैसे हम लोग मैदान में चलते फिरते हैं। मादा थेर भले ही मैदानों में दिखाई पड़ जावे लेकिन नर थेर ज्यादातर जंगलों में ही घुसे रहते हैं। थेर गरोह में रहनेवाले जानवर हैं। इनके नर और मादा कुछ समय के लिए अपना अलग अलग गरोह बनाए रहते हैं। इनकी और आदतें बकरों जैसी होती हैं।

थेर को काश्मीर में 'जागला' और नेपाल में 'झाएल' कहते हैं। इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

२०—सराव

The Serow—Nemorhaedus bubalinus

सराव भी बकरे का भाई बिरादर है। उसे बकरे और मृग के बीच का जानवर कहें तो ज़्यादा ठीक होगा। यह हमारे यहाँ हिमालय के ६००० से १२०० फ़ुट के ऊँचे जंगलों में, काश्मीर से मिशमी पहाड़ी Mishmi Hills तक पाया जाता है। काश्मीर में इसे 'रामू' या 'हल्ज' भी कहते हैं।

सराव का सर बड़ा और डील-डौल भारी होता है। इसके बाल कड़े और पतले होते हैं लेकिन ज़्यादा लम्बे नहीं होते।

इसके कान जरूर बड़े होते हैं और गुद्दी से गरदन के ऊपरी हिस्से तक बड़े बालों की अयाल सी रहती है।

इनके नर की ऊँचाई क़रीब ३ .फुट रहती है और लम्बाई ५ .फुट से कुछ ज्यादा ही होती है। नर-मादा दोनों सींगदार होते हैं। इनकी सींग धारीदार और कुछ-कुछ चिकारे से मिलते हुए होते

सराव

हैं। नर के सींग क़रीब ६-१० इंच और मादा के ७-८ इंच तक लम्बे रहते हैं। वज़न में सराव क़रीब २॥ मन के होते हैं।

सराव का ऊपरी हिस्सा काला या गाढ़ सिलेटी रहता है। बालों की जड़ के पास का हिस्सा सफ़ेद होने के कारण कभी-कभी सफ़ेदी की झलक दिखाई पड़ जाती है। सर और गरदन काली, बगली हिस्से, पुट्ठे, रानें, अगले पैर, सीना और गला कत्थई

रंग का रहता है। पेट, रानों का भीतरी हिस्सा और ठुड्ढी सफ़ेद होती है।

सराव बहुत ही शरमीला जानवर है। यह एक तो अपनी इस आदत से और दूसरे कम संख्या में होने के कारण हम लोगों को बहुत कम दिखलाई पड़ता है। यह घने जंगलों में अकेले रहना ज़्यादा पसंद करता है। वहाँ यह ऊँची-नीची पहाड़ियों के आस-पास अकसर दिखाई पड़ जाता है। वैसे तो इसकी चाल बेढंगी सी होती है लेकिन सीधी और खड़ी पहाड़ियों पर चढ़ने में शायद यही सबसे उस्ताद होता है। इसके आराम करने की जगह कोई गुफ़ा या सायेदार पेड़ होता है और यह नीलगायों की तरह उसी स्थान पर रोज़ आकर विष्ठा करता है।

सराव वैसे तो सीधा और डरपोक जानवर है लेकिन घायल होने पर या दबसट में पड़ने पर यह बड़ा भयंकर हमला करता है। ख़तरा निकट देखकर यह बड़े ज़ोर से चीख़ सी मारता है, जो काफ़ी कर्कश होती है।

सितम्बर, अक्टूबर में इसकी मादा एक बच्चा देती है। इसकी और बातें बकरा और मृगों से मिलती-जुलती होती हैं, लेकिन इसका मांस सूखा और मामूली होता है।

२१—गुरल

The Goral—Nemorhaedus gooral

जिस तरह मृग मैदान के शिकारियों के बहुत परिचित जानवर हैं, उसी तरह गुरल पहाड़ के शिकारियों के। यह काफ़ी ढीठ जानवर हैं और इन्हें जैसे आबादी के निकट ही रहना ज़्यादा पसंद आता है। यही कारण है कि ये पहाड़ पर की बड़ी आबादियों

के निकट काफ़ी संख्या में पाए जाते हैं और शिकारियों के लिए इनका शिकार आसान हो गया है।
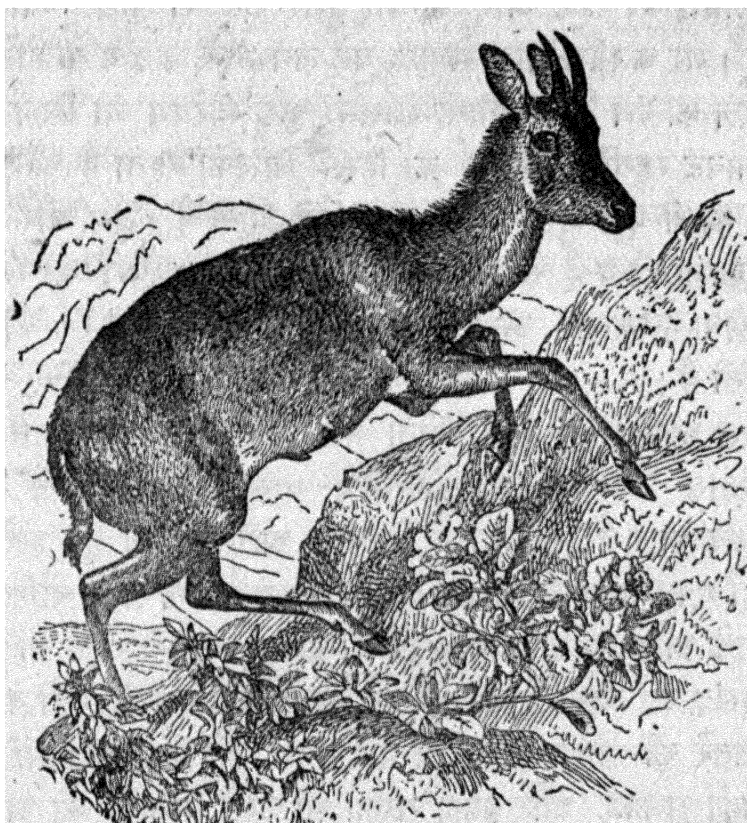
गुरल

गुरल हिमालय का बहुत ही प्रसिद्ध जानवर है। इनकी काफ़ी बड़ी संख्या काश्मीर से भूटान तक ३००० से ८००० फ़ुट के बीच के जंगलों में फैली हुई है। आसाम में भी ये नागा पर्वत पर पाए जाते हैं। इसको काश्मीर में 'राम' या 'रोम' और आसाम में 'छागल' कहते हैं।

गुरल की बनावट बहुत कुछ बकरों जैसी होती है और इनके नर मादा दोनों के क़रीब एक ही तरह के सींग होते है। इनके पैर

मज़बूत और बाल कड़े होते हैं। गरदन के ऊपर के कुछ बाल बड़े होते हैं और सींगों की जड़ को बालों का घेरा, घेरे रहता है। इनकी ऊँचाई २। फुट और लम्बाई चार फ़ुट से कुछ ज़्यादा ही रहती है। नर के सींग मादा से कुछ बड़े लगभग ६-७ इंच के होते हैं।

गुरल का रंग भूरा होता है जिसमें कुछ खैरेपन या सिलेटीपन की मिलावट रहती है। नीचे का हिस्सा हलका रहता है और पीठ पर एक काली पट्टी गुद्दी से दुम तक चली आती है। दुम और सींगों का रंग काला होता है और गला सफ़ेद रहता है। पैरों का रंग भी कत्थई होता है लेकिन उनके सामने की ओर एक गाढ़े रंग की पट्टी पड़ी रहती है।

गुरल अकसर ४-६ का छोटा सा गरोह बनाकर रहते हैं। इनको पहाड़ पर के ऐसे ऊँचे-नीचे घास और पथरीले मैदान बहुत पसंद आते हैं, जो जंगलों में चारों ओर से घिरे हुए होते हैं।

जहाँ एक भी गुरल दिखाई पड़ जावे यह समझ लेना चाहिए कि वहाँ उसके और साथी जरूर होंगे। इनको अपने रहने का स्थान इतना पसंद आ जाता है कि ये उसे जल्द छोड़ना पसंद नहीं करते। किसी ख़तरे की आहट पाकर, ये एक प्रकार की सिसकारी सी भरते हैं, जिसको सुनकर और बाक़ी गुरल भी उसी प्रकार की आवाज़ करते हैं। कभी-कभी पुराना बुड्ढा नर अकेला भी दिखाई पड़ता है। सितम्बर में ये अकसर जोड़े में भी दिखाई पड़ते हैं।

गुरल, बकरों के भाई-बन्धु हैं, इससे इनकी बहुत सी आदतें उन्हीं जैसी होती हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है, जिसकी तलाश में ये सुबह-शाम घूमते रहते हैं। कभी-कभी बदली के दिन, ये दिन भर चरते देखे जा सकते हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुरल की मादा ६ महीने बाद मई-जून के आस-पास एक बच्चा जनती है।

२२—पासंग

The Persian Wild Goat—Capra aegagrus

पासंग हमारे पालतू बकरों के निकट सम्बन्धी ही नहीं हैं बल्कि इन्हीं से हमारे कुछ पालतू बकरे निकले हैं; लेकिन जंगल में रहने के कारण इनकी आदतें आज भी जंगली ही हैं।

वैसे तो पासंग फारस का रहनेवाला जीव है लेकिन हमारे देश में यह बिलोचिस्तान और सिन्ध के पश्चिमी हिस्सों में भी पाया जाता है। सिन्ध में इसको 'तेर' या 'साराह' कहते हैं। फारस की पहाड़ियों में पासंग १२-१३ हजार फ़ुट ऊँचाई तक ज़रूर चला जाता है लेकिन हमारे यहाँ सिन्ध प्रांत में पहुँचकर, इसे नीची पहाड़ियों और मैदानों तक का चक्कर काटना पड़ता है।

यह तीन फ़ुट ऊँचा और करीब ५ फ़ुट लम्बा जानवर है, जिसके ५ इंच की झबरी दुम होती है। मादा, नर से कुछ छोटी होती है। इनके नर और मादा दोनों के लम्बे सींग होते हैं, जिसमें नर के सींग मादा से काफ़ी बड़े होते हैं। ये सींग पीछे की ओर झुके हुए रहते हैं और इनकी लम्बाई ४० इंच से भी बड़ी होती है। नरों के बदन से एक प्रकार की तेज़ बू सी निकलती रहती है और उनकी ठुड्ढी के पास लम्बे बालों का एक गुच्छा दाढ़ी सा कता रहता है।

पासग का रंग मौसम के हिसाब से बदला करता है। जाड़ों में यह भूरापन लिये सिलेटी रहता है तो गर्मियों में यह बादामी या हलका कत्थई हो जाता है। नीचे का हिस्सा सफ़ेदी मायल रहता है। टाँग का निचला हिस्सा भी सफ़ेद रहता है लेकिन उनके सामने की ओर एक गाढ़ रंग की पट्टी रहती है।

पासंग गरोह में रहनेवाले जानवर हैं, जिन्हें ऊँची और खड़ी पहाड़ियाँ बहुत पसन्द हैं। ये बहुत ही चौकन्ने और फुर्तीले जीव

हैं, जो पहाड़ों पर चढ़ने में उस्ताद होते हैं। हमारे देश में तो ये सिन्ध की सूखी पथरीली पहाड़ियों पर ही ज्यादातर रहते हैं। इनको अपने पैरों पर इस गजब का काबू रहता है और ये इस सफ़ाई से, एक चट्टान से दूसरी पर कूद जाते हैं कि देखकर ताज्जुब होता है।
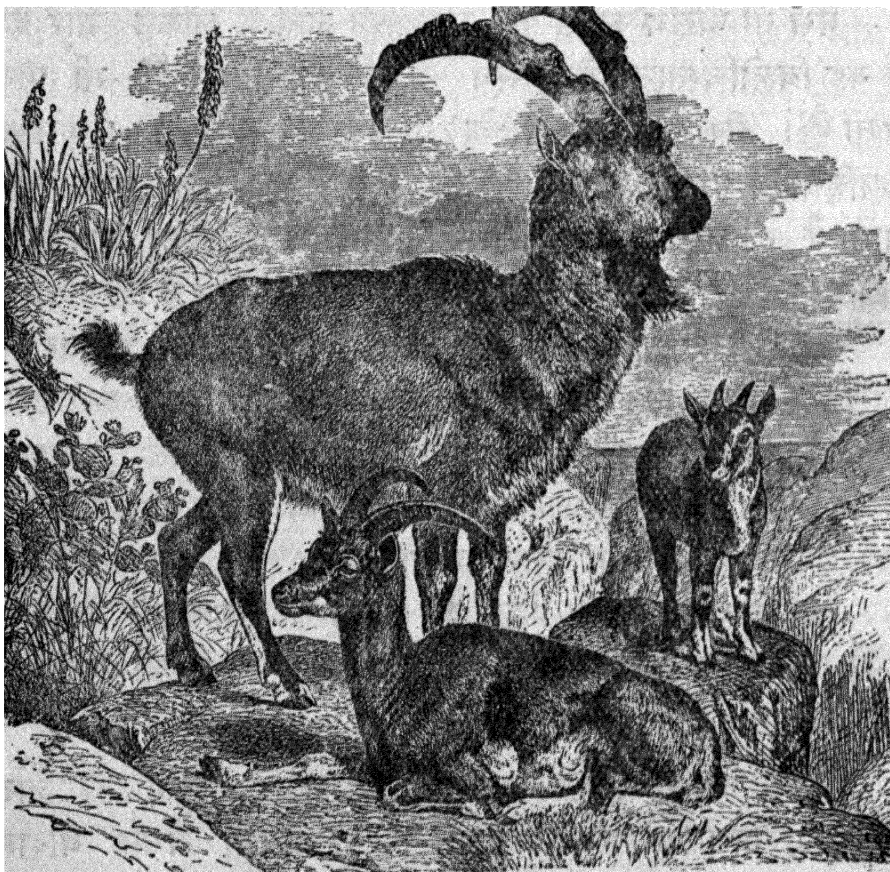
पासंग

पासंग का मुख्य भोजन घास-पात है। इनकी और सब आदतें हमारे बकरों से इतनी मिलती-जुलती होती हैं कि उनको यहाँ दुहराना फ़िजूल है। इनका मांस भी बकरों की तरह स्वादिष्ट किन्तु कुछ रूखा होता है।

पासंग की मादा को 'बोज' कहते हैं। बोज मई के आस-पास एक या दो बच्चे जनती है।

२३—साकिन

The Himalayan Ibex—Capra sibirica

साकिन भी जंगली बकरों में से एक है। ये हिमालय के उन ऊँचे और दुर्गम जंगलों में रहते हैं जो बर्फ़ के नज़दीक हैं। इसको काश्मीर में 'कैल' कहते हैं।

साकिन हमारे देश में हिमालय के पश्चिमी हिस्सों का निवासी है। यह काश्मीर से नेपाल तक के ऊँचे जंगलों में फैला हुआ है। इसकी बनावट गठीली होती है लेकिन इसके पैर कुछ छोटे होते हैं। इसके बाल घने और कड़े होते हैं, जिसके नीचे जाड़ों में एक नरम ऊन की सी तह जम आती है। नरों के लम्बी दाढ़ी रहती है और उनके बदन में एक प्रकार की तेज़ बू होती है।

पासंग की तरह, साकिन के भी नर लम्बी सींगोंवाले होते हैं। ये सींग काफ़ी बड़े और पीछे की ओर झुके रहते हैं। मादाओं के सींग छोटे होते हैं। साकिन क़द में पासंग से कुछ बड़े ही होते हैं। इनके सींग भी उनसे कुछ लम्बे होते हैं। मादाएँ क़द में नर से काफ़ी छोटी होती हैं।

इनका रंग भी पासंग की तरह गरमियों और जाड़ों में बदलता रहता है। गरमियों में इनका सारा ऊपरी और बाहरी हिस्सा भूरे रंग का रहता है जो नीचे के हिस्से में हलका हो जाता है। पुराने नर कत्थई रंग के हो जाते हैं और उनकी पीठ पर कहीं-कहीं गंदे सफ़ेद चित्ते पड़े रहते हैं। जाड़ों में यह रंग पिलछौंह सफ़ेदी में बदल जाता है, जिसमें हलके भूरे या सिलेटीपन की झलक रहती है। इनकी पीठ पर प्रायः एक गाढ़े रंग की पट्टी रहती है और इनके पैर, दाढ़ी और दुम का रंग गाढ़ा भूरा रहता है।

साकिन जैसा पहले बता आया हूँ—बर्फ़ के आस-पास रहनेवाला जानवर है। यह अपने रहने के लिए अकसर खड़े पहाड़ और सीधे

साकिन

चट्टान चुनता है। अन्य जंगली बकरों की तरह यह पहाड़ की कठिन से कठिन चढ़ाई पर बड़ी आसानी से चढ़ लेता है। यह उन्हीं की तरह तेज़ और वैसा ही सतर्क भी होता है। इसका मुख्य

भोजन घास-पात है। इसकी और बातें अन्य जंगली बकरों से मिलती-जुलती होती हैं।

साकिन गरोह बाँधकर रहते हैं और अकसर जाड़ों में भी ज़्यादा नीचे नहीं उतरते। जाड़ों में इनके बालों के नीचे जो ऊनी तह जम आती है, उससे इन्हें बर्फ़ ज़्यादा नहीं सताती। यही समय इनके जोड़ा बाँधने का है। इससे जाड़ों में ये सब साथ ही साथ रहते हैं लेकिन मई, जून में जब मादा के बच्चा देने का समय निकट आ जाता है, तब सब पुराने नर अलग हो जाते हैं। ये अपना अलग गरोह बनाकर इतनी ऊँचाई पर चढ़ जाते हैं, जहाँ सिवा बर्फ़ के हरियाली देखने को भी नहीं मिलती। वहाँ से ये सुबह-शाम चरने के लिए ज़रूर नीचे उतरते हैं लेकिन इनका सारा दिन सोने में ही बीतता है। इस प्रकार ये सारी गरमी और बरसात काटकर जाड़ा शुरू होते होते, फिर मादाओं के गरोह में आ मिलते हैं।

साकिन सतर्क होते हुए भी; ऐसे पथरीले और ऊबड़-खाबड़ स्थान अपने लिए चुनते हैं कि इनके शिकार में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जहाँ ये ज़्यादा मारे जाते हैं, वहाँ और भी चौकन्ने हो जाते हैं। फिर इनमें से कुछ चराई के समय पहरा भी देने लगते हैं। किसी ख़तरे कीआहट पाकर ये पहरेदार, एक प्रकार की सीटी की सी आवाज़ करते हैं, जिसको सुनते ही साकिनों का गरोह भागकर पहाड़ों में छिप जाता है। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

साकिन की मादा 'डबमो' या 'डनमो' कहलाती है। यह मई जून के क़रीब एक या दो बच्चे जनती है। इनके छोटे बच्चों का भी शिकार लोग करते हैं क्योंकि इनकी खाल पर की मुलायम ऊनी तह बहुत कीमती बिकती है!

२४—मारख़ोर

The Markhor—Capra falconeri

मारख़ोर भी जंगली बकरों में से एक प्रसिद्ध बकरा है जिसकी कई किस्में हमारे देश में पाई जाती हैं। पासंग और साकिन की तरह इसे भी खड़े चट्टानोंवाले पहाड़ और खड़ी घाटियाँ पसन्द हैं। यही नहीं यह प्राय: सभी तरह के स्थानों पर रह लेता है।

हमारे देश में यह हिमालय में पश्चिमोत्तर प्रान्तों का निवासी है। चिनाब नदी को इसकी पूर्वी सीमा कह सकते हैं। यह काश्मीर की पीर पंजाल की पहाड़ियों, झेलम के उत्तरी हिस्से और हज़ारा की पहाड़ियों में पाया जाता है। अफ़गानिस्तान के प्रदेश में, सुलेमान, पर्वतमाला और लद्दाख में भी मारख़ोर काफ़ी संख्या में मिलते हैं। लेकिन इनकी सींगों की लम्बाई और बनावट में फ़र्क रहता है। इनके भी नरों के बदन से तेज़ बू निकलती रहती है।

मारख़ोर क़रीब ३। फ़ुट ऊँचे और लगभग ५ फ़ुट लंबे जानवर हैं, जिनके ३ फ़ुट से ज़्यादा ही लम्बे सींग होते हैं। सींगों की बनावट घुमावदार होती है, जो देखने में बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं।

मारख़ोर भी जाड़े और गर्मियों में अपनी पोशाक बदलता रहता है। गर्मियों में यह गाढ़ कत्थई रहता है लेकिन जाड़ों में इसका रंग बदलकर सिलेटी हो जाता है। इसके नीचे का हिस्सा हलके रंग का रहता है लेकिन कभी कभी यह सफ़ेदी मायल भी हो जाता है। इसके बदन के बाल लम्बे होते हैं, जिनकी जड़ सफ़ेद रहती है। इसकी टाँगों के अगले हिस्से पर गाढ़ी पट्टी रहती है और दुम का रंग गाढ़ भूरा रहता है। मारख़ोर के बच्चे सिलेटी भूरे रंग के होते हैं, जिनकी पीठ पर एक गाढ़ पट्टी रहती है। इसकी दाढ़ी का रंग सामने की ओर काला और पीछे की ओर सिलेटी रहता है।

मारख़ोर के बुड्ढे नरों की दाढ़ी काफ़ी लम्बी और घनी होती है लेकिन मादा और बच्चों के यह दाढ़ी छोटी ही रह जाती है। इनके बालों के नीचे पासंग या साकिन की तरह ऊनी तह नहीं होती और होती भी है, तो बहुत पतली, नहीं के बराबर। इनके स्वभाव के बारे में एक
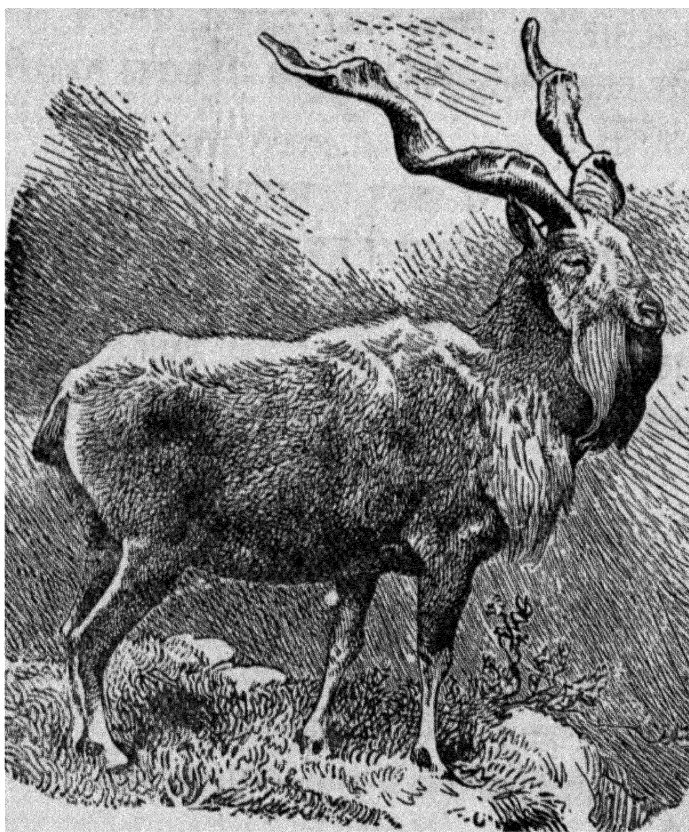
मारख़ोर

राय कायम नहीं की जा सकती क्योंकि अलग अलग जगहों के मारख़ोरों के स्वभाव में फ़र्क रहता है। ये पासंग की तरह खड़ी पहाड़ियाँ नहीं पसन्द करते बल्कि इन्हें पहाड़ के घने जंगल ज़्यादा अच्छे लगते हैं। वैसे ये खुले मैदानों में भी निकल आते हैं लेकिन ज़रा भी आहट पाने पर, ये फ़ौरन ही जंगल में घुस जाते हैं। ये

अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ों में जहाँ घने जंगल नहीं हैं, पथरीले मैदानों में ही रह लेते हैं।

दूसरे जंगली बकरों की तरह मारख़ोर भी झुण्ड में रहनेवाला जानवर है। यह सभी जंगली बकरों में सुन्दर और रोबीला होता है। वज़न में भी यह सबसे भारी भरकम होता है लेकिन खड़े पहाड़ों और ख़तरनाक चट्टानों पर चढ़ने में, इसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता।

मारख़ोर आसानी से पालतू हो जाता है और कुछ लोगों का ऐसा ख़याल है कि हमारी ऐंठी हुई सींगोंवाली बकरियाँ, इन्हीं से निकली हैं। इनकी और सब आदतें अन्य जंगली बकरों से मिलती-जुलती होती हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

मारख़ोर की मादा मई-जून में एक या दो बच्चे जनती है।

२५—बकरा

The Goat—Capra hircus

जङ्गली बकरों के कई बयान हम पढ़ चुके हैं जिसमें पासंग और मारख़ोर मुख्य हैं। हमारे पालतू बकरे इन्हीं फ़ारस के जङ्गली बकरों की सन्तान हैं, जिनको मनुष्यों ने पालतू करके, कई नई जातियाँ बना दी हैं।

हमारे यहाँ पालतू बकरियों की कई जातियाँ हैं, जिनमें पहाड़ी, काश्मीरी, देशी और जमुनापारी बहुत प्रसिद्ध हैं।

बकरियाँ हमारे यहाँ काफ़ी संख्या में पाली जाती हैं। घास-पात खाकर रहने के कारण, इनका पालना भी उतना कठिन नहीं होता जितना गाय या भैंसों का। हमारे यहाँ इन्हें दूध के लिए तो कम लेकिन इनके मांस, खाल, ऊन और बालों के लिए इन्हें काफ़ी

संख्या में पाला जाता है। मनुष्यों के लिए ये बहुत ही उपयोगी जानवर कहे जा सकते हैं।

बकरों के क़द, रंग-रूप और बनावट में काफ़ी भेद रहता है। पहाड़ी बकरियों के कान छोटे होते हैं, तो जमुनापारी के काफ़ी लम्बे और बड़े। देशी और जमुनापारी बकरियाँ क़द में भी काफ़ी लम्बी होती हैं लेकिन पहाड़ी बकरियाँ छोटी और हिरनों की शकल-सूरत की होती हैं। इनके सींगों की बनावट भी अलग-अलग
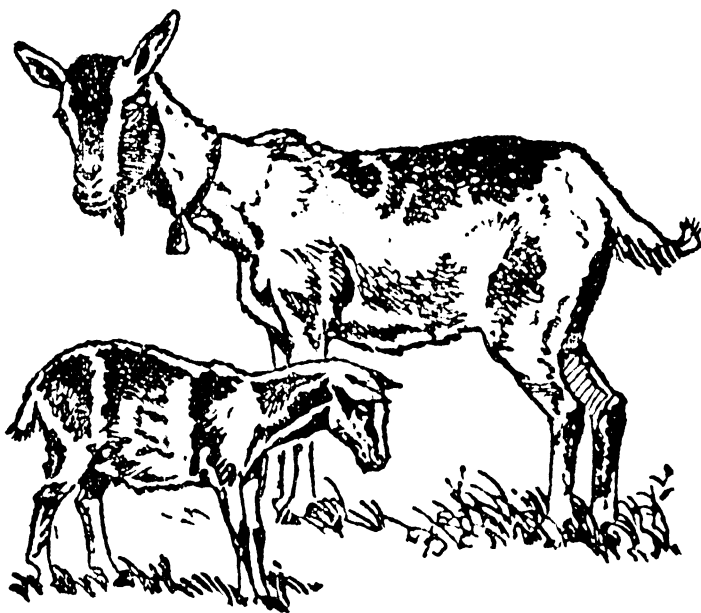
बकरा

रहती हैं। मारख़ोर से निकली हुई बकरियों के सींगें उसी की तरह घुमावदार रहते हैं तो पासंग से निकली हुई बकरियों के सींग पीछे की ओर झुके हुए होते हैं। इनका रङ्ग भी अलग-अलग रहता है। कोई सफ़ेद होती हैं तो कोई काली। कोई भूरी रहती हैं तो कोई खैरी। लेकिन कुल एक ही रङ्ग की बकरियाँ कम होती हैं। ज्यादातर इन्हीं रङ्गों में से किसी के धब्बे इन पर पड़े रहते हैं।

बकरियों की एक नहीं अनेकों जातियाँ हैं और इनकी शकल-सूरत में कभी-कभी इतना फ़र्क रहता है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि ये सब एक ही जाति के जानवर हैं। इनके रंग-रूप, क़द और सींगों में तो फ़र्क रहता ही है साथ ही साथ इनके बदन के बालों में भी काफ़ी अन्तर रहता है। देशी बकरियों के बाल हिरनों की तरह छोटे रहते हैं तो काश्मीरी बकरियों के बाल इतने लम्बे होते हैं कि ज़मीन छू लें। इन्हीं मुलायम बालों से, वहाँ के क़ीमती अलवान बनते हैं। इनकी और आदतें जंगली बकरों से मिलती-जुलती होती हैं।

बकरों की वंशवृद्धि बहुत शीघ्रता से होती है क्योंकि बकरियाँ हर साल दो बार एक या दो बच्चे देती हैं। ये बच्चे भी ६-७ महीनों में जवान हो जाते हैं।

२६—न्यान

The Great Tibetan Sheep—Ovis hodgsoni

जिस प्रकार पाम्ङ्ग, साकिन आदि जङ्गली बकरे हैं, उसी प्रकार न्यान, उरियल, भरल आदि जङ्गली भेड़ हैं, जिनके स्वभाव और रहन-सहन में बहुत कुछ समानता रहती है। ये जङ्गली बकरों की तरह ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ तो लेते हैं लेकिन इन्हें ज़्यादातर पहाड़ के खुले मैदान पसन्द हैं। इनके, बकरों की तरह दाढ़ी नहीं होती और न इनके नरों के बदन से तेज़ बू ही निकलती है लेकिन इनके गले के नीचे अकसर लम्बे-लम्बे बाल लटके रहते हैं। इनके सींग छोटे और जड़ के पास काफ़ी चौड़े होते हैं। मादा के सींग और भी छोटे होते हैं। हमारी पालतू भेंड़ें इनमें से किस जङ्गली भेड़ से निकली हैं, इसका अभी तक पता नहीं चल सका है लेकिन

इनके पूर्वज इन्हीं में से ज़रूर कोई न कोई हैं, इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं है।

वैसे तो न्यान को तिब्बत की भेड़ कहा जाता है क्योंकि तिब्बत के पठार ही इसके रहने की मुख्य जगह है। लेकिन ये उत्तरी लद्दाख़ से उत्तरी शिकम के प्रदेशों में भी काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं। ये हिमालय के दक्षिणी भाग से ज़्यादा उत्तरी भाग में ही रहना पसन्द करते हैं। गर्मियों में न्यान १५००० फ़ुट से नीचे

न्यान

नहीं उतरते लेकिन जाड़ों में जब काफ़ी बर्फ़ जम जाती है तो ये १२००० फ़ुट तक चले आते हैं।

इनके बाल छोटे, कड़े और बहुत घने होते हैं। कान और दुम छोटी होती है लेकिन बड़े होने पर नरों की गरदन के नीचे बड़े बालों का एक सफ़ेद गुच्छा-सा जम आता है। नरों की सींगें भी

बड़ी और काफ़ी चौड़ी होती हैं, जो पीछे की ओर गोलाई में घूमी रहती है। मादा की सींगें छोटी होती हैं और उनमें उतना घुमाव भी नहीं रहता।

न्यान क़द में जङ्गली बकरों से बड़े होते हैं। इनकी ऊँचाई ३ से ४ .फुट तक और लम्बाई ६ से ६॥ .फुट तक रहती है। मादाएँ नर से थोड़ी ही छोटी होती हैं। इनकी दुम वैसे तो बहुत छोटी, क़रीब एक इंच के होती है लेकिन बालों के साथ इसकी लम्बाई तीन इञ्च तक पहुँच जाती है। नर के सींग गोलाई में नापने में तीन सवा तीन .फुट से कम नहीं होते। मादा के सींगों की लम्बाई ज़रूर १॥ .फुट से ज़्यादा नहीं होती।

न्यान, सिलेटी भूरे रङ्ग के जानवर हैं, जिनका नीचे का हिस्सा सफ़ेदी मायल रहता है। नरों में दुम के चारों ओर का हिस्सा, पुट्ठा, गला, सीना, पेट और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफ़ेद रहता है लेकिन इनका माथा और टाँगों का अगला हिस्सा गाढ़े रंग का होता है। जाड़ों में इनके बदन का रंग कुछ हलका हो जाता है।

न्यान उन जंगली भेड़ों में से एक हैं, जो हमारे देश में बहुत प्रसिद्ध है। इसका क़द, यहाँ की सभी जङ्गली भेड़ों से बड़ा होता है। ये तिब्बत के पठारों के ऊँचे नीचे मैदानों में गरोह बाँधकर रहते हैं और इन्हें ज़्यादातर पथरीले ढाल या खुले मैदान ज़्यादा पसन्द आते हैं। गर्मियों में इनके नर ५ से १५ तक का गरोह बनाकर अलग रहते हैं लेकिन जाड़े में ये सब एक में मिल जाते हैं। यही इनके जोड़ा बाँधने का समय है। मादाएँ गर्मियों के शुरू होने पर बच्चे देती हैं।

न्यान का मांस बहुत स्वादिष्ट होता है लेकिन इनके शिकार में बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। एक तो ये बहुत ही चौकन्ने जानवर हैं, फिर इनकी सूँघने की शक्ति भी बहुत तेज़ होती है।

इसके अलावा ये भागने में भी किसी से कम नहीं होते और ज्यादा-तर खुले मैदानों में रहने के कारण इनको शिकारियों का पता भी दूर ही से लग जाता है।

२७—उरियल

The Urial or Sha—Ovis vignei

उरियल भी पहाड़ी भेड़ों में से एक है जो हमारे यहाँ के उत्तर-पश्चिम की ओर काफ़ी तादाद में पाई जाती है। इसकी बहुत सी बातें न्यान से मिलती हुई होती हैं, जिन्हें यहाँ फिर से दुहराना उचित नहीं जान पड़ता।

हमारे यहाँ उरियल पंजाब की पहाड़ियों, हजारा और सुलेमान पर्वतमालाओं और पेशावर के आस-पास के पहाड़ों पर पाया जाता है। इसके बाल छोटे, कड़े और काफ़ी घने रहते हैं। इसकी गरदन के नीचे भी बालों का एक गुच्छा रहता है। इसके सींग पीछे की ओर गोलाई लिये घूमे रहते हैं, जो नरों में बड़े और मादाओं में छोटे होते हैं।

उरियल क़द में न्यान से छोटा होता है। इसकी ऊँचाई २॥ फ़ुट और लम्बाई क़रीब चार फ़ुट के होती है। दुम बालों के सहित चार इंच तक हो जाती है और सींगों का घेरा दो से ढाई फ़ुट तक रहता है।

उरियल का रंग गर्मी और जाड़ों में बदलता रहता है। गर्मियों में वह खैरा सिलेटी रहता है लेकिन जाड़े में हम उसे सिलेटी भूरे में तब्दील हुआ देखते हैं। नीचे का हिस्सा, पैर, पुट्ठे और दुम सफ़ेदी मायल या धुर सफ़ेद रहती है। नरों के कंधे के ऊपर एक काला धब्बा रहता है और कभी-कभी उनकी पीठ पर इसी रंग की पट्टी भी पड़ी रहती है। मादाओं और बच्चों का कुछ ऊपरी हिस्सा

ज़रूर सिलेटी भूरे रंग का रहता है। इनके नीचे के हिस्से का रंग हलका होता है।

उरियल खुली घाटियों और पथरीले पहाड़ी मैदानों में चरना ज़्यादा पसन्द करते हैं। ये ३-४ से २०-२५ का गिरोह बनाकर रहते हैं और खड़े पहाड़ों पर बड़ी सफ़ाई से चढ़ जाते हैं।

उरियल

इनके नर और मादा, जाड़ों में एक साथ रहकर, गर्मियों में, अन्य जंगली भेड़-बकरों की तरह, अलग-अलग हो जाते हैं। उरियल बहुत ही चौकन्ने और तेज़ जानवर हैं, जिनके शिकार में शिकारियों को कम दिक्कत नहीं उठानी पड़ती। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

मादा उरियल गर्मियों में एक या दो बच्चे देती है। इनकी और बाक़ी बातें न्यान के ही समान होती हैं।

भरल

The Blue Wild Sheep—Ovis nahura

भरल भी जंगली भेड़ों में कम प्रसिद्ध नहीं है। इसको नैपाल में 'नरवती' कहते हैं। यह बिलोचिस्तान से तिब्बत तक और भूटान के ऊँचे पठारों में फैला हुआ है। गर्मियों में तो यह १५-१६ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक चढ़ जाता है लेकिन जाड़ों में यह दस हज़ार फ़ुट तक नीचे उतर आता है।

भरल के सारे बदन पर के बाल एक जैसे होते हैं। इसके गले के नीचे बालों का गुच्छा नहीं होता। इसके कान छोटे होते हैं लेकिन दुम न्यान और उरियल दोनों से बड़ी होती है। नर के सींग गोलाई से घूमकर बाहर की ओर फैले रहते हैं, जो काफ़ी बड़े और चौड़े होते हैं। मादा के सींग छोटे, खड़े और बाहर की ओर झुके हुए रहते हैं।

भरल क़द में उरियल से बड़ा होता है। इसकी ऊँचाई ३ फ़ुट और लम्बाई क़रीब ५ फ़ुट तक होती है। बालों के साथ दुम की लम्बाई ६-७ इंच से कम नहीं होती। नर के सींग बड़े और लम्बाई में क़रीब दो फ़ुट के होते हैं।

रंग के मामले में भरल में भी कुछ न कुछ तब्दीली होती है। गर्मियों में इसके बदन का रंग जहाँ सिलेटी रहता है, जाड़ा आते आते, उसमें भूरेपन की मिलावट हो जाती है। नीचे का हिस्सा, टाँगों का भीतरी और पिछला हिस्सा और पुट्ठे का दुम के पास का कुछ हिस्सा, धुर सफ़ेद रहता है। नरों का चेहरा, सींग और दुम का आधे से ज़्यादा हिस्सा काला होता है। इसके चारो पैरों

के सामने के हिस्से में और पेट के दोनों ओर एक-एक काली पट्टी पड़ी रहती है।

भरल के शरीर की बनावट और उसके स्वभाव को देखते हुए, इसको जंगली भेड़ और बकरों के बीच का जानवर कहना बेजा न होगा। इसे भेड़ों की तरह खुली घाटियाँ और पथरीले मैदान तो
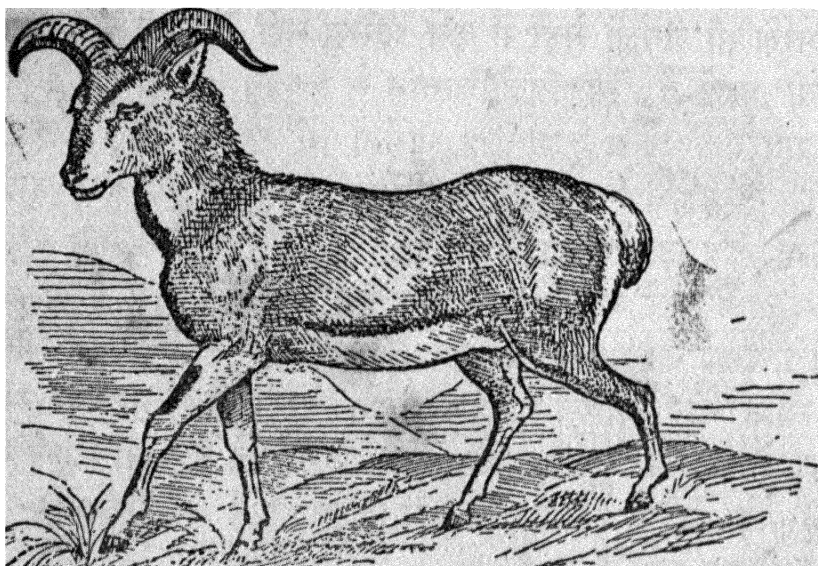
भरल

पसन्द ही हैं, साथ ही साथ बकरों की तरह यह खड़ी पहाड़ियों और सीधे चट्टानों पर भी बड़ी आसानी से चढ़ जाता है। यह गरोहों में रहनेवाला जानवर है जिसके झुण्ड ४-५ से लेकर सौ सौ तक के देखे जाते हैं। अन्य जंगली भेड़-बकरों की तरह ये भी जाड़ों में एक साथ रहकर, गर्मियों में अलग-अलग हो जाते हैं।

भरल दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा चरने के बाद आराम करता है। अपने सिलेटी रंग के कारण, जिस समय वह पत्थरों के बीच लेटा रहता है, इसे जल्द देख लेना सम्भव नहीं। यह बहुत चौकन्ना

और तेज़ जानवर है जिसकी और आदतें न्यान और उरियल से बहुत कुछ समानता रखती हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

भरल छुटपन से पाले जाने पर बहुत आसानी से पालतू हो जाता है। इसकी मादा अन्य भेड़-बकरियों की तरह क़रीब पाँच महीने पर, मई जून के आस-पास एक या दो बच्चे जनती है।

२९—भेड़

The Sheep—Ovis aries

हमारी पालतू भेड़ें किस जङ्गली भेड़ों से निकली हैं, इसका कुछ ठीक पता नहीं चल सका है लेकिन ये उरियल से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं।
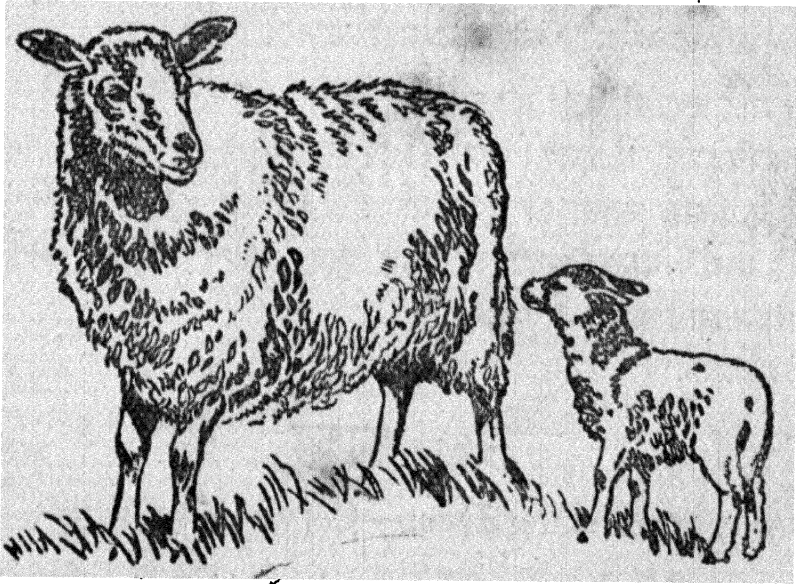
भेड़

हमारे देश में जो भेड़ें मिलती हैं, वे सफ़ेद या काले रङ्ग की होती हैं और उन्हें लोग ऊन या मांस के लिए पालते हैं। एक और किस्म की भेड़ जो दुम्बा कहलाती है, यद्यपि हमारे देश की

नहीं है तो भी इसकी काफ़ी बड़ी संख्या हमारे देश में फैली हुई है। दुम्बा के दुम में चरबी और मांस बहुत काफ़ी रहता है, जो खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है।

हमारी पालतू भेड़ों के कोई भी पूर्वज मैदान में रहनेवाले नहीं हैं लेकिन इनकी आदतें बहुत कुछ उरियल, भरल और न्यान आदि जङ्गली भेड़ों से मिलती हुई होती हैं। इनके सींग भारी, तिकोने और पीछे की ओर घूमे हुए रहते हैं लेकिन इनके बकरों की तरह दाढ़ी नहीं होती। इनका कान और सर ज़रूर बड़ा होता है लेकिन टाँगे बकरों से पतली होती हैं।

जङ्गली भेड़ों की तरह हमारी पालतू भेड़ें फुर्तीली न रहकर सुस्त और भद्दी हो गई हैं और इनकी अक़ल के बारे में तो कहना ही क्या। 'भेड़ियाधसान' को कौन नहीं जानता।

हमारे देश में भेड़ों की नस्ल सुधारने का काम नहीं हो रहा है लेकिन विदेशों में इनकी अनेकों क़िस्में बनाई गई हैं, जो वहाँ के लोगों के लिए उतनी ही उपयोगी हैं, जितनी हमलोगों के लिए हमारी गायें। पालतू भेड़ों की बहुत कुछ आदतें जङ्गली भेड़ों से मिलती-जुलती होती हैं।

३०—काकड़

The Barking Deer—Cervulus muntjac

काकड़ वैसे तो बारहसिंघों का भाई बन्धु है लेकिन इसके सींगों में थोड़ा फ़र्क़ रहता है। बारहसिंघों की भाँति यह भी अपने सींग हर साल या कई साल पर गिरा देता है लेकिन इसके सींग के नीचे हड्डी का हिस्सा सींगों से काफ़ी बड़ा रहता है जिससे सींगों का थोड़ा ऊपरी हिस्सा ही गिरता है।

काकड़ हमारे यहाँ का बहुत मशहूर जानवर है जिसे नेपाल में 'रतवा' और बंगाल में 'माया' कहते हैं। यह हमारे यहाँ सारे देश के घने जङ्गलोंवाली पहाड़ियों में फैला हुआ है। मैदान इसे
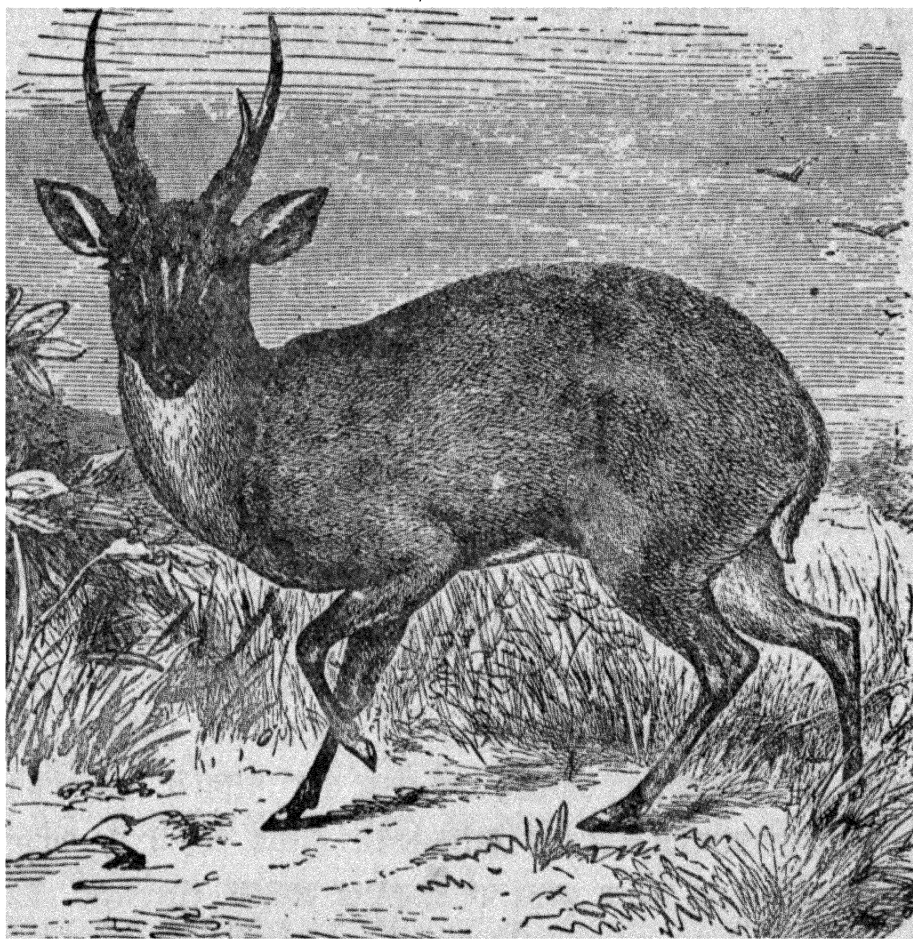
काकड़

नहीं पसन्द आते। यह हिमालय पर भी ५-६ हज़ार फ़ुट या उससे कुछ ज़्यादा ऊँचाई तक चढ़ जाता है। लेकिन मध्य-प्रान्त और पश्चिम की ओर यह बहुत कम संख्या में पाया जाता है।

काकड़ क़रीब २०-२२ इंच ऊँचा जानवर है, जिसकी लम्बाई ३ फ़ुट से ज्यादा नहीं होती। दुम बालों-सहित सात इंच तक हो जाती है। नर के सींगों की लम्बाई ८-८ इंच के लगभग रहती है। ये सींग दो शाखोंवाले होते हैं जो केवल नरों में होते हैं। वज़न में काकड़ आध मन से कुछ कम ही होता है।

काकड़ का रंग गाढ़ कत्थई रहता है, जो पीठ पर कलछौंह और नीचे की ओर आते-आते हलका हो जाता है। चेहरा और पैर हलके भूरे होते हैं। चेहरे पर सींगों की भीतरी ओर से एक एक काली पट्टी चली आती है। ठुड्डी, गले का ऊपरी हिस्सा, पेट और दुम का निचला हिस्सा सफ़ेद रहता है। बच्चे चित्तीदार होते हैं।

काकड़ उन जानवरों में से हैं जो अकेले रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। कभी-कभी ये जोड़े में भी दिखाई पड़ते हैं लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। काकड़ घने जङ्गलों में ही रहना पसन्द करता है। जंगल से बाहर यह सिर्फ़ चरने के ही लिए निकलता है। चराई के लिए यह ज्यादा दूर नहीं जाता बल्कि जङ्गल के आस-पास ही रहता है, जिससे ज़रा सी आहट पाने पर जङ्गल में घुस जावे।

काकड़ अपनी तेज़ आवाज़ के लिए बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि इसकी आवाज़ बहुत तेज़ होती है। सहसा यह विश्वास नहीं होता कि इतना छोटा जानवर भी ऐसी तेज़ आवाज़ कर सकता है। इसकी आवाज़ वैसे तो साँझ-सबेरे सुनाई पड़ती है लेकिन जोड़ा बाँधने का समय आने पर हम इसे अकसर सुन सकते हैं। खतरे से आगाह करने के लिए, मादा को बुलाने के लिए भी काकड़ अपनी कर्कश बोली का सहारा लेते हैं।

काकड़ बहुत ही सतर्क जानवर है जो आहट पाने पर बहुत जल्द छिप जाता है। खतरे के समय यह बहुत चुपके-चुपके अपना पैर उठा-उठाकर आगे रखता है, जिससे किसी प्रकार की आवाज़ न हो। भागते समय यह अपना सर नीचा करके और पिछला

हिस्सा उठाकर दौड़ता है, जो देखने में बहुत बेढंगा सा लगता है। इसके कुकुरदंत काफ़ी तेज़ होते हैं और दबसट में पड़ जाने पर यह अकसर कुत्तों को इन्हीं से काट भी लेता है। इसकी ज़बान बहुत लम्बी होती है, जिससे यह अकसर अपना चेहरा चाटता रहता है।

काकड़ बहुत जल्द पालतू हो जाता है। वैसे तो इसका मुख्य भोजन घास-पात है लेकिन पालतू हो जाने पर यह पका हुआ गोश्त बड़े मज़े में खाता है। इसका मांस रूखा ज़रूर होता है लेकिन और बारहसिंघों की तुलना में यह सबसे अच्छा कहा जा सकता है।

काकड़ के नर, मई में अपने सींग गिराते हैं और अगस्त आते आते इनके नए सींग तैयार हो जाते हैं। इनके जोड़ा बाँधने का समय जनवरी फ़रवरी है और क़रीब पाँच महीने के बाद इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है।

३१—हंगल

The Kashmir Stag—*Cervus cashmirianus*

हंगल को काश्मीरी बारहसिंघा कहते हैं जो हर तरह से ठीक भी है क्योंकि यह सिवा काश्मीर के जङ्गलों के और कहीं नहीं पाया जाता।

हंगल काश्मीर में चीड़ के पहाड़ी जङ्गलों का निवासी है। गर्मियों में यह ९ से १२ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर रहता है लेकिन जाड़ों में यह और नीचे उतर आता है।

हंगल भारी क़द का जानवर है, जिसके नर सींगदार और मादा बे-सींग की होती हैं। नर की गरदन के ऊपरी और निचले हिस्से पर बड़े बड़े बाल होते हैं। नर के हर सींग में प्रायः पाँच

शाखें होती हैं लेकिन कभी-कभी छः शाखोंवाले हंगल भी पाये गए हैं।

हंगल

हंगल की ऊँचाई कंधे के पास चार फ़ुट या उससे कुछ ऊँची ही रहती है और लम्बाई में ये सात साढ़े सात फ़ुट तक के हो जाते हैं। दुम ५ इंच से ज़्यादा बड़ी नहीं होती। जवान हंगल के सींग

लगभग ४० इंच के होते हैं लेकिन इससे और लम्बे सींगोंवाले जानवर भी पाए गए हैं।

इनके बदन का रंग भूरा या भूरापन लिए राखी रहता है जिसमें दुम के चारों ओर का हिस्सा सफ़ेद रहता है। बगल के हिस्से और पैर हलके रंग के होते हैं। होठ और ठुड्डी सफ़ेद और कान सफ़ेदी मायल रहते हैं। गर्मियों में हंगलों का रंग चमकीला रहता है और उसमें ललाई की झलक ज़्यादा रहती है। बच्चे चित्तीदार होते हैं और उनकी चित्तियाँ धीरे-धीरे कई साल में जाकर ग़ायब हो पाती हैं।

हंगल का रहन-सहन, भोजन और आदतें दूसरे बारहसिंघों से बहुत मिलती-जुलती होती हैं। ये गर्मियों में अकेले या छोटे-छोटे गरोहों में रहते हैं लेकिन जाड़ा आने पर ये आपस में मिलकर बड़े-बड़े गरोह बना लेते हैं। नर प्रायः मार्च में सींग गिराते हैं जो अक्टूबर तक फिर निकल आते हैं। जाड़े के साथ ही साथ इनके जोड़ा बाँधने का समय शुरू हो जाता है और उस समय ये अपने नए सींगों के साथ बहुत सुन्दर लगते हैं। इनकी बोली बैलों से बहुत कुछ मिलती हुई होती है, जो इनके जोड़ा बाँधने के समय अकसर सुनाई पड़ती है।

हंगल घास-पात खानेवाले जीव हैं, जिन्हें एक स्थान पर रहना पसन्द नहीं आता। ये इधर-उधर चक्कर लगाया करते हैं और ऐसे घने जङ्गलों में ही रहना पसन्द करते हैं, जिसके पास-पड़ोस में हरी घास के मैदान और पानी के चश्मे हों। इनका मांस रूखा और स्वादिष्ट होता है।

मादा हंगल को काश्मीर में "मिनियामार" कहते हैं। यह छः महीने पर, अप्रैल के क़रीब बच्चे देती है।

३२—बारहसिंघा—माहा

The Barasingha—Cervus duvruceli

बारहसिंघा तो हमारे यहाँ क़रीब-क़रीब उन सभी हिरनों को कहा जाता है, जिनके सर पर लम्बे शाखदार और गिरनेवाले सींग होते हैं लेकिन वास्तव में देखा जावे तो माहा ही असली बारहसिंघा है। माहा के प्रत्येक सींग में ६-६ शाखें फूटी रहती हैं, जो मिलकर इसके "बारहसिंघा" नाम को सार्थक करती हैं। इसको नैपाल में 'घोस' मध्य-प्रान्त में 'सालसाँभर' और कहीं-कहीं 'भिकार' भी कहते हैं। मध्य-भारत में नर 'गोइनजक' और मादा 'गौनी' कहलाती है।

बारहसिंगे हमारे देश में हिमालय की तराई के जङ्गलों में, जमुना से पूरब भूटान तक फैले हुए हैं। ये आसाम में काफ़ी संख्या में मिलते हैं। इसके अलावा इनकी काफ़ी संख्या, सिन्ध, मध्य-भारत और मध्य-प्रान्त में पाई जाती है। सिन्ध के उत्तरी हिस्से में भी इनको पाना असम्भव नहीं।

बारहसिंघे हंगल से कुछ छोटे ज़रूर होते हैं लेकिन इनकी ऊँचाई पौने चार फ़ुट से कम नहीं होती। लम्बाई में ये ६ फ़ुट के लगभग होते हैं। इनके सींग क़रीब ३ फ़ुट लम्बे होते हैं, जिनमें हर एक ६-६ शाखोंवाले होते हैं। इनका वज़न क़रीब ६-७ मन के होता है। ये गरमी और जाड़ों में अपनी पोशाक का रंग बदलते हैं जाड़ों में इनका ऊपरी हिस्सा बादामी और नीचे का उससे हलका रहता है लेकिन गर्मियों में वह बदलकर चटक खैरा रंग का हो जाता है, जिस पर पीठ पर अकसर सफ़ेद चित्तियाँ पड़ जाती हैं। पेट, गला और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफ़ेद या सफ़ेदी मायल रहता है। दुम के नीचे का भी हिस्सा हमेशा सफ़ेद रहता है। मादा नरों से रंग में हलकी और बच्चे चित्तीदार रहते हैं।

बारहसिंघा बहुत सुडौल जानवर है, जिसके बाल कड़े, सूखे और मोटे होते हैं। अन्य बारहसिंघों की तरह इसकी दुम छोटी और गरदन पर के बाल बड़े रहते हैं।

बारहसिंघा

बारहसिंघा या माहा घने जंगलों से ज्यादा तितरे-बितरे जंगल या जंगलों के पास के ऐसे घास के मैदान पसंद करता है, जिसमें बीच-बीच में कुछ पेड़ हों। यह झुण्ड में रहनेवाला जानवर है लेकिन कुछ अन्य हिरनों की तरह, यह भी गर्मियों के दिन अकेले बिताकर जाड़ों में बड़े-बड़े झुण्ड बना लेता है। यही इसके जोड़ा बाँधने का समय होता है और इसी समय इसके मार्च के आस-पास

के गिरे हुए सींगों के स्थान पर नए और सुन्दर सींग निकले रहते हैं।

इसका मुख्य भोजन घास-पात है लेकिन अपने भोजन की तलाश में यह सांभर के बराबर रात में नहीं घूमता। दिन को दोपहर के समय यह किसी निरापद स्थान पर बैठकर आराम करता है। इसका मांस रूखा और स्वादिष्ट होता है।

३३—साँभर

The Samhar—Cervus unicolor

साँभर हमारे यहाँ के बारहसिंघों में सबसे प्रसिद्ध है क्योंकि ये हमारे यहाँ काफ़ी बड़ी संख्या में देश भर में फैले हुए हैं। नेपाल में इनके नर को 'जराव' और सँभरी को 'जराइ' कहते हैं। हमारे देश में सांभर प्रायः सभी पहाड़ीवाले जंगलों में पाए जाते हैं लेकिन इन्हें मैदान और सूखे खुले हुए पहाड़ नहीं पसंद आते। यही कारण है कि ये पंजाब, सिन्ध और राजपूताना की ओर नहीं जाते। हिमालय की ओर ये कहीं-कहीं ९-१० हज़ार फ़ुट तक की ऊँचाई पर देखे गए हैं लेकिन इनके रहने का मुख्य स्थान ऊँचे-नीचे पहाड़ी जंगल हैं, जंगलों में ये इतना भारी शरीर लेकर इस सफ़ाई से भागते हैं कि देखकर बड़ा ताज्जुब होता है।

साँभर हमारे यहाँ के बारहसिंघों में सबसे बड़ा जानवर है। इसके नर की ऊँचाई चार से पाँच फ़ुट तक होती है। लम्बाई में ये सात-आठ फ़ुट के होते हैं लेकिन मादा या सँभरी छोटी और बिना सींगों की होती है। इनका वजन औसतन चार मन का होता है लेकिन ये इससे भी ज्यादा वज़न के पाए जाते हैं। सींगों की लम्बाई ३ से ४ फ़ुट के बीच में होती है और इनमें हर तरफ़ तीन-तीन शाखें फूटी रहती हैं।

साँभर वैसे तो हमारे यहाँ काफ़ी संख्या में हैं लेकिन इनका इतना शिकार होता है कि ये नीलगाय की तरह ढीठ नहीं हो पाए हैं। ये ज़्यादातर जंगलों में ही रहते हैं। जंगलों के बीच के घास के मैदानों में ये अकसर घूमते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। इनको

साँभर
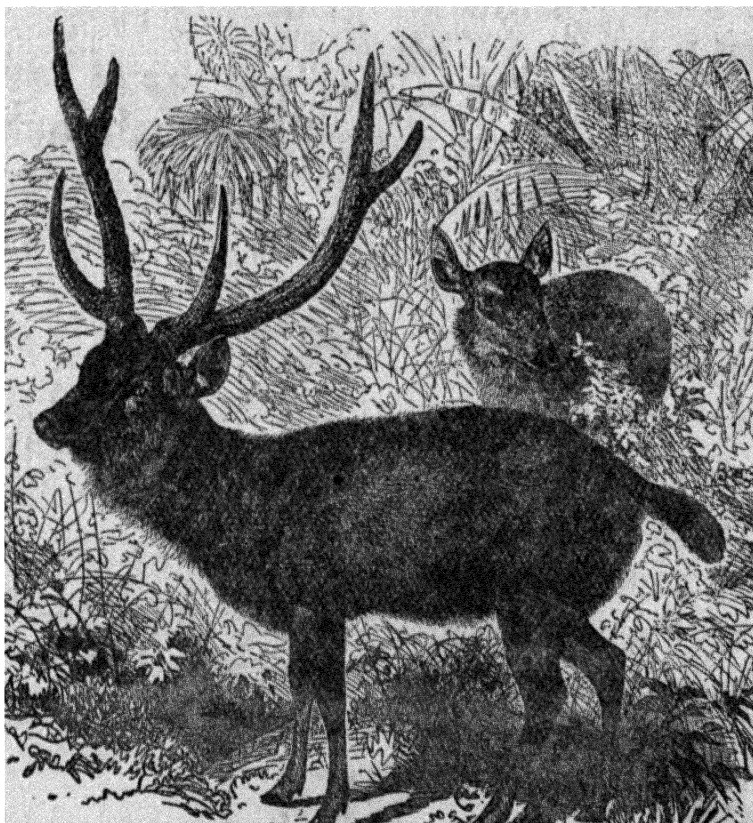
वैसे तो साँझ-सबेरे चरते हुए देखा जा सकता है लेकिन इनकी चराई का असली समय रात है, जब ये जङ्गल के पास-पड़ोस के खेतों का बहुत नुक़सान करते हैं। ये ज़्यादा बड़े झुण्ड नहीं बनाते और अकसर अकेले या ४-६ से १०-१२ तक का छोटा गरोह

बनाकर रहते हैं। रात भर चरने के बाद ये दिन में किसी साएदार जगह को अपने आराम के लिए चुनकर प्रायः वहीं पड़े रहते हैं।

सांभर का मुख्य भोजन तो जलाशयों के निकट की नरम घास है लेकिन इसके अलावा ये जंगली फल, पत्तियाँ और नरम कल्ले भी बड़े मज़े से खाते हैं। ये रोज़ पानी पीने के लिए आस-पास के जलाशयों में जाते हैं।

साँभर के जोड़ा बाँधने का समय क़रीब अक्टूबर, नवम्बर है जब ये काफ़ी संख्या में एक साथ रहने लगते हैं। ऐसे समय नरों की बैलों की सी हुँकार अकसर सबेरे, शाम और कभी-कभी रात को पहाड़ों में गूँज उठती है। मादा आठ महीने के बाद बच्चा देती है।

नर साँभर के सींग, मार्च के क़रीब गिरते हैं और जोड़ा बाँधने का समय आते-आते उस स्थान पर दूसरे नए सींग निकल आते हैं। हमारे यहाँ अब साँभर हर साल सींग नहीं गिराते और इनका सींग गिरने का समय कभी-कभी दूसरे साल आता है।

साँभर, पहाड़ी जंगलों में बहुत खूबी से तो चढ़ लेते हैं लेकिन खुले मैदानों में अगर कभी ये फँस गए, तो इन्हें घोड़े से पकड़ना मुश्किल नहीं। इनका शिकार प्रायः हाँका कराके होता है और शिकारी लोग इनको मारने के लिए सामने की ओर पत्ते और डालियाँ लगाकर ज़मीन पर ही बैठते हैं।

इनका मांस रूखा और स्वादिष्ट होता है।

३४—चीतल

The Spotted Deer—Cervus axis

चीतल—जैसा इसके नाम से जाहिर है—चित्तीदार बारहसिंघा है, जो क़द में छोटा होने पर भी सुंदरता में सबसे आगे है। इसको 'चितरा' और 'झाँक' भी कहते हैं।

चीतल हमारे देश में पंजाब, सिंध और राजपूताना के पश्चिमी हिस्से को छोड़कर, सारे भारत में फैला हुआ है। हिमालय में भी यह कुछ दूर तक चढ़ जाता है और दक्खिन भारत के पहाड़ों पर
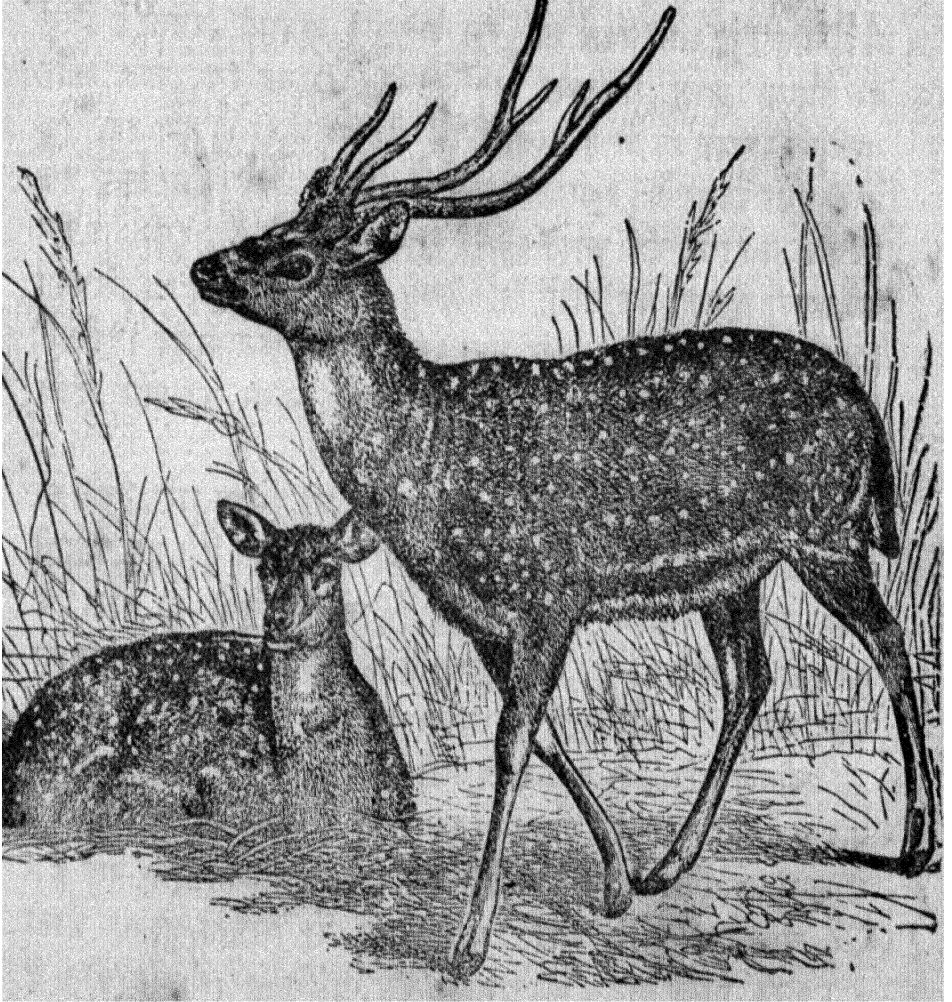
चीतल

भी यह ३-४ हजार फ़ुट तक देखा जाता है; लेकिन इसे सबसे ज्यादा तो तराइयों और नीची पहाड़ियों के जंगल पसंद आते हैं।

यह तीन सवा तीन फ़ुट ऊँचा और लगभग ५ फ़ुट लम्बा

जानवर है, जिसकी दुम १०-१२ इंच तक की होती है। मादाएँ नरों से छोटी और बिना सींगोंवाली होती हैं। नरों के सींग क़रीब ३ फ़ुट लम्बे और तीन ही तीन शाखोंवाले होते हैं। वज़न में चीतल दो मन से कम ही होते हैं।

चीतल के सारे बदन का रंग ललछौंह बादामी रहता है जिस पर तमाम सफ़ेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। यह रंग जाड़े और गरमियों में एक ही जैसा रहता है। पीठ पर गुद्दी से दुम तक एक धारी पड़ी रहती है। बगली हिस्से के सफ़ेद धब्बे कभी-कभी एक सिधाई में होकर एक आड़ी लकीर से लगने लगते हैं। ठुड्डी, गरदन का ऊपरी हिस्सा, पेट, टाँगों का भीतरी हिस्सा और दुम का निचला हिस्सा सफ़ेद रहता है। सर भूरा रहता है जिस पर सफ़ेद चित्तियाँ नहीं रहतीं। कान बाहर की ओर भूरे और भीतर की ओर सफ़ेद रहते हैं।

चीतल झुण्ड में रहनवाला जानवर है जो हमेशा गरोह बाँधकर रहता है। इसके झुण्ड कभी-कभी कई सौ के हो जाते हैं। इसे पहाड़ी और ऐसे ऊँचे-नीचे स्थान पसंद हैं जो झाड़ियों या बाँस के झुरमुटों से भरे हों। यह जलाशयों के निकट ही रहना ज़्यादा पसंद करता है और वहाँ से ज़्यादा दूर नहीं जाता।

चीतल साँभर से कम रात्रिचारी जीव हैं। इन्हें दिन चढ़ने के बाद कई घंटे तक चरते हुए देखा जा सकता है। दिन को आराम करके ये शाम तक फिर चरते रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

चीतल की और आदतें बारहसिंघों से मिलती-जुलती होती हैं। इनके जोड़ा बाँधने का समय वैसे तो सितंबर से शुरू होता है लेकिन यह शायद साल में हर समय जोड़ा बाँध लेता है क्योंकि साल में हर समय इनके बच्चे मिल सकते हैं। इसी तरह इनके सींग गिराने का भी जैसे कोई नियम नहीं है। इनकी बोली तेज़ और अजीब सी होती है, जिसको सुनकर पहचानना तो आसान है लेकिन

उसका वर्णन करना बहुत कठिन है। इनका मांस रूखा पर स्वादिष्ट होता है।

चितली ६ से ८ महीने पर एक या दो बच्चे देती है।

३५—पाढ़ा

The Hog Deer—Cervus Porcinus

पाढ़े को छोटा बारहसिंघा कह सकते हैं। ये हमारे देश में सिंध और पंजाब से आसाम तक के नदी के कछारों, ऊँचे-नीचे घास के मैदानों में फैले हुए हैं। प्रायद्वीप की ओर ये सोन आदि नदियों के आस-पास भी पाए जाते हैं लेकिन बहुत कम संख्या में। हिमालय की तराई में ये काफ़ी तादाद में पाए जाते हैं।

पाढ़ा को नेपाल में "खर लगुना" भी कहते हैं, जो इसके लिए बहुत उपयुक्त नाम है। यह छोटे क़द का बारहसिंघा है जिसके नर दो फुट से ज्यादा ऊँचे नहीं होते। इनकी लम्बाई ३½ फुट तक होती है और दुम की नाप क़रीब ८ इंच के रहती है। मादा नरों से छोटी और बिना सींगोंवाली होती है। नरों के सींग क़रीब १ फुट लम्बे होते हैं जो साँभर की तरह गोलाई में न होकर क़रीब सीधे ही होते हैं। इनमें से हर एक में तीन-तीन शाखें रहती हैं।

पाढ़ा के बदन का ऊपरी और बगल का हिस्सा भूरा हलका कत्थई या बादामी रहता है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है। कान का भीतरी हिस्सा और दुम का निचला हिस्सा सफ़ेद रहता है गरमियों में इसका रंग हलका हो जाता है और दोनों बगली हिस्से पर हलके भूरे या सफ़ेद रंग की चित्तियाँ पड़

जाती हैं जो दूर से धारी सी जान पड़ती हैं। बच्चे क़रीब ६ महीने तक चित्तीदार रहते हैं।

पाढ़ा को कछार या तराई के घास के मैदान अच्छे लगते हैं। इसे बहुत ऊँची घास नहीं पसंद आती बल्कि यह ऐसे मैदानों में ज्यादा रहता है जिसमें औसत ऊँचाई की घास और झाड़ियाँ हों। कभी-कभी यह जंगलों में भी दिखाई पड़ जाता है लेकिन इसे ज्यादा घास, सरपत और झाड़ियोंवाले मैदान ही अच्छे लगते हैं।

पाढ़ा

पाढ़ा झुण्ड बनाकर नहीं रहता और इसको दो-तीन से ज्यादा की संख्या में देखना सम्भव नहीं। वैसे तो यह अकेला ही रहता है। अन्य बारहसिंघों की तरह इसके जोड़ा बाँधने का समय जाड़ा है। मादा क़रीब ८ महीने बाद बच्चा देती है।

पाढ़े का मांस रूखा और स्वादिष्ट होता है। इनका शिकार अक्सर लोग हाथी पर से करते हैं। मैदानों में रहने के कारण इनका घोड़ों से भी पीछा किया जाता है और ये बरछी से मारे जाते हैं। ये मार्च-अप्रैल में अपने सींग गिराते हैं।

३६—कस्तूरी मृग

The Musk Deer—Moschus moschiferus

कस्तूरी मृग अपनी कस्तूरी के कारण हमारा बहुत ही परिचित हिरन है। वैसे तो यह मध्य एशिया तक फैला हुआ है लेकिन हमारे देश में यह हिमालय को छोड़ ऊंचे जंगलों के सिवा और कहीं नहीं पाया जाता। हिमालय में भी यह ८००० फुट से ज़्यादा ऊँचे जंगलों में पाया जाता है और पश्चिम की ओर इसकी सीमा गिलगिट तक मानी जाती है। इसको काश्मीर में 'रौंस' और कमायूँ गढ़वाल में 'वेना' या 'मश्क नामा' कहते हैं लेकिन इसका सबसे प्रसिद्ध नाम 'कस्तूरा' या मुश्क है जिसे प्राय: सभी लोग जानते हैं।

कस्तूरी मृग के बदन के बाल अजीब बनावट के होते हैं। ये लम्बे और कड़े तो होते ही हैं, साथ ही साथ उनमें लहर सी पड़ी रहती है। इनके पैर लम्बे होते हैं, जिनमें पिछले पैर तो और भी बड़े रहते हैं। इनके बाल बड़े लेकिन दुम छोटी और झबरी होती है। इसके नर मादा दोनों के सींग नहीं होते।

कस्तूरी मृग की ऊँचाई लगभग २०-२० इंच और लंबाई क़रीब ३ फ़ुट तक होती है। दुम की लम्बाई बिना बालों के १।।-२ इंच से ज़्यादा नहीं होती।

इनके बदन का रंग चटकीला, गाढ़ भूरा होता है जिस पर थोड़ी सिलेटी चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं। इसके बदन के बालों का

निचला हिस्सा सफ़ेद रहता है और कान के भीतरी किनारे ठुड्डी और रानों का भीतरी हिस्सा सफ़ेदी मायल रहता है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है और किसी किसी के गाल के दोनों ओर एक एक सफ़ेद गोल चित्ता सा पड़ा रहता है। हमारे यहाँ इनकी कई किस्में पाई जाती हैं, जिनके रंग में थोड़ा-बहुत फ़र्क़ रहता है। बच्चों के शरीर पर सफ़ेद या पिलछौंह सफ़ेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।
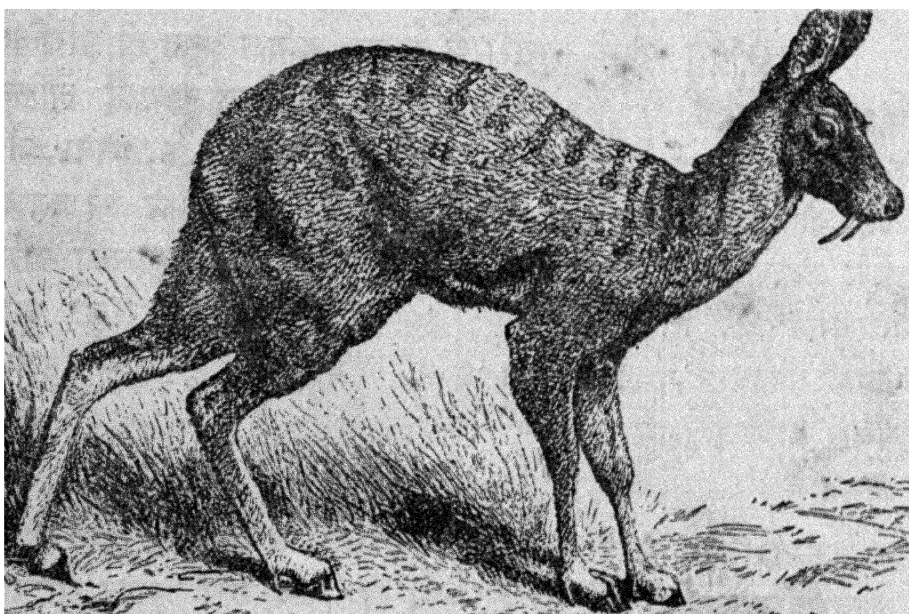
कस्तूरी मृग

कस्तूरी मृग अकेला रहनेवाला जानवर है जो जोड़े के साथ भी बहुत ही कम दिखाई देता है। इसे घने जंगलोंवाले ढलुए जंगल बहुत पसंद हैं, जिस पर यह बड़ी फुर्ती से चढ़ जाता है। पिछली टाँगें बड़ी होने के कारण इसकी चाल दूर से खरगोश सी जान पड़ती है। ये कंगारू की तरह लम्बी छलाँगें भी मार लेते हैं जिससे ढाल पर चढ़ते समय इन्हें फिसलने का बहुत कम डर

रहता है। इसकी एक और बात खरगोश से मिलती-जुलती होती है। खरगोशों की तरह ये भी ज़मीन में आराम करने के लिए गड्ढा सा खोद लेते हैं, जिसमें ये दिन भर पड़े रहते हैं।

इनकी चराई का समय सुबह शाम है और इनका मुख्य भोजन है, घास-पात और जंगली फल, जिन्हें ये बड़े चाव से खाते हैं। ये काफी तेज़ और सतर्क जानवर हैं लेकिन जहाँ इनका शिकार कम होता है ये ढीठ भी हो जाते हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

कस्तूरी मृग का यह नाम इनकी कस्तूरी के कारण पड़ा है, जो इसके पेट के पास की एक ग्रन्थि से निकलती है। नरों के जोड़ा बाँधने के समय, इस ग्रन्थि में एक प्रकार का गाढ़ा, कलछौंह सुगन्धित पदार्थ जमा हो जाता है जो तौल में क़रीब एक आउन्स के रहता है। यही कस्तूरी या मुश्क कहलाता है।

कस्तूरी मृग के जोड़ा बाँधने का समय जाड़ा है। मादा क़रीब ५ महीने बाद गर्मियों में एक या दो बच्चे देती है।

३७—पिसूरी

The Indian mouse Deer—Tragulus meminna

पिसूरी सबसे छोटा हिरन है, जो कुछ तो अपने छोटे क़द की वजह से और कुछ अपने शरमीले स्वभाव के कारण हमारी निगाह तले कम पड़ता है।

यह वैसे तो हमारे देश में मध्य-भारत, उड़ीसा और मध्य-प्रान्त के पूर्वी हिस्सों के जंगलों में पाया जाता है लेकिन इसके अलावा, इसे लंका और दक्षिण-भारत के जंगलों में देखना असम्भव नहीं।

पिसूरी बहुत छोटा सा जानवर है जिसकी ऊँचाई १ फुट से ज़्यादा नहीं होती। लम्बाई में भी यह १२ से २२ इंच तक होता है। इसकी दुम १ इंच की और वज़न २॥ तीन सेर से ज़्यादा नहीं होता। इसके बदन पर के बाल घने, पतले और मुलायम होते हैं।

पिसूरी

पिसूरी के बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा होता है जो कभी गहरा और कभी हलका रहता है। इस पर छोटी-छोटी घनी पीली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। ये चित्तियाँ लम्बी होती हैं, जो आपस में मिलकर एक कतार सी जान पड़ती हैं। नीचे का हिस्सा सफ़ेद रहता है और गरदन के बगली हिस्से पर भी नीचे की ओर से तीन सफ़ेद आड़ी पटरियाँ दोनों ओर आती हैं।

जैसा ऊपर बता आया हूँ, पिसूरी छोटे क़द के अलावा, अपनी छिपने की आदत के कारण, बहुत कम दिखाई पड़ता है। यही

कारण है कि इसके बारे में हमें ज्यादा बातें नहीं मालूम हो सकी हैं। यह कभी खुले मैदानों की ओर नहीं जाता और हमेशा जंगलों में, पत्थरों की चट्टानों के आस-पास ही रहता है। जरा सी आहट मिली नहीं कि यह चट्टानों के नीचे या किसी गुफा में घुस जाता है। दिन को भी यह ऐसे ही स्थानों में घुसकर आराम करता है और इसकी मदाएँ भी ऐसे ही स्थानों में बच्चे देती हैं।

पिसूरी अकेले रहनेवाला जानवर है, जो जून-जुलाई में तो मादा के साथ जोड़ा बाँधकर रहता है लेकिन जाड़ा शुरू होते ही नर मादा दोनों अलग-अलग रहने लगते हैं। यही समय इनके बच्चा देने का है जब मादा प्राय: दो बच्चे जनती है।

पिसूरी बहुत डरपोक और सीधा सा जानवर है, जो बड़ी आसानी से पालतू हो जाता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है। इसकी चराई का वक्त या तो बहुत ही सवेरे रहता है या फिर गोधूली के समय। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

३८—ऊँट

The Camel—Camelus dromedarius

मनुष्यों ने जिन जानवरों को पालतू किया, उनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जिनको आजकल भी जंगलों से पकड़कर पालतू करना पड़ता है—जैसे हमारे हाथी और कुछ जानवर ऐसे हैं, जो पालतू तो हो गए हैं लेकिन उनके बहुत निकट के सम्बन्धी आज भी जंगलों में मौजूद हैं—जैसे हमारे सुअर, भैंस और कुत्ते, बिल्ली—लेकिन तीसरे क़िस्म के पालतू जानवर वे हैं, जो सबके सब पालतू कर लिये गए हैं और जिनकी कोई जंगली जात आज जंगलों में नहीं पाई जाती—इस श्रेणी में आते हैं हमारे घोड़े और ऊँट वग़ैरह।

घोड़े के बाद, जिस पशु ने मनुष्यों को अपनी सभ्यता फैलाने में मदद दी, वह ऊँट है। इसको 'रेगिस्तान का जहाज़' कहा जाता है। जो सोलहो आने सही है। आज यदि मनुष्यों के पास यह पालतू जानवर न होता, तो ये बड़े बड़े रेगिस्तान भला कैसे पार होते और सहारा, अरब और आस्ट्रेलिया के विशाल मरुस्थलों से मनुष्य अनभिज्ञ ही रहता।

रेगिस्तानवाले प्रदेशों के लिए तो, ऊँट हमारे गाय, बैलों से भी ज़्यादा उपयोगी है क्योंकि वहाँ के लोग इससे सवारी का ही काम नहीं लेते बल्कि इसका मांस खाते हैं और इसका दूध भी पीते हैं। इसके चमड़े से जूते और बालों से कम्बल तथा ऊनी कपड़े बनाए जाते हैं।

ऊँट की दो जातियाँ हैं। एक अरब का ऊँट, जिसकी एक किस्म हमारे देश में फैली हुई है और दूसरे बैक्ट्रिया के या दो कुहानेवाले ऊँट, जो मध्य-एशिया का निवासी है। दोनों की बनावट में थोड़ा फ़र्क़ ज़रूर है वैसे इन दोनों को देखकर यही अनुमान होता है कि जैसे प्रकृति ने इसे ख़ासकर रेगिस्तान के लिए ही बनाया है।

ऊँट का विस्तृत वर्णन पहले ही शफ-वर्ग के साथ दिया जा चुका है अतः उसे फिर से दुहराने की कोई ज़रूरत नहीं जान पड़ती।

——

अदन्त-वर्ग

Order Edentata

अदन्त-वर्ग वैसे तो चींटीखोर, साल आदि कई परिवारों में विभक्त है लेकिन हमारे यहाँ केवल साल-परिवार के ही जीव पाए जाते हैं। चींटीखोर जो इस वर्ग का प्रसिद्ध प्राणी है, दक्षिण अमेरिका का निवासी है।

साल-परिवार में 'साल' ही अकेला जीव है, जिसकी दो किस्में हमारे देश में पाई जाती हैं। यहाँ एक का वर्णन दिया जा रहा है।

ये सब जीव बिल खोदकर रहनेवाले प्राणी हैं, जिनका मुख्य भोजन दीमक है। इनकी ज़बान काफ़ी लम्बी होती है लेकिन इनके मुँह में दाँत नहीं होते। इसी से ये अदंत-वर्ग के प्राणी कहे जाते हैं। इनके मुँह के आगे एक नली सी निकली रहती है, जिसमें इनकी लंबी सर्पाकार जीभ रहती है। ज़रूरत पड़ने पर इनकी जीभ काफ़ी बढ़ जाती है और बहुत दूर तक बाहर निकल आती है। इसपर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ सा लगा रहता है, जिसमें लिपटकर छोटे-छोटे जीव इसके पेट में पहुँच जाते हैं। ये सब प्राणी दीमक के दिमौरों में अपनी लंबी जीभ डालकर बड़ी आसानी से दीमकों को फँसा लेते हैं। इसी प्रकार अन्य छोटे-छोटे कीड़े भी इसकी ज़बान में फँसकर फिर नहीं निकल पाते।

इन जानवरों का बदन लंबा होता है। जो मोटी और दुर्भेद्य शल्कों या प्लेटों से ढका रहता है। लेकिन नीचे का हिस्सा सादा ही रहता है, जिस पर शल्कों की जगह तितरे-बितरे बाल रहते हैं। इनके बदन के शल्क खपरैल की तरह एक पर एक चढ़े रहते हैं और बनावट में इतने कड़े और मज़बूत होते हैं कि कभी-कभी इन पर गोली तक का

असर नहीं होता। कोई खतरा निकट आने पर साल काँटा-चूहा की तरह अपने बदन को गोल गेंद सा लपेट लेता है। फिर किसी जीव की क्या मजाल जो इसका कुछ कर सके। ये शल्क बहुत कड़े और मज़बूत तो होते ही हैं इनके किनारे भी बहुत तेज़ होते हैं। साल की लंबी चौड़ी दुम और उसकी टाँगों के बाहरी हिस्से भी इन्हीं प्लेटों या शल्कों से ढके रहते हैं।

इनका सर छोटा, लंबा और सामने की ओर नोकीला होता है। मुख-छिद्र बहुत छोटा होता है। आँखें भी छोटी होती हैं और जीभ जैसा ऊपर बता आया हूँ, काफ़ी लंबी होती है। इनकी टाँगें इनके क़द को देखते हुए छोटी ही कही जावेंगी। इनके पैरों में पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं, जिसमें टेढ़े और मज़बूत नाखून रहते हैं। इन नाखूनों से ये बड़ी आसानी से कड़ी मिट्टी खोद डालते हैं।

इतना होते हुए भी, इन नाखूनों के कारण, ये ज़मीन पर अपना पूरा पैर नहीं रख पाते। चलते समय इनके नाखून मुड़कर तलुवे के नीचे आ जाते हैं और इनकी चाल देखने में विचित्र सी लगती है।

साल हमारे देश के निवासी तो हैं लेकिन ये हमें बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। जान पड़ता है जैसे धीरे-धीरे इनकी जाति लुप्त होती जा रही है।

चींटीख़ोर दक्षिण अमेरिका का निवासी है। इसकी तीन जातियाँ उस देश में पाई जाती हैं। यह अदंत-वर्ग में सबसे बड़े क़द का प्राणी है। इनके बदन पर शल्क न होकर बाल ही रहते हैं। दुम के बाल तो बहुत घने और लंबे होते हैं। इसकी टाँग और नाखून साल की तरह बहुत मज़बूत होते हैं, जिससे यह कड़ी से कड़ी ज़मीन को आनन-फानन खोद डालता है।

चींटीख़ोर की बहुत सी बातें, साल से मिलती-जुलती होती हैं। आदत ही क्यों, उसकी ज़बान की बनावट, उसकी चाल और उसकी ख़ूराक में भी एक प्रकार की समता सी रहती है।

साल

The Indian Pangolin—Manis Pentadactyla

साल को हमारे देश में सल्लू-साँप भी कहते हैं। यह इतना विचित्र जीव है कि इसको एक अलग वर्ग में रहना पड़ा है।

हमारे देश में वैसे तो यह पश्चिमोत्तर प्रान्त से बंगाल तक और हिमालय की तराई से धुर दक्खिन तक पाया जाता है; लेकिन इसकी
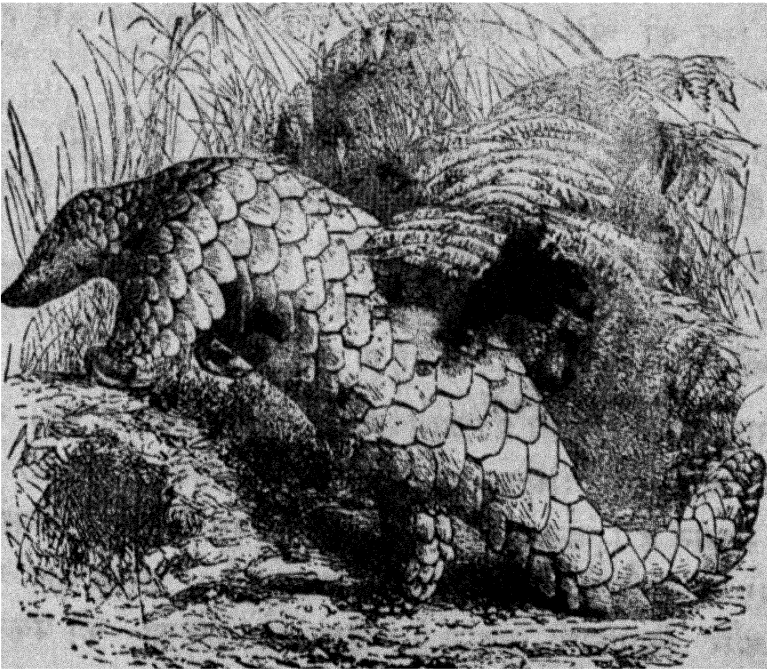
साल

इतनी कम संख्या हमारे देश में रह गई है कि हममें से बहुत ही कम आदमी ऐसे होंगे जिन्होंने इनको स्वयं देखा हो।

साल बिल खोदकर रहनेवाले जीव हैं, जो दिन भर किसी पुराने सुनसान भीटे में अपनी खोदी हुई बिल में पड़े रहते हैं, जिसका

नतीजा यह होता है कि अकसर पास रहते हुए भी ये हमारी निगाह तले नहीं पड़ते।

साल का क़द लगभग दो फ़ुट लंबा होता है और उसकी दुम की लंबाई भी १।। फ़ुट से कम नहीं होती। इसके बदन का ऊपरी और बग़ली हिस्सा, टाँगों का बाहरी हिस्सा और दुम का कुल हिस्सा एक प्रकार के कड़े सेहर या शल्कों से ढका रहता है। सर के ऊपरी हिस्से पर भी, इसी तरह के शल्क रहते हैं। टाँगों का भीतरी हिस्सा और दुम को छोड़कर नीचे का सारा हिस्सा सादा ही रहता है। दुम जड़ से सिर की ओर पतली होती जाती है। इसके पैर छोटे होते है लेकिन पंजों के नाखून बड़े बड़े होते हैं।

साल के बदन पर के शल्क जिनसे उसका ऊपरी और बाहरी शरीर ढँका रहता है, बादामी या पिलछौंह भूरे रंग के होते हैं। साल के मुँह में दाँत नहीं होते लेकिन इसकी ज़बान बहुत लंबी होती है। इसमें एक प्रकार का लस सा रहता है। जिसमें चिपककर चींटें और दीमक इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

साल रात्रिचर जीव है, जो दिन भर अपने बिल में पड़ा रहकर रात को चींटे और दीमकों की तलाश में निकलता है; ये ही इसके मुख्य भोजन हैं। इसके पंजे बहुत ही मज़बूत होते हैं, जिनसे यह दिमौरों को बड़ी आसानी से खोद डालता है। इसके बाद अपनी लंबी और चिपचिपी ज़बान के सहारे इसे दीमकों को पकड़ने में ज़रा भी दिक़्क़त नहीं होती।

साल का बिल ढलुआ और ८-१० फ़ुट गहरा होता है। अन्तिम छोर पर जाकर बिल की परिधि लगभग ५-६ फ़ुट की हो जाती है, जहाँ साल का जोड़ा और उसके बच्चे रहते हैं। बिल के भीतर घुस जाने पर साल बिल का मुँह मिट्टी से बन्द कर देता है, जिससे किसी को इसकी मौजूदगी का पता भी न चल सके।

साल के ऊपरी बदन का कठोर कवच, उसकी रक्षा में बहुत काम आता है। उसके बदन के कड़े शल्क खपड़ैल की तरह एक दूसरे पर चढ़े रहते हैं, जिनकी धार काफ़ी तेज़ होती है। किसी ख़तरे को निकट देखकर साल अपने शरीर को काँटा-चूहे की तरह लपेटकर गेंद सा गोल हो जाता है। फिर किसी जीव की हिम्मत नहीं कि उस पर आक्रमण कर सके। ये शल्क इतने कड़े होते हैं कि इन पर अकसर बंदूक की गोली का कुछ असर नहीं होता।

साल शायद बहुत कम पानी पीता है क्योंकि अकसर यह ऐसे स्थानों पर पाया गया है जहाँ आस-पास पानी का कोई चिह्न भी नहीं था। इसकी बोली के बारे में भी कुछ पता नहीं चल सका है। गुस्सा होने पर यह एक प्रकार की फुफकार भी छोड़ता है, जो साँप के फुफकार से मिलती-जुलती होती है। इसी से इसे शायद सल्लू-साँप का नाम मिला है।

साल की मादा जाड़ों के अन्त तक एक बच्चा देती है। कभी-कभी दो बच्चे भी पाए गए हैं। छोटे बच्चों के शल्क कड़े नहीं होते बल्कि वे उनकी उम्र बढ़ने के साथ ही साथ कड़े भी होते जाते हैं।

क्रमागत-सूची